सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

जनवरी–मार्च 2019

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394
वर्ष–4, अंक–15

संस्थापक–सह–प्रधान संपादक
श्री दयानन्द जायसवाल

संयोजक
डॉ. विजय कुमार सिंह

संरक्षक
श्रीमती प्रतिभा सिन्हा

सम्पादक मंडल
डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
डॉ. अश्विनी

संस्थापक सदस्य
श्रीमती छाया पाण्डेय
श्रीमती संयुक्ता गुप्ता
डॉ. राम किशोर शर्मा

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक : श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त
व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303, 8210079809
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394
वर्ष–4, अंक–15

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतराष्ट्रीय स्तर की पूर्णतः अमूल्य हिंदी त्रैमासिक है। वर्तमान समय में विश्व के 39 देशों के पाठक सहित भारत के 92 शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन को सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि अप्रैल– 2019 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ मेल, कोरियर या डाक से सम्पर्क पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हँटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

रचनाएं भेजें :–
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक

अनुक्रम

पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	5
आलेख	गुरु नानक की विश्वदृष्टि	डॉ. अमर सिंह वधान	6
आलेख	जन्मशती में अलक्षित भैरव प्रसाद गुप्त	डॉ. रणजीत कुमार सिन्हा	8
आलेख	साहित्य और सिनेमा में आम आदमी का यथार्थ रूप	डॉ0 छोटेलाल गुप्ता	9
कविता	पूर्ण हुआ जन्म का अंतिम सफर	मंजु गुप्ता	12
आलेख	रघुवीर सहाय के काव्य में ऐन्द्रिक बोध	नीरज कुमार सिन्हा	13
आलेख	इसे भी जानें बब्बर अकाली आंदोलन	डॉ. ऊषा निगम,	16
कविताएँ	अक्स, दशरथ माँझी	डॉ. अशोक कुमार जोशी	17
आलेख (शोध)	बदलते दौर में लुप्त होते स्त्री–पुरुष के स्वाभाविक संबंध	सुभाष चन्द्र झा	18
कविताएँ	क्या मैं कोई गुनाह करता हूँ, मैं पहुँचूँ तुम्हारे पास, किस्मतवाला हूँ मैं	सुशांत सुप्रिय	27
कहानी	आखिरी पड़ाव	शंकर लाल माहेश्वरी	28
लघुकथा	वाह री दुनिया	डॉ. नीना छिब्बर	29
आलेख	अंग्रेजी मानसिकता से मुक्त हों	डॉ. आचार्य बलवन्त	30
कहानी	सत्तर साल पहले	डॉ.गिरिजाशंकर मोदी	32
आलेख	बिना मुखौटे का आदमी	डॉ0 शरद नारायण खरे	35
कहानी	अंतिम स्तंभ	शुभदा मिश्र	36
समीक्षा	उजली अभिलाषाओं के विहान की कविता	डॉ0 देवकीनन्दन शर्मा	39
कविता	बिचौलिये	डॉ. अशोक सिंह	40
कविता	सबके प्यारे बन जाओगे, छोटी–छोटी–सी बात, वसंत के आते ही	डॉ0 रूपचन्द शास्त्री 'मयंक'	41
समीक्षाएँ	पुस्तक–समीक्षाएँ	दयानन्द जायसवाल	42
कविता	खुशी का पैगाम	डॉ. रश्मि नायर	55
	लोकवाणी		56

दो मिनट का मौन

भाइयो और बहनो
यह दिन डूब रहा है
इस डूबते हुए दिन पर
दौ मिनट का मौन
जाते हुए पक्षी पर
रुके हुए जल पर
घिरती हुई रात पर
दो मिनट का मौन
जो है उस पर
जो नहीं है उस पर
जो हो सकता है उस पर
दो मिनट का मौन
इस महान् शताब्दी पर
महान् शताब्दी के
महान् इरादों पर
महान् शब्दों और महान् वादों पर
दो मिनट का मौन।

–केदारनाथ सिंह

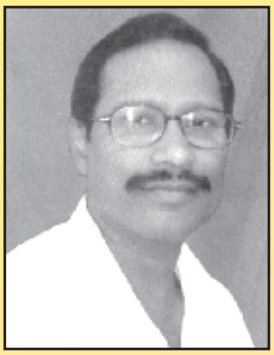

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

साहित्यकार समाज के बाह्य तथा आंतरिक दोनों घटकों को उद्घाटित करता है और साहित्य समाज में घटित विकृत व्यवस्थाओं के खिलाफ आवाज उठाने का काम करता है। मानव निर्मित सामाजिक व्यवस्था में समय–समय पर आनेवाले परिवर्तन समाज के हर पहलू को प्रभावित करते हैं। साहित्य में मूलतः मानवता के स्वर ही प्रमुख होते हैं। मानव जीवन से अलग साहित्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती; क्योंकि यह समाज के विभिन्न अंगों का, प्रवृत्तियों का विश्लेषण करता है तथा उन्हें सुरक्षित भी रखता है।

प्राचीनकाल से लेकर आज तक साहित्य और समाज का गहरा संबंध रहा है। लेखक का दृष्टिकोण स्वभावतः समीक्षात्मक होता है। साहित्य सर्जक समाज का ही एक व्यक्ति होता है, चाहे वह लेखक हो या कवि, उसके द्वारा ही प्रत्येक समाज प्राचीन संस्कृति की आत्मा को पहचानता है। आज साहित्य समाज से पलायन हो चुका–ऐसा कहना उचित नहीं। जीवन–विधा की प्रत्येक आदर्शवादी धारणा चाहे, वह स्वर्णिम अतीत की हो या ज्योतिर्मय भविष्य की, पलायन की द्योतक नहीं होती, बल्कि नव निर्माण करती है। प्रतिकूल सामाजिक परिवेश के साथ सर्जक की प्रतिभा समाज को जागृत करने के लिए आगे आती है या विद्रोह के लिए, रंगीन दिवा–स्वप्नों की सृष्टि करता है या प्रचलित रुढ़ियों, परंपराओं आदि का खंडन करता है, यह उसकी संवेदना, मानवीय चेतना या परिवेश का ठहराव बताता है। उसका कड़वा सच, उसके साहित्य का प्रतिफल सर्जक के सामने परिलक्षित हो ही जाता है।

साहित्य समाज से निरपेक्ष है, यह कल्पना ही अनुचित है; क्योंकि साहित्य समाज से सापेक्ष है। साहित्यकार अपना जीवन जिस समाज के परिवेश में बिताया है, उसका ही अनुभव साहित्य में झलकता है। वह मनुष्यों की आंतरिक वेदनाओं की अनुभूति ही अभिव्यक्त करता है। आज वर्तमान समय में छोटी–छोटी वस्तुओं पर वैश्वीकरण का प्रभाव हमें दिखाई देता है, जिससे साहित्यकार अछूता कैसे रह सकता है, फलस्वरूप कहीं–न–कहीं साहित्य में एक तरह का बाजारवादी संस्कृति पर लिखने का दौर शुरू हुआ है। इस दौर में भाषा में आज बाजारू साहित्य से भरी पड़ी दिखती है। ऐसे में समाज को हम अपना दस्तावेज न देकर, सर्जन के द्वारा समाज परिवर्तन में मौलिक भूमिका अदा करें, कबीर, सूर, तुलसी तथा जायसी जैसे महान् साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से सामान्य जन को एक आदर्श जीवन मार्ग दिखाने का काम किया है। इसलिए उन्हें आज भी बड़े आदर से सम्मान के साथ याद किया जाता है।

मैं यह प्रमाणित नहीं करना चाहता कि आज की रचनाएँ स्तरीय नहीं हैं, बल्कि उनमें अनेक रूप हैं, अनेक रंग हैं, अनेक शक्तियाँ हैं; अपनी–अपनी रचनात्मक क्षमता के अनुसार साहित्य को समृद्ध करने का प्रयास लगातार किया जा रहा है, जो सबसे खुशी की बात है और होनी भी चाहिए। सच यह है कि सर्जक अपनी जीवन–दृष्टि से अपना देशकाल देख–परखकर सर्जना करते हैं। अपितु, यथार्थवादी व्यवस्था को बदलने में समाज के श्रमशील जन केन्द्र में तो हैं, परन्तु उसमें कहीं कल्पना की अतिशयता अधिक और वास्तविकता कम दिखती है, ऐसे में पाठक के लिए तो विचारणीय हो ही जाता है। कहीं लाये गये पात्र अपने अनुभवों से जीवन सत्य को परिश्रम तथा स्वाभिमान की रक्षा करते हुए स्वयं विकसित होते हैं, तो कहीं मानवीय संवेदना तथा लोक जीवन से दूर–दूर तक बिना कोई रिश्ता रखे आ खड़े होते हैं। कहीं कवयित्रियों से पितृसत्ता की आलोचना और अपने निजी जीवन के लिए आकांक्षा होती है, तो कहीं कवियों से नारी स्वाभिमान चरित्र का कलात्मक उद्घाटन या अपना पांडित्य प्रदर्शन करने में उलझ जाते हैं। ग्रामों–कस्बों–नगरों से आये हुए मध्यवर्गीय शिक्षित कवि, लेखक प्रायः दिल्ली की ओर रुख किये रहते हैं कि देश की राजधानी के साथ–साथ दिल्ली साहित्य की भी राजधानी है, लेकिन राजधानी के रचनाकार ग्रामों–कस्बों और नगरों की विविधताओं को समेटने में, परन्तु पाठक देखते हैं कि रचना का उद्देश्य क्या 'वसुधैव कुटुम्बकम्' है या पद, प्रतिष्ठा अथवा पुरस्कार के लिए है। यह सच है कि सर्जक की संवेदना किसी बड़े पत्थर के नीचे दबे कुचले पक्षी की तरह कराह रही है, जिसे सर्जक सुरक्षित निकालने के लिए बेचैन रहते हैं। लोकजीवन की धड़कन सर्जक का उद्गार बनकर सूक्ष्म की हदों को छूते हुए अद्वैत की ओर उन्मुख होना साहित्यिक रूमानियत का मूल संस्कार है।

'सुसंभाव्य' में इस तरह की कोशिशें हैं कि साधारण पाठक के भी संसार में, उसके संघर्ष और सुख–दुःख में हमारे रचनाकार की मानवीय दिलचस्पी हद से उत्कट और सहज हो तथा वैचारिक तत्त्व उनकी अभिरुचि में पूरित, घुले–मिले हों, न कि किसी पर बोझ हों।

नववर्ष की शुभकामनाओं के साथ 'सुसंभाव्य' का यह अंक आपको समर्पित।

आलेख

गुरु नानक की विश्वदृष्टि

डॉ. अमर सिंह वधान
उच्चतर शिक्षा एवं शोध केन्द्र, चंडीगढ़
मो. 9876301085

यदि गहराई से देखा जाए तो गुरु नानक वाणी में सर्वकालीन एवं सर्वव्यापक सत्य के तत्त्व समाये हुए हैं। यह वाणी आध्यात्मिक चिंतन के जरिए धार्मिक चेतना को मूर्तिमान करती है तथा मानवीय सदाचारी जीवन शैली के यथार्थ को परमार्थ द्वारा परिभाषित करती है, जिसकी रचना संसार में विश्वदृष्टि की रूपरेखा उभरकर सामने आती है। तारीख गवाह है कि गुरु नानक कालीन समाज विदेशी शासन के दबावाधीन विचरण कर रहा था। यहाँ की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति बहुत ही निराशाजनक थी। गुरु नानक ने इन परिस्थितियों को अत्यन्त गहराई से जाना और इन सरोकारों के प्रति मानवतावादी विचारधारा की सर्वकल्याण के लिए प्रचारित किया। इस उद्देश्य की व्यापक पूर्ति के लिए उन्होंने देश की सरहदों को पार किया। चारों दिशाओं में अपनी विचारधारा का वैश्वीकरण करने के लिए उदासियाँ अर्थात् पैदल यात्राएँ कीं। अपनी विश्वदृष्टि को व्यावहारिक रूप देने के लिए वे अफगानिस्तान, मक्का–मदीना, बगदाद (ईराक), कजाकिस्तान, तिब्बत, सिंहलद्वीप (श्रीलंका) आदि देशों तक गये।

सामाजिक चिंतन के विकास प्रवाह में गुरु नानक की दृष्टि एवं विचारधारा विश्वमानव हितैषी तथा आदर्श समाज का स्वरूप प्रस्तुत करती है। अपने समय के सामाजिक जिंदगी के व्यवहारों की परख–पहचान एवं मूल्यांकन के बाद गुरु नानक ने धर्मिक प्रवचनों के द्वारा समूचे विश्व के मानवीय एवं सामाजिक संबंधों, मानव हितैषी मूल्यों को नए ढंग से सूत्रबद्ध किया। गुरु नानक वाणी का प्रयोजन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में निहित कुरीतियों को दूर करके रूहानी एवं सदाचारी मूल्यों से लवरेज एक स्वस्थ और स्वच्छ विशाल विश्व समाज की सृजना करना था। इसका स्वरूप 'मानस की जात सभै एकै पहचानबो' के आदर्श के मुताबिक देश–काल की सीमाओं को तोड़कर समूची मानवता को एक इकाई में बाँधना था। गुरु नानक की विश्वदृष्टि का सामाजिक पहलू इसी मानवतावादी दृष्टिकोण के माध्यम से उजागर होता है।

गुरु साहिब की वाणी में सृजित मानव हितैषी सरोकारों को मुख्य रूप से दो भागों में बाँटा जा सकता है–सामाजिक सरोकार और आध्यात्मिक सरोकार। गुरु नानक ने अनेकता में एकता का जो 'एक ओंकार' सरोकार प्रस्तुत किया, उसके माध्यम से समूची मानवता को एक धरातल पर ला खड़ा किया। गुरु नानक वाणी विश्व मानव को केवल भौतिक जीवन के दायरे में ही विचरण करने से रोकती है। इस शाश्वत वाणी में धर्म, नैतिक मूल्य, नम्रता, निर्वैरता, साझापन, दया, धैर्य, संतोष, संयम, मधुरता, ऊँच–नीच से दूरी और समदृष्टि जैसे समूचे गुणों सहित मानव विकास कर सकता है और वह मानसिक–अस्तित्वपरक विघटन से छुटकारा पा सकता है।

गुरु नानक ने स्पष्ट रूप से संपूर्ण मानवता के मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक विकास पर बल देते हुए नैतिक एवं सदाचारी मूल्यों को प्रेरित किया। ऐसे रूहानी मूल्यों के आधार पर समस्त मानवता के सह–अस्तित्व वाला एक स्वस्थ एवं आदर्श विश्व समाज का निर्माण किया जा सकता है। उनकी वाणी में मनमुख को सदाचारी एवं गुरमुख बनने पर जोर दिया गया है; क्योंकि जीवन के दुःख–संताप से छुटकारा पाने के लिए सत्य को ग्रहण करना जरूरी है। गुरु साहेब ने इस मुद्दे को विश्व समाज के मुद्दे के रूप में प्रस्तुत किया। यहाँ यह कहना महत्वपूर्ण होगा कि यदि मानवता में कानून और नैतिकता के आधार पर समानता को बरकरार रखना है तो इसे साकार करने के लिए आध्यात्मिक सदाचारिता जरूरी है। गुरु नानक ने विश्व स्तर पर जाति–पाँति, ऊँच–नीच, नस्ल, क्षेत्र, लिंग आदि के हर तरह के विभाजन को अस्वीकार किया है।

गुरु नानक ने सिद्ध गोष्ठी में सिद्धों, नाथों, योगियों के साथ वैचारिक आदान–प्रदान किया। उन विचारों का अक्स हमें सामाजिक ज्ञान और उसके प्रति हमारे दायित्व को दृढ़ करवाता है। निस्संदेह गूँज विश्व मानव तक पहुँचती है। सिद्ध गोष्ठी में गुरु नानक के व्यक्त विचारों का प्रतिबिंब एक ऐसी धारणा को जन्म देता है, जो विश्वव्यापी दृष्टि एवं हर प्रकार के धार्मिक–नस्ली भेदभावों से ऊपर उठकर पवित्र जीवन शैली सिखाती है। विश्व की बदलती परिस्थितियों एवं प्रतिकूल परिवर्तनों में यह बेहद जरूरी है कि संपूर्ण मानव समाज गुरु नानक के बताए सद्मार्ग पर चलने का दृढ़ संकल्प करे। इस मार्ग पर चलकर ही भौतिकवादी एवं माया आधारित रुचियों से मुक्त होकर एक संतुलित एवं आदर्श विश्व समाज का निर्माण किया जा सकता है।

गुरु नानक का 'दक्खिनी ओंकार' रचना का बहुआयामी रूप विधान मानव को वैश्विक स्तर की सूचना के साथ एकसुर करके इसके अनुरूप बनाता है। गुरु नानक वाणी विश्व के नकारात्मक प्रभावों से बचने एवं जटिल समस्याओं का समाधान करने में सार्थक दिशा प्रदान कर सकती है। इस तरह दक्खिनी ओंकार वाणी रचना की भीतरी विचित्रता एवं इसका बहुआयामी रूप विधान हमें ग्लोबल स्तर की सूचना के साथ एकसुर बनाता है। यह वाणी सचेत करती है कि धन–दौलत एकत्रित करने की दौड़ अंत में अर्थहीन सिद्ध होगी। इसलिए मनुष्य की ऐसी दौड़ में कुछ मिलनेवाला नहीं है। गुरु नानक की विचारधारा वैश्विक स्तर पर तत्कालीन वर्ग एवं उनकी दमनकारी नीतियों, अंधविश्वासों एवं व्यर्थ के कर्मकांडों की घोर आलोचना करके इसके समानान्तर एक नई विश्व दृष्टि एवं अनुकूल व्यवस्था निर्मित करती है। इसकी भीतरी चिंतन और तर्क आधारित सोच मनुष्य को एक नवीन साहब एवं आत्मविश्वास दिलाती है। आज के इस विश्वव्यापी स्पर्धा के दौर में मनुष्य आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा भाषाई स्तर पर विभिन्न समस्याओं से जूझ रहा है। गुरु नानक की 'बारहमाह' रचना की अंदरूनी विचारधारा विश्व मानव समाज की बहुत–सी समस्याओं के व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करती है। इसका भीतरी चिंतन निज लाभ की अपेक्षा मानवतावादी सोच का संदेश देता है।

गुरु नानक के देश, धर्म, नस्ल, लिंग, जाति–पाँति और व्यवसाय के अंतर के साथ–साथ समय, तिथियों, ऋतुओं, महीनों आदि को अहमियत नहीं दी, बल्कि उन्होंने श्रम एवं समानता का सिद्धांत तथा वैश्विक मानववादी विचारधारा समाजवादियों से पहले ही प्रस्तुत कर दी। उसकी यह विचारधारा वैज्ञानिक एवं विश्व सुधारवादी थी, जो आज के भौतिक युग की कसौटी पर भी खरी उतरती है। गुरु नानक वाणी का समूचा चिंतन एक ईश्वरवादी है और उसके नाम की महत्ता को तरजीह देता है। यह समूची मानवता में उस एक ईश्वरवादी ज्योति के प्रसार की बात करता है। इस चिंतन को धारण करनेवाला मनुष्य सदाचार और नैतिक मूल्यों को अपनाता हुआ सच्चे एवं शुद्ध परिश्रम करने में विश्वास करता है। वह अपने निजी स्वार्थों को त्यागकर आत्ममुक्ति को

प्राथमिकता नहीं देता, बल्कि विश्व के सामाजिक मनुष्यों की मुक्ति की बात करता है। वह दूसरों के अधिकारों के प्रति भी पूर्णतः जागरूक है। इस तरह गुरु नानक का चिंतन समूची मानवता को एक ही धरातल पर ला खड़ा करता है। उनके चिंतन में संपूर्ण मानवता के प्रति सोच के बुनियादी लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। गुरु साहिब की विचारधारा निरंतर गतिशील समाज को सर्वव्यापक एवं सर्वकल्याणकारी मार्ग पर अग्रसर करती है। साथ ही समूह मानवता को विश्व स्तर पर अंतरसंवाद एवं मिलनसारता के लिए प्रेरित करती है।

गुरु साहिब की वाणी विश्व स्तर के मानवीय अंतर्विरोधों को तर्क के साथ सुलझाने का संदेश देती है। उनकी विचारधारा में एकसुरता, एकसारता एवं वैज्ञानिक गहराई है। उनकी वाणी की यात्रा ब्रह्मांड से लेकर धरती तक की है। यह एक साथ लौकिक भी है और परलौकिक भी। लौकिक इसलिए कि इस वाणी में धरती (मानव) के साथ जुड़े हर मसले का चिंतन किया गया है। लौकिक में से सही पारलौकिकता को अर्थ दिये गये हैं और पारलौकिकता में से ही लौकिकता का मार्ग दर्शाया गया है। कहना न होगा कि गुरु नानक विचारधारा का उद्देश्य सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों की बुराइयों और कुरीतियों को दूर करके सदाचारी मूल्यों से भरपूर एक स्वस्थ एवं विशाल विश्व समाज की सृजना करना है। गुरु नानक ने यह कहकर 'मानस की जाति सभै एकै पहचानबो' देश–काल की सीमाओं को तोड़कर समूची मानवता को एक ही इकाइ में बाँध दिया है। उनकी वैश्विकता का सामाजिक पहलू इसी मानवतावादी दृष्टिकोण के माध्यम से उजागर होता है।

यदि व्यापक दृष्टि से देखें तो आज वैश्वीकरण के अन्यान्य प्रभावों के फलस्वरूप मानवीय सोच, जीवन शैली, संस्कृति आदि में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। वैश्विक समाज की स्थापना की कामना में अनेक मानवीय संकट भी उभरे हैं, जिनका संबंध भाषाई, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक आदि अनेक पहलुओं के साथ है। इन मानवीय संकटों को विश्व स्तर पर दूर करने के लिए गुरु नानक वाणी ही हर दृष्टि से सार्थक हो सकती है। यह वाणी विश्व भर के लोगों के लिए वैश्विक अमन, भाईचारा, अमीर–गरीब का भेद–भाव एवं विश्वमानव को एक–दूसरे के साथ जोड़कर निर्भयता से वैचारिक आदान–प्रदान करते हुए एक समृद्ध समाज की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है।

यह कहना भी महत्त्वपूर्ण है कि गुरु नानक की वाणी मध्ययुगीन भारतीय समाज की आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक व्यवस्था का आलोचनात्मक चित्रण प्रस्तुत करती है। उनकी सोच तत्कालीन सामाजिक ऐतिहासिकता के साथ दार्शनिक संवाद सृजित करती है तथा कल्याणकारी अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर होती है। खूबसूरत समाज एवं नये मानव के निर्माण की ओर भी उसका रुख है। गुरु नानक वाणी में एक ऐसी विश्वदृष्टिकोण की रूपरेखा उभरती है, जिसे एक विशिष्ट मानव जीवन शैली का मूलाधार माना जा सकता है। देखा जाए तो विश्व दृष्टिकोण मनुष्य के समूचे जीवन–दर्शन का प्रतिबिम्ब उभारता है। गुरु नानक वाणी भौतिक जरूरतों को कम करने पर जोर देती है और भौतिक खपत को जीवन स्तर का निर्णय नहीं मानती–

फिटु इवेहा जीविआ जितु खाइ वधाइया पेट।।
नानक सच्चे नाम विणु सभो दुसमनु हेतु।।
(श्रीगुरुग्रंथ साहिब, पृ. 790)

उनकी वाणी विश्व स्तर पर समाज के पूँजीपतियों, जो श्रमिकों की कमाई पर स्वयं सुख–आनंद भोगते हैं, को भी चुनौती देती है। यह वाणी मनुष्य को श्रम करने और परमात्मा के अदब–भय में समाज–सेवा को प्राथमिकता देती है। इस तरह गुरु नानक की विश्व दृष्टि एक ऐसे समाज की स्थापना की ओर अग्रसर है, जिसमें ऊँच–नीच, छुआछूत, जाति–पाँति, अमीर–गरीब, गोरे–काले आदि की अवधारणा को नजरअंदाज करके एक वैश्विक सामूहिक भाईचारे समाज की रचना की ओर संकेत करती है–

'जाति जनमु नह पूछीअै, सच घर लेहु बताइ।
सा जाति सा पति है, जेहे करम कमाइ।।'
(श्रीगुरुग्रंथ साहिब, पृ. 1330)

'जाणहु जाति न पूछहू जाती, आगे जाति न हे।'
(श्रीगुरुग्रंथ साहिब, पृ. 349)

'जाती दै किआ हथि सचु परखीअै,
महुरा होवै हथि मरीअै चखिअै।।' (श्रीगुरुग्रंथ साहिब, पृ. 172)

जाहिर है कि गुरु नानक वाणी विश्व स्तर पर मनुष्य जीवन के प्रति दार्शनिक एवं सामाजिक दृष्टि अपनाती है और एक संपूर्ण जीवनशैली की दिशा भी प्रदान करती है। यह वाणी प्रमुखतः मानववादी, उदारवादी, न्यायवादी, लोकतंत्रीय एवं प्रगतिशीलता की हिमायत करती है। गुरु नानक का लक्ष्य समानाधिकार और समानता संपन्न समाज का निर्माण करना है। इस धरती पर जीवन को सुंदर बनाया जा सकता है। गुरु नानक के अनुसार लोगों में आपसी प्रेम के अभाव एवं भ्रातृत्व न होने के कारण लोग धन–दौलत जमा करने के होड़ में लगे हुए हैं–

नानक दुनिया कैसी हुई, सालकु भितु न रहिउ कोई।
भाई बंधी हेतु चुकाइआ, दुनिया कारणि दीनु गवाइआ।
(श्रीगुरुग्रंथ साहिब, पृ. 1410)

इस सत्य कथन से इनकार नहीं किया जा सकता कि अमीरों की कमाई गरीबों की हानि पर निर्भर करती है। जैसे–जैसे जायदादों में वृद्धि होती है, वैसे–वैसे समाज में तनाव और टकराव बढ़ जाता है। विश्व के सभी देशों में तनाव–टकराव प्रायः देखा जाता है, जिसके विषय में गुरु नानक ने अपने ढंग से कहा है–

इसु जर कारणि घणी विगुती, इनि जर घणी खुआई।
पापा बाझ हु होवै नाही, मुइआ साथि न जाई।।
(श्रीगुरुग्रंथ साहिब, पृ. 790)

स्पष्ट है कि गुरु नानक की विचारधारा एक ऐसे विश्व समाज की कामना करती है, जिसमें पूँजी का संतुलन रहे और सभी एक समान हों। गुरु नानक की सोच वैज्ञानिक थी, असीम थी एवं विश्व के उज्ज्वल भविष्य की शुभाकांक्षी थी।

साहित्यिक दायित्व की दृष्टि से जिन महनीय सरस्वती–साधकों ने अपनी हड्डी रगड़–रगड़ कर राष्ट्रभारती के भाल को चन्दन चर्चित किया है, रक्त की प्रत्येक बून्द माँ की सेवा में बहा दी है, अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों की उपेक्षा कर साहित्य की श्रीवृद्धि में तन–मन–श्रम की आहुति दे दी है, उन्हें आदर का भाव न देना या विस्मृत कर देना अपराध है।

दयानन्द जायसवाल

आलेख

जन्मशती में अलक्षित भैरव प्रसाद गुप्त

प्रोफेसर, खड़गपुर महाविद्यालय (वे.बंगाल)
मो.–9434153501

भैरव प्रसाद गुप्त मार्क्सवादी रचनाकार होने के बावजूद भी उनकी जन्मशती वर्ष पर कोई हलचल का न होना, बहुत सारा सवाल मन में आ रहा है। क्या वे मार्क्सवादी लाइन से हटकर चलते थे या पार्टी लाइन से कटकर। फिलहाल एक छोटा–सा परिचयात्मक लेख भैरव प्रसाद गुप्त पर।

हिन्दी साहित्य में एक नयी परंपरा का ईजाद हुआ है, साहित्यकारों की जन्मशती मनाने का। इसके जरिये हम अपने साहित्य के पुरोधाओं से नये पाठक, छात्रों को उनके लेखन, समय के साथ आज की हालात पर विमर्श करते हैं।

भैरव प्रसाद गुप्त का जन्म 7 जुलाई, 1918, सिवानकलाँ, बलिया (उत्तरप्रदेश) में हुआ था। पढ़ाई–लिखाई के बाद एक संपादक के रूप में अपना कैरियर की शुरुआत करनेवाले भैरव प्रसाद सन् 1944 में माया एवं मनोहर कहानियाँ के संपादकीय विभाग में नौकरी से शुरू किया था। 1955 में कहानी पत्रिका के संपादन से जुड़े और 1990 तक इसका संपादन करते रहे।

नयी कहानियाँ पत्रिका से अलग होने के बाद गुप्त जी अपनी स्वतंत्रा पत्रिका के रूप में समारम्भ 1972 तथा प्रारंभ 1973 दो अंक ही निकाल पाये। आर्थिक हालात खराब होने के चलते पत्रिका बंद करनी पड़ी।

यह साल यानी 2018, हिन्दी साहित्य के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। यह काल जहाँ प्रेमचंद रचित 'सेवासदन' का सौ साल है, वही छायावाद का भी सौ साल, फिर हिन्दी साहित्य के महत्वपूर्ण अनुवादक हंस कुमार तिवारी का जन्मशती तो महान प्रगतिशील विचारधारा के कथाकार, संपादक, माया, मनोहर कहानियाँ, फिर 'कहानी' एवं नयी कहानियाँ जैसे पत्रिकाओं का संपादन करनेवाले, नई कहानी आंदोलन के संचालन में विशेष भूमिका निभानेवाले भैरव प्रसाद गुप्त का जन्मशती वर्ष भी है।

पर हिन्दी साहित्य में न तो हंस कुमार तिवारी और न भैरव प्रसाद गुप्त को लेकर कुछ सुगबुगाहट दिखलाई दे रही है। यह बहुत ही चिंता की बात है। छायावाद और सेवासदन के सौ वर्ष पर कुछ पत्रिकाओं में लेख पढ़ने को मिला। कुछ संपादकगण उदारता दिखलाये। पर भैरव प्रसाद गुप्त एवं हंस कुमार तिवारी पर चुप्पी। भैरव प्रसाद गुप्त माक्सर्ववादी थे, तो फिर वर्तमान समय के मार्क्सवादी वामपंथी विचारक क्यों इन चुप्पी साध कर बैठे हैं। भैरव प्रसाद गुप्त हिन्दी साहित्य को अपनी सोलह उपन्यास एवं बारह कहानी संग्रह के अलावा एक नाटक एवं एक एकांकी संग्रह से समृद्ध करनेवाले साहित्यकार रहे।

भैरव प्रसाद गुप्त का उपन्यास : शोले–1946, मशाल– 1948, गंगा मैया–1952, जंजीर और नया आदमी–1954, सती मैया का चौरा–1959, धरती–1962, आशा–1963, अंतिम अध्याय–1970, नौजवान–1972, एक जीनियश की प्रेमकथा–1980, सेवाश्रम–1983, काशी बाबू–1970, भाग्यदेवता–1992, अक्षरों के आगे (मास्टरजी)–1993, छोटी सी शुरुआत–1997 (मरणोपरांत प्रकाशित)।

हिन्दी के गिने–चुने सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में 'गंगा मैया' को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यह उपन्यास भारतीय ग्रामीण जीवन–संघर्ष का जो सहज, स्वाभाविक और यथार्थ का अंकन यहाँ पर हुआ है। वह अन्यत्र दुर्लभ है। 'गंगा मैया' फ्रांसिसी तथा पुर्तगाली भाषाओं में प्रकाशित होनेवाली हिन्दी की पहली पुस्तक हैं। सती मैया का चौर भी आँचलिक उपन्यास है।

भैरव प्रसाद गुप्त की कहानियों में अपने समय का समाज चित्रित हुआ है। सामाजिक विसंगतियों पर व्यंग्य तथा मध्यवर्गीय जीवन की वेदनाओं का चित्रण तो कथाकथित उच्चवर्गीय निर्दय विचार–प्रणाली के साथ–साथ अमानवीय संस्कृति पर प्रहार करते हैं गुप्त जी।

प्रकाशित कहानी संग्रह : मुहब्बत की राहें–1945, बिगड़े हुए दिमाग–1948, इंसान–1950, सितार का तार–1951, बलिदान की कहानियाँ–1951, मंजिल–1951, आँखों का सवाल–1952, महफिल–1958, सपने का अंत–1961, मंगली का टिकुली–1982, आप क्या कर रहे हैं–1983।

भैरव प्रसाद गुप्त भी कुछ कथाकारों की तरह कहानी को अपनी विचारधारा की अभिव्यक्ति मात्र मानते हैं, जिसके चलते ये 'कहानी–कला' के साथ समझौता करते नजर आते हैं, जिसे हम चरम बिन्दु, टिड्डे, ज्योतिष, आप क्या कर रहे हैं आदि कहानियों में देख सकते हैं।

'क्राइम किंग' में भैरव प्रसाद गुप्त पूँजीपति वर्ग या पूँजीपतियों के चरित्र का यथार्थ को उद्घाटित करते हुए यह दिखाते हैं कि अपने लाभ और स्वार्थ के लिए यह वर्ग कुछ भी कर सकता है। कोई भी तिकड़म अपना सकता है। नैतिकता और मानवीय मूल्य उसके लिए कोई अर्थ नहीं रखते। वर्तमान समय तो नाजायज पूँजी और बाजार का है। अतः यह बात बहुत पहले ही गुप्तजी समझ गये थे। 'चरम बिन्दु' कहानी में गुप्तजी गाँव की गरीबी और महाजन की चोरबाजारी, नैतिक पतन का चित्रण किया है। ग्रामीण गाड़ीवान नैतिक मूल्यों की बलि चढ़ जाता है। नैतिक मूल्य आज भी गरीबों में ही बचा है। बाकी तो समाज में नैतिकता, आदर्श, मूल्यबोध मंचीय और भाषण तक ही सीमित है।

इसके अलावा भैरव प्रसाद गुप्त नाटक और एकांकी से भी हिन्दी साहित्य को समृद्ध करते दिखते हैं। चंदबरदाई नाटक–1963 तथा कसौटी एकांकी सग्रह–1943।

अनुवादक के रूप में भी गुप्तजी ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। माँ, काँदीद, कर्कशा, चेरी की बगिया, डारी और गे, बुलबुल, हमारे लेनिन, मालवा, माओत्से तुंग ग्रंथावली आदि का सफल अनुवाद किया।

अतः हिन्दी प्रेमी अध्यापक, प्राध्यापक एवं विभिन्न संस्थाओं को कम से कम गुप्त जी का जन्मशती भी मनानी चाहिए। बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार का जन्मशती वर्ष पर हिन्दी साहित्यकारों की चुप्पी किसी बहुत बड़ी राजनीति षड़यंत्र की सूचना का आभास लगता है। जैसा कि हंस कुमार तिवारी को लेकर भी।

आलेख

साहित्य और सिनेमा में आम आदमी का यथार्थ रूप

डॉ0 छोटेलाल गुप्ता
भारतीय वायुसेना, तेजपुर (असाम)
मो0–9085210132

भारतीय सिनेमा ने आम आदमी के साथ चलते–चलते सभी सामाजिक और धार्मिक वर्जनाओं और राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं को तोड़ा है, लेकिन साहित्य का दामन कभी नहीं छोड़ा। हाँ, ऐसे दृष्टांत बहुतायत से देखने को मिले हैं कि साहित्यिक कथाओं को फिल्मों में तोड़–मड़ोड़कर प्रस्तुत किया गया है, व्यावसायिक फिल्मों की अंधाधुंध दौड़ की साहित्यिक कथाएँ भी फिल्माई जाती रही हैं और फिल्माई जाती रहेंगी। यद्यपि अंग्रेज़ी सिनेमा की भाँति हिन्दी सिनेमा में साहित्यिक कृतियों पर उतनी फिल्में नहीं बनाई गईं, जितनी बनाई जानी चाहिए थी।

जनसाधारण के शिक्षण और मनोरंजन के लिए साहित्य और सिनेमा अलग–अलग दो ऐसी विधाएँ हैं, जो मनुष्य के क्रिया–व्यापार तथा उसकी जीवन–शैली को प्रत्यक्षतः प्रभावित करती रही हैं। सिनेमा साहित्य को मूर्त और यथार्थ रूप प्रदान करने का एकमात्र माध्यम है एवं साहित्य में जिस कल्पना और सृजनात्मकता के आधार पर विशेषतया मानव समाज की सिर्फ छवि प्रस्तुत की जाती है, उसे विश्वासोत्पादक जीवन्तता तथा प्रभावोत्पादक विश्वसनीयता प्रदान करने का कार्य फिल्मों के माध्यम से किया जाता है। यद्यपि इस भूमिका में नाट्यमंच पहले से ही लोकप्रिय रहे हैं, तथापि अनेकानेक कारणों से सिनेमा ने नाट्य मंचों को बेहतर ढंग से प्रतिस्थापित किया है। प्रतिस्पर्धा की दौड़ में नाट्य मंच सिनेमा से बहुत पिछड़ चुके हैं और प्रौद्योगिकी के नव प्रयोगों ने इसे जो विशिष्टता प्रदान की है, वहाँ तक पहुँच पाना नाट्य मंचों के लिए न केवल कठिन है, बल्कि असंभव–सा लगता है। प्राचीन काल से ही आम आदमी की पहुँच नाट्य मंचों तक बहुत कम रही है। फिल्मों में चलचित्रित समाज के सभी वर्गों, परिदृश्यों और इकाइयों में घटित घटनाएँ आम आदमी को स्वतः ही आकर्षित करती रही हैं, भले ही वह आम आदमी शिक्षित हो या अशिक्षित। इसके विपरीत साहित्य में वर्णित समाज और जीवन सीमित दायरे में साहित्य–पिपासुओं को ही सर्वप्रथम प्रभावित–प्रेरित कर पाता है तथा समाज पर उसका असर धीमी गति से होता है–इतनी धीमी गति से इसमें कई–कई दशक तक लग जाते हैं। किन्तु, जब इसे फिल्म रूप में प्रस्तुत किया जाता है तो इसकी प्रभावकारिता इतनी प्रबल और व्यापक हो जाती है कि यह काल और जगत् की सीमाएँ भी सहज एवं शीघ्र नापा जाता है। इसलिए यह कहना अत्युक्ति न होगा कि सृजित साहित्य को यथाशीघ्र फिल्म में रूपांतरित किया जाना चाहिए, ताकि साहित्य में अभिकल्पित जीवन यथार्थ रूप में जीने और भोगने की सीमा तक परिलक्षित हो सके।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि साहित्य और सिनेमा मानव जीवन को ही बिम्बित करते हैं। यहाँ सवाल यह उठता है कि इन दोनों विधाओं में उक्त मानव जीवन किस सीमा तक 'मानवीय' है। एक सामान्य धारणा यह है कि राजा–रानी, देव–दानव, तोता–मैना आदि से संबंधित निरूपित घटनाएँ और गढ़ी गई गाथाएँ वास्तविक जीवन से बहुत दूर होती हैं तथा उनमें मानवोचित सहृदयता, करुणा–दया भाव, स्नेह–आत्मीयता आदि का अभाव–सा होता है। बेशक, हिन्दी साहित्य की शैशवास्था और सिनेमा की आरंभावस्था में ऐसे ही पात्रों के जरिए जीवित और पट्नात्मक संसार का सृजन किया गया था तथा दोनों में किसान, मजदूर, बेरोजगार, गरीब, यतीम, विधवा, बेसहारा–बेघर, वृद्ध, अपाहिज तथा आर्थिक–सामाजिक रूप से अल्पविकसित–उपेक्षित जनों को नकारा गया, जनसाधारण के समक्ष ऐसे अति धनाढ्य समाज का चित्रण किया गया, जिसमें हर प्रकार से सुरक्षित तथा वैभवशाली अट्टालिकाओं वाले प्रासादों के भीतर उच्च–शक्ति सम्पन्न राजा–महाराजा, सुलतान–बादशाह और चमत्कार करने की क्षमता रखनेवाले लोग रहते हैं, जो जीवन की किसी भी सीमा से परिचित नहीं हैं और जिन्हें अपने सेवकों और जनसाधारण के दुख–दर्द से कुछ भी नहीं लेना–देना है, बल्कि वे अभावग्रस्त और उत्पीड़ित लोगों के प्रति अपने उपेक्षात्मक रवैये के लिए जन–समर्थक भी हासिल कर लेते हैं। बहरहाल, सिनेमा में ऐसे रवैयों और पूर्वाग्रहों के आवर्तन का साहित्य ने ही खंडित–मंडित किया।

भारत में जिस दौर में सिनेमा ने आम जनजीवन में दस्तक दिया था, उस समय हिन्दी साहित्य में प्रगतिशील विषय उफान पर थे और शायद ही कोई ऐसा सामाजिक वर्ग होगा, जो उस उफान में न बहा होगा। हिन्दी साहित्य की विशेषता प्रगतिवादी, प्रयोगवादी आदि जैसी प्रगतिशील आम आदमी के जीवन को उसकी पूर्णता के साथ मुख्य करने के लिए जनमानस को उपेक्षित कर रही थी। समाजवादी और पूँजीवादी व्यवस्था को ध्वस्त करने के लिए जो आंदोलन ज़ोर पकड़ रहा था, उसके सूत्रधार मज़दूर, किसान, दलित और उपेक्षित जन हर प्रकार से हिन्दुस्तान की मुख्यधारा में आने के लिए जद्दोजहद कर रहे थे। साहित्य और सिनेमा दोनों शीघ्र ही आम आदमी के जीवन का दर्पण बन गए। न केवल जनसामान्य के जीवन पर आधारित साहित्यिक कथाओं ने सिने परदों पर अपनी पैठ बनाई, बल्कि पात्रों, उनके संवादों, उनके द्वारा गाए जानेवाले गीतों और उनके सामाजिक परिवेश में आम आदमी ऐसे कुंडली मारकर बैठ गया कि करिश्माओं, अतिमानवीय कारगुज़ारियों तथा सुपरमैन–सरीखे पात्रों के महिमामंडित संसार महत्त्वहीन, अर्थहीन और उपेक्षनीय होते गए।

सामाजिक जीवन में यह बहुत बड़ा बदलाव है कि सिनेमाघरों ने भेदभाव का अन्याय मिटाकर सभी को पास–पास बैठने के लिए आमंत्रित किया। इस प्रकार शुरूआती दौर में भी जबकि पौराणिक और धार्मिक कथानकों पर 'हरिश्चंद्र तारामती' (1913), 'मोहिनी भस्मासुर' (1913), 'लंका दहन' (1917), 'कृष्ण जन्म' (1918), 'कालिय मर्दन' (1919) आदि जैसी मूल फिल्में बनीं, सभी उच्च एवं निम्नवर्ग के दर्शकों ने इन्हें देखा–सराहा और सिनेमाघरों से बाहर निकलते ही रेस्तराओं और चाय–पान की गुमटियों में बैठकर इन पर साथ–साथ चर्चाएँ की। अखबारों और पत्र–पत्रिकाओं में उन पर विस्तृत समीक्षाएँ छपीं, जिन्हें दफ्तरों और घरों में सभी ने पढ़ा। अस्तु, उस दौर में जबकि साहित्यिक रचनाओं को फिल्म–रूप में प्रस्तुत करने पर फिल्म–निर्माताओं का ध्यान कम ही जाता था, सिनेमाघरों ने कोई भेदभाव किए बिना आदमी से आदमी को जोड़ने की कोशिश की। इन सब बातों का नतीजा यह निकला कि समाज के अभावग्रस्त, उपेक्षित, दबे–कुचले दर्शकों के प्रवेश ने फिल्म–निर्माताओं को इस बात पर अमल करने और सोचने के लिए विवश कर दिया कि सिनेमाघरों की दर्शक–सीटों पर ही क्यों, सिने परदों पर भी क्यों ना आम आदमी की मौजूदगी दर्ज हो।

साहित्य का आम आदमी सिनेमाघरों की सीटों से उठकर सिने परदों पर आने के लिए संघर्ष करने को सर्वप्रथम तेज़ी प्रदान की प्रेमचंद के साहित्य ने। उनके बारे में कुछ बातें खास तौर पर उल्लेखनीय हैं। उन्होंने सन् 1907 से लेकर 1936 तक, आम आदमी को केन्द्र में रखकर नानविध सामाजिक विषयों पर 'जागरण', 'हंस', 'जमाना', 'प्रताप', 'माधुरी', 'कलीम',

'उर्दू–ए–मुल्ला', 'मर्यादा', 'आवाज–ए–खल्क', 'आज', 'शुद्ध समाचार', 'कल्याण', 'समालोचक', 'युवक', 'धर्मवीर' जैसी पत्र–पत्रिकाओं में प्रचुर लेख, संपादकीय, समीक्षाएँ और टिप्पणियाँ लिखी थीं, जिन्हें सभी तबकों के लोगों द्वारा पढ़ा गया। इन सारगर्भित और प्रासंगिक लेखों, टिप्पणियों आदि में उन्होंने न केवल गुलाम भारत की दिलचस्प तस्वीर खींची, अपितु अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक एवं राजनीतिक परिदृश्य को प्रभावित करने वाले तथ्यों, घटनाओं और आम जनजीवन पर अपने बेवाक विचार प्रकट किए। वास्तव में, प्रेमचंद सामाजिक रूप से अत्यंत जागरूक और संवेदनशील व्यक्ति थे, जो साहित्य में पदार्पण करने से पहले इस देश के आम जीवन का जायज़ा बड़ी सूक्ष्मता से ले रहे थे।

इसमें दो राय नहीं होनी चाहिए कि सिनेमा का प्रगतिशील काल प्रेमचंद के आगमन से ही चमत्कृत हुआ, बल्कि यूँ कहना चाहिए कि सिनेमा का स्वर्णयुग प्रेमचंद की कहानियों के हस्तक्षेप से ही आरंभ होता है, जबकि उन्होंने बड़े ठोस इरादे से मुंबई (दादर) के फिल्म–निर्माण उद्योग में वर्ष 1934 में वार्षिक अनुबंध पर प्रवेश किया था और मोहन भवनानी की फिल्म प्रोडक्शन कम्पनी 'अजंता सिनेटोन' से वे पटकथा लेखक के रूप में जुड़े थे, यद्यपि वह वहाँ अपना पैर पूरी तरह नहीं जमा पाए थे। काल ने उनके साथ छल करते हुए वर्ष 1936 में उनका भौतिक अस्तित्व ही मिटा दिया, अन्यथा कुछ साल संघर्ष करने के पश्चात् वह सिनेमा के न केवल न वैचारिक उन्नायक बनते, बल्कि इसके कायांतरण में भी उनकी प्रखर भूमिका होती। बेशक वह फिल्म–निर्देशक और फिल्म–निर्माता भी बनते। तब तो सिनेमा का परिदृश्य ही बिल्कुल अलग होता, जहाँ आम आदमी का प्रतिनिधित्व शत–प्रतिशत होता। उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द का दृष्टिकोण गुलाम देश के आम जन–जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन लाना था। वह अन्यायपूर्ण अंग्रेजी सत्ता के कट्टर विरोधी तो थे ही, इस देश में सदियों से राजतंत्रीय व्यवस्था के क्रूर कदमों तले कुचली जनता को अत्याचारों से निजात दिलाने के लिए भी कृतसंकल्प थे। उन्होंने अपने साहित्य के जरिए जो कुछ भी किया, वह आम आदमी के लिए ही था, जिसे कभी नहीं भुलाया जा सकता है। आम आदमी के उद्धार हेतु ऐसे विचारों के साथ प्रेमचंद के सिनेमा–उद्योग में प्रवेश से एक वैचारिक क्रांति का सूत्रपात होना बहुत जरूरी थी। ऐसा तभी संभव हो पाता, जबकि आम आदमी समाज में बेहतर ढंग से मुखर होता और सामाजिक जीवन का वह एक अभिन्न घटक बनता।

बहरहाल, निर्माता–निर्देशक मोहन भावनानी ने बड़े विरोध और अंग्रेज़ी शासन के खिलाफ श्रमिक एकता लाने के लिए वर्ष 1934 में श्रमिक जीवन को केन्द्र में रखकर उनकी एक क्रांतिकारी कहानी पर 'मज़दूर' फिल्म बनाने की गुस्ताखी की। प्रेमचंद ने खुद इस फिल्म में एक श्रमिक नेता के रूप में अभिनय भी किया था, जिससे यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि फिल्म उद्योग में उनका पदार्पण महज़ इत्तफाक नहीं था, बल्कि वह इसे लेकर बहुत गंभीर थे। बहरहाल, उक्त फिल्म के मुंबई में रिलीज़ पर वहाँ के एक प्रभावशाली बिजनेसमैन ने कोर्ट का स्थगन आदेश ले लिया था। दरअसल, इस फिल्म ने मज़दूर संगठनों को अपने हित और राष्ट्रीय स्वतंत्रता के प्रति इतना जागरूक बना दिया कि अंग्रेज़ हुक्मरानों ने इस पर सेंसर लगा दिया। यद्यपि इस फिल्म का प्रदर्शन कहीं–कहीं कुछ महीनों तक ही हो सका, तथापि इसने साहित्य में पाँव जमा रहे उपेक्षित श्रमिक के रूप में आम आदमी को सिने परदों पर प्रतिबंधित करके फिल्म–निर्माताओं को नव–प्रयोगों के प्रति अत्यंत मुखर बनाया। इसके चलते उसी वर्ष फिल्म–निर्माता नानूभाई वकील ने प्रेमचंद के उपन्यास 'सेवासदन' के कथानक पर आधारित फिल्म बनाई और तत्पश्चात् इसी उपन्यास पर वर्ष 1938 में तमिल फिल्म–निर्माता के. सुब्रमण्यम ने फिल्म बनाई, जो बॉक्स आफिस पर बेहद सफल रही। 'सेवासदन' पर बनी दोनों फिल्म केवल इसलिए मकबूल रहीं कि इनमें आम जनजीवन की जटिलताओं, स्त्रियों से संबंधित समस्याओं, उपेक्षितों के शोषण और सामाजिक क्रूरताओं का यथार्थ चित्रण है।

इस प्रकार सिनेमा जगत का स्वर्णिम दौर 20वीं शताब्दी के तीसरे दशक से आरंभ हुआ। प्रेमचंद के अवतरण से पहले बांग्ला कथा–साहित्य का हिन्दी फिल्मों में आशाजनक प्रयोग किया गया। चूँकि उस दौर में हिन्दी का कथा–साहित्य अपेक्षानुसार समृद्ध नहीं था, इसलिए बांग्ला कथा–साहित्य का हिन्दी में धड़ल्ले से अनुवाद हो रहा था और इस दिशा में स्वयं बांग्ला साहित्यकार और खासतौर से बांग्ला फिल्म–निर्माता अगुवाई कर रहे थे, क्योंकि उन्हें बहुसंख्यक हिन्दीभाषी जनता की हिन्दी फिल्मों की माँग जो पूरी करनी थी। यह बात विशेष रूप से रेखांकित की जानी चाहिए कि बांग्ला कथा–साहित्य हर नज़रिए से आम आदमी की जीवनचर्या और उसके क्रिया–व्यापार पर केन्द्रित था– आम आदमी की संवेदनाओं का सफल संवाहक था। आम आदमी को फिल्म और साहित्य के ज़रिए समाज में मुखर करने के लिए प्रयास भी हुए। शरतचंद्र चट्टोपाध्याय की बांग्ला कृति 'देवदास' पर आधारित 1936 में 'प्रमथेस बरुआ' फिल्म बनी, जिसके कथानक का आधार बनाकर 1955 में दिलीप कुमार द्वारा अभिनीत एक फिल्म बनाई गई और 2002 में संजय लीला भंसाली ने भी 'देवदास' फिल्म बनाई। यह फिल्म हर आम आदमी के दिल में धड़कन प्यार की हृदयस्पर्शी कहानी कहती है। चट्टोपाध्याय के उपन्यास 'परिणीता' पर आधारित बिमल रॉय ने 1953 में, अजय कार ने 1969 में और प्रदीप सरकार ने 2005 में फिल्में बनाई।

यह फिल्म औरत की अस्मिता को बार–बार रेखांकित करती है। वर्ष 1948 में शाहिद लतीफ ने इस्मत चुगताई की कहानी पर आधारित 'जिद्दी' फिल्म का निर्देशन किया। 1954 में विमल रॉय के निर्देशन में चट्टोपाध्याय के उपन्यास पर 'बिराज बहू' फिल्म बनाई गई। इन दोनों फिल्मों में भी सनातनी रवायत से आबद्ध आम औरत की जिन्दगी को व्याख्यायित किया गया है। सुबोध घोष की कहानी पर 1959 में 'सुजाता' का निर्देशन विमल रॉय ने ही किया। यह फिल्म छुआछूत की कुप्रथा पर केन्द्रित है। 1961 में चतुरसेन के उपन्यास 'धर्मपुत्र' पर केन्द्रित इसी नाम से यश चोपड़ा ने फिल्म बनाई। यह फिल्म एक मुस्लिम दम्पति के अवैध संतान की कहानी है, जिसमें उस मुस्लिम बच्चे का पालन–पोषण एक उदारवादी हिन्दू परिवार करता है। 1962 में विमल मित्र के उपन्यास 'साहब, बीबी और गुलाम' पर गुरुदत्त के बैनर तले अबरार अल्वी ने फिल्म बनाई। 1963 में त्रिलोक जेटली के निर्देशन में प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान' पर गाँव के परिवेश में वहाँ के दयनीय जीवनचर्या पर केन्द्रित फिल्म बनाई गई। चारूचंद्र चक्रवर्ती के बांग्ला उपन्यास 'तामसी' पर बिमल रॉय ने 1963 में 'बंदिनी' का निर्देशन किया और 1965 में रवीन्द्रनाथ टैगोर की कहानी 'काबुलीवाला' पर आधारित हेमन गुप्ता के निर्देशन में एक फिल्म का निर्माण किया। जनमानस के अभिनेता बलराज साहनी द्वारा अभिनीत यह फिल्म विदेश में रहनेवाले देशभक्त की भावनाओं को व्यक्त करती है। 1966 में प्रेमचंद्र के उपन्यास 'गबन' पर फिल्म का निर्देशन ऋषिकेश मुखर्जी ने किया। 1968 में गुजरती कथाकार गोवर्धनराम माधवराम त्रिपाठी के उपन्यास को आधार बनाकर गोविंद सरैया ने 'सरस्वतीचन्द्र' का निर्माण किया। इस फिल्म में तत्कालीन संक्रमणशील समाज में सनातनी परंपराओं और पुराने मूल्यों के साथ नवीन मूल्यों को अपनाए जाने की कहानी गढ़ी गई है। 1969 में मृणाल सेन ने बलाई चंद्र मुखोपाध्याय की बांग्ला कहानी पर आधारित 'भुवन सोभ' का निर्माण और निर्देशन किया। यह फिल्म एक विधुर की कहानी है जो सिविल सेवा का एक आम कर्मचारी है। 1970 में असित सेन ने आशुतोष मुखर्जी के बांग्ला उपन्यास पर आधारित 'सफर' फिल्म का निर्देशन किया। यह फिल्म दो गरीब भाइयों के बीच एक औरत के प्रेम की कहानी कहती है। कहानी का अंत त्रासद एवं दुखांत होता है। 1971 में के.बी. तिलक ने शरतचंद्र चट्टोपाध्याय की कृति

'बिन्दुर छेले' पर 'छोटी बहू' फिल्म का निर्देशन किया, जो एक मध्यमवर्गीय परिवार की कहानी है। 1975 में कमलेश्वर की कहानी 'आगामी अतीत' पर केन्द्रित 'मौसम' फिल्म का निर्देशन–निर्माण गुलज़ार ने किया। यह फिल्म भी दो प्रेमियों के प्रेम की कहानी पर आधारित है, जिसमें प्रेम में विफल प्रेमी कोई पच्चीस साल बाद अपनी प्रेमिका की तलाश में निकलता है, जबकि उसे पता चलता है कि उसका विवाह किसी अपाहिज के साथ हो गया है और वह एक बच्ची को जन्म देकर मर चुकी है, जो बड़ी होकर एक वेश्यालय में काम करती है। ऐसे में उक्त प्रेमी को उसे अपनाने के लिए उसे खरीदना पड़ता है।

तरुण मजूमदार ने बांग्ला लेखक विमलकार के उपन्यास पर 'बालिका वधू' का निर्देशन 1976 में किया। यह फिल्म मध्यमवर्गीय सनातनी परिवार में एक अविवाहित नाबालिग कन्या की कहानी पर आधारित है। सत्यजीत राय ने 1977 में प्रेमचंद की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' पर आधारित फिल्म का निर्देशन किया। इसकी कहानी 1856 में अवध नवाब वाजिद अली शाह के दो अमीरों के इर्द–गिर्द बुनी गई है, जो शतरंज के खेल में मशगूल होने के कारण अपने शासन, परिवार और जनता के हित को भी ताक पर रख देते हैं। इसकी कीमत उन्हें अपनी हुकूमत गँवाकर चुकानी पड़ती है। यह फिल्म हमारी गुलामी के कारणों की बखूबी पड़ताल करती है। 1960 के दशक में बांग्ला फिल्मकार मोनी भट्टाचार्य के निर्देशन में चंद्रधर शर्मा गुलेरी की अमर कहानी 'उसने कहा था' पर भी फिल्म बनी, जिसमें आम जीवन में प्रेम के महत्त्व को बेहतरीन ढंग से रेखांकित किया गया है। विमल रॉय प्रोड्क्शन की यह कहानी प्यार के प्रति समर्पण और त्याग का मार्मिक संदेश देती है कि आम आदमी के जीवन में प्यार का कितना महत्त्व है, जहाँ जान न्योछावर करना भी कोई बड़ी बात नहीं होती।

1978 में रस्किन बांड के उपन्यास 'ए फ्लाइट आफ पीजन्स' पर केन्द्रित 'जुनून' फिल्म का निर्देशन श्याम बेनेगल ने किया। 1980 में शरतचंद चट्टोपाध्याय के उपन्यास 'निकृति' पर बासु भट्टाचार्य ने 'अपने पराए' नामक फिल्म का निर्देशन किया, जो टूटते हृदयवहीन संबंधों की कहानी है। श्याम बेनेगल ने धर्मवीर भारती के उपन्यास 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' को 1992 में फिल्माया। आज़ादी के बाद की पृष्ठभूमि में छोटे कस्बे में निम्न मध्यम वर्ग के सामाजिक ताने–बाने को इस फिल्म का आधार बनाया गया है। 1998 में खुशवंत सिंह के उपन्यास पर केन्द्रित 'ट्रेन टू पाकिस्तान' फिल्म का निर्देशन पामेला रूक्स ने किया। 2002 में अर्जुन सजनानी ने गिरीश कर्नाड के अंग्रेज़ी नाटक 'रेन एंड फायर' पर आधारित 'अग्निवर्षा' का निर्देशन किया। 2004 में अनुराग कश्यप ने एस0 हुसैन ज़ैदी के अंग्रेज़ी उपन्यास 'ब्लैक फ्राइडे–द टू स्टोरी ऑफ बॉम्बे ब्लास्ट्स' पर आधारित 'ब्लैक फ्राइडे' नामक फिल्म का निर्देशन किया। राजकुमार हिरानी ने चेतन भगत के उपन्यास 'फाइव समयन' पर केन्द्रित 'थ्री इडियट्स' का निर्माण 2009 में किया। साहित्यिक कथाओं पर आधारित इन सभी फिल्मों ने समाज में मानवीय भावनाओं और संवेदनाओं का संचार किया। इंसानी बेचारगी, अंधी परंपराओं और दकियानूसी रीति–रिवाजों के बोझ से बिलखते आदमी की मजबूरी, स्त्री–दासता, अंग्रेज़ी गुलामी, युवाओं के भटकाव आदि जैसे विषयों को बार–बार रेखांकित किया गया है।

प्रेमचंद के कथा–साहित्य ने भारतीय सिनेमा को जनसाधारण के जीवन पर आधारित समृद्ध कथाएँ गढ़ने की बेमिसाल परंपरा दी, जिससे हटकर सोचने की बात आज के फिल्म–निर्माताओं के जेहन में आती ही नहीं। स्त्रियों और खासकर विधवाओं की समस्याएँ, महाजनी व्यवस्था से त्रस्त गांवों के दर्द, भेदभावपूर्ण, जातीय द्वंद्व, अस्पृश्यों की व्यथा, दलितों के उत्पीड़न आदि जैसे विचार उनकी परवर्ती फिल्मों में बार–बार प्रमुखता से उभरकर लोगों को द्रवित करते रहे हैं। 1936 में उनके स्वर्गवास के बाद जब उनके उपन्यास 'गोदान', 'गबन' और 'रंगभूमि' पर भी फिल्में बनीं, तब ऐसा माना जाने लगा कि हिन्दुस्तानी फिल्मों का उद्देश्य ही उस गुलामी के दौर में आज़ादी की आवाज़ बुलंद करने के साथ–साथ देश की जटिल, भेदभावपूर्ण और पक्षपातपूर्ण व्यवस्थाओं में पिस रहे आम आदमी को आर्थिक, धार्मिक, जातीय और सभी प्रकार की सामाजिक बर्बरताओं से निजात दिलाना है और इन उद्देश्यों के लिए प्रेमचंदीय साहित्य सर्वोपयुक्त है। प्रेमचंद की कहानियों की फिल्मों में उपयोगिता लगातार बढ़ती रही है और इसकी सार्थकता इस बात से भी आंकी जा सकती है कि खुद गुलज़ार ने उनकी कहानियों का प्रयोग अपनी फिल्मों में किया है।

यहां एक खास बात उल्लेख्य है कि 20वीं शताब्दी के तीसरे दशक से ही साहित्य और सिनेमा के बीच द्वंद्वात्मक संबंध दृष्टिगोचर होने लगे थे। जिन साहित्यकारों की कथाओं पर फिल्में फिल्माई जाती थीं, उनका आग्रह था कि उनकी कहानियों में किंचित बदलाव न किया जाए, जबकि फिल्मकार अपनी फिल्मों को लोकप्रिय और कमाऊ बनाने के लिए गंभीर साहित्यिक कहानियों में अतिरंजित हास्य–व्यंग्य का तड़का लगाकर दर्शकों के समक्ष परोसने पर आमदा थे। साहित्यकार वल्गैरिटी के खिलाफ थे, जबकि फिल्म–निर्माता इस वल्गैरिटी को ही तरज़ीह देते थे; क्योंकि इसी के बदौलत उनकी फिल्में बॉक्स ऑफिस पर हिट होती थीं। फिल्म–निर्माताओं की इस आदत से फिल्मों में आम आदमी की मौजूदगी पर प्रश्नचिह्न लगने लगा; क्योंकि वह भी अतिरंजित प्रस्तुतियों का एक हिस्सा बनकर किसी काल्पनिक जगत् का पात्र बन जाता था। साहित्य और सिनेमा के भी इस खींचातानी के चलते आम आदमी के जीवन के यथार्थ चित्रण में दिक्कतें आना लाज़मी था। इस संबंध में, उन सभी साहित्यकारों को बड़ी आपत्ति रही है, जिनकी कहानियों पर फिल्में बनाई जाती थीं।

प्रेमचंद फिल्मों में बल्गैरिटी के सख्त खिलाफ थे। वह साहित्य को फिल्म में यथावत्! रूपांतरित किए जाने के पक्ष में थे। उन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों में समाज के जिस यथार्थ और आदर्श स्वरूप का चित्रण किया है, उसके प्रमुख किरदार के रूप में मजदूर और किसान का प्रतिनिधित्व आम आदमी के रूप में हिन्दी फिल्मों में लगातार बढ़ता रहा है। जिन साहित्येतर लेखकों की कहानियों पर फिल्में बनाई गई, उनमें भी यह प्रभाव दिखाई देता है, इसके अलावा प्रेमचंद के समकाल के इर्द–गिर्द कथा–साहित्य लिखनेवाले आचार्य चतुरसेन, अमृतलाल नागर, सुदर्शन, गुलेरी, भगवतीचरण वर्मा, सेठ गोविंददास आदि के साहित्य पर जो फिल्में बनीं, वे आम के सरोकारों से जुड़ी रही हैं। इन साहित्यकारों में आचार्य चतुरसेन के ऐतिहासिक उपन्यासों में भी वर्णित राजतंत्र के वैभवशाली समाज में उन्हीं पात्रों को ज्यादा रेखांकित किया गया है, जिनसे आम आदमी स्वयं को अत्यधिक आत्मीय पाता है। इसका एक ज्वलंत उदाहरण उनके 'वैशाली की नगरवधू' पर लेख टंडन के निर्देशन में बनी फिल्म 'आम्रपाली' (1966) है, जिसमें पाठक और दर्शक की पूरी सहानुभूति नगर की वेश्या आम्रपाली के प्रति रहती है, जो स्त्री–दासता की सामाजिक व्यथा बयां करती है और जो पुरुष–भोग की एक आवश्यक वस्तु के रूप में वर्णित है। आम्रपाली भले ही एक ऐतिहासिक और पौराणिक पात्र है, वह प्रेमचंदीय नारी पात्रों की भाँति हमारी सहानुभूति, दया और सुरक्षा के लिए आर्त याचना करती हुई प्रतीत होती है। उसका आर्तनाद 1966 में फणिश्वरनाथ रेणु की कहानी 'मारे गए गुलफाम' की अनुकृति पर निर्मित बासु भट्टाचार्य की 'तीसरी कसम' की प्रमुख किरदार हीराबाई की दमित आह के समानांतर गुंजित होता है।

प्रेमचंद के कथा–साहित्य को फिल्माने की कोशिश बार–बार की जाती रही है। टेलीफिल्में भी बनाई गईं। एक फिल्म 'सद्गति' है, जिसे सत्यजीत राय के निर्देशन में तैयार किया गया। वर्ष 1981 में दूरदर्शन पर इसका प्रसारण हुआ। यह फिल्म चर्चा के केन्द्र में रही; क्योंकि इसमें भारत के आम जीवन में व्यवहृत जातीय भेदभाव को जमकर उभारा गया है।

साहित्य की बेहतर समझ रखनेवाले बांग्लाभाषी बासु भट्टाचार्य ने वर्ष 1969 में राजेन्द्र यादव के उपन्यास 'सारा आकाश' और वर्ष 1974 में मन्नू भंडारी

की कहानी 'यही सच' ('रजनीगंधा') पर आधारित दो और फिल्में बनाई, जिनमें औरत के किरदार को भारतीयता के रंग नारी के समानांतर रखा गया है। आम औरत के चरित्र को बड़े महीन स्तर पर उकेरनेवाली ये दोनों फिल्में इतनी मार्मिक हैं कि मानस पटल पर औरत की छवि स्थायी रूप से अंकित हो जाती है। 'सारा आकाश' एक मध्यमर्गीय परिवार की कहानी है, जिसमें पति–पत्नी में विवाहोपरांत उत्पन्न विवाद को उठाया गया है।

कमलेश्वर की कहानियों 'काली आँधी' पर गुलजार में 1975 में बनी फिल्म 'आँधी' और उन्हीं की कहानी 'फिर भी' पर 1969 में ओ.पी. रल्हन द्वारा निर्देशित फिल्म 'तलाश' ऐसी फिल्में हैं, जिनमें अवसादग्रस्त आदमी की निराशा और हताशा को रूपायित किया गया है। ये दोनों फिल्में सभी वर्गों द्वारा प्रशंसित हुई। इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण यह भी है कि इन फिल्मों की कहानियों और पात्रों से हर वर्ग के और ख़ासतौर से आम आदमी ने स्वयं को जोड़कर देखा है। वास्तव में, फिल्म क्षेत्र में कमलेश्वर के हस्तक्षेप ने फिल्म जगत् को मर्यादित ऊँचाइयाँ दी हैं। उनका संपर्क गुलज़ार जैसे साहित्यिक रुचिवाले अनेक फिल्मी हस्तियों से भी था, जिन्हें कैरियर का लंबा तजुर्बा रहा है। उनके उपन्यास 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' और 'डाक बंगला' पर क्रमशः 1971 और 1974 में बनी दोनों फिल्में 'बदनाम बस्ती' और 'डाक बंगला' आम आदमी की संवेदनाओं और भावनाओं को खुद में बखूबी समेटे हुई हैं। इस सातवें दशक में सिनेमा जगत् में बौद्धिक चेतना पूरी निखार पर थी और ऐसा लग रहा था कि आम आदमी के जीवन पर केन्द्रित साहित्यिक कथाओं को फिल्माने का एक ताबड़–तोड़ दौर आरंभ होनेवाला है। किन्तु, इसी दरम्यान फिल्म जगत् में दो सुपरस्टारों राजेश खन्ना और अमिताभ बच्चन के अवतरण से ऐसी साहित्येतर कथाओं को तरजीह दिया जाने लगा, जिनसे फिल्मों के एक्शन, मार–धाड़, ग्लैमर और विस्फोटक संगीत को बढ़ावा मिल सके और फिल्में कमाऊ बन सकें। फिल्मी स्टारों ने भी अपनी मक़बूलियत के अनुसार अभिनय करने के लिए अपनी–अपनी ऊँची फीसें नियत कर दीं। निर्माता–निर्देशकों की तो बात ही मत पूछिए, उन्होंने भी फिल्म उद्योग को सिर्फ सोने के अंडे देनेवाली मुर्गी मान लिया। बहरहाल ऐसे निर्माता–निर्देशकों की कोई दुर्भिक्ष नहीं है, जो साहित्य को आधार बनाकर फिल्म बनाने से बाज़ नहीं आ रहे हैं और छिटपुट ही सही, व्यावसायिक और मारधाड़वाली ग्लैमरयुक्त फिल्मों के साथ–साथ साहित्यिक कृतियों पर आम आदमी पर केन्द्रीय फिल्मों के निर्माण में पहल कर रहे हैं।

प्रख्यात साहित्यकार का श्रीनाथ सिंह के संस्मरणात्मक उपन्यास 'काशी का अस्सी' पर केन्द्रित फिल्म का निर्माण चंद्रप्रकाश द्विवेदी ने किया है। 'अस्सी मोहल्ला' नामक फिल्म के प्रमुख किरदार सनी देओज और रवि किशन हैं। इस फिल्म में बनारस के आम आदमी के पारस्परिक द्वन्द्वों और संबंधों का लोमहर्षक चित्रण किया गया है। चंद्रप्रकाश द्विवेदी के लिए इस फिल्म का निर्माण चुनौतीपूर्ण रहा है; क्योंकि उक्त उपन्यास का निहिताशय अत्यंत गंभीर रहा है, जो सिनेमा के लिए सहज संप्रेषणीय नहीं है। इसके अतिरिक्त अभिषेक कपूर की 'काई पो छे' चेतन भगत के नॉवेल 'दि थ्री मिस्टेक्स ऑफ माई लाइफ' पर आधारित फिल्म है। कितना भी प्रौद्योगिक और कंप्यूटरी विकास में हम छलाँगे मार लें, पर मनुष्य गलतियाँ करने से बाज़ नहीं आएगा। तभी तो वह आम आदमी के नाम को सार्थक कर पाएगा। चेतन के दूसरे उपन्यास 'फाइव प्वाइंट्स समवन' पर राजकुमार हिरानी ने 'थ्री इडियट्स' बनाकर सिनेमा में आम आदमी की उपस्थिति को महत्त्वांकित किया है।

आम आदमी के साथ चलते–चलते भारतीय सिनेमा ने सभी सामाजिक और धार्मिक वर्जनाओं और राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं को तोड़ा है, लेकिन साहित्य का दामन कभी नहीं छोड़ा है। हाँ, ऐसे दृष्टांत बहुतायत से देखने को मिले हैं कि साहित्यिक कथाओं को फिल्मों में तोड़–मरोड़कर प्रस्तुत किया गया है, व्यावसायिक फिल्मों की अंधाधुंध दौड़ की साहित्यिक कथाएँ भी फिल्माई जाती रही हैं और फिल्माई जाती रहेंगी। यद्यपि अंग्रेजी सिनेमा की भाँति हिन्दी सिनेमा में साहित्यिक कृतियों पर उतनी फिल्में नहीं बनाई गईं, जितनी बनाई जानी चाहिए थीं, तथापि जिस महान स्वप्नद्रष्टा ने अपने निजी जीवन को कंगाली के बड़वानल में झोंकते हुए भारतीय सिनेमा को यथार्थ जगत् पर अवतरित करने के लिए रात–दिन सपने देखे, उस व्यक्ति का भी यही सपना था कि सिनेमा आम आदमी का जीवंत दर्पण बने। निःसंदेह, दादा साहेब फाल्के का यह सपना धीरे–धीरे साकार हो रहा है। आज के निर्माता–निर्देशकों की साहित्य में दिलचस्पी बढ़ती जा रही है। आनेवाले दिनों में साहित्य और सिनेमा दोनों मिलकर समाज में आम आदमी के जीवन को सर्वांगीण तौर पर बेहतर बनाने की अपनी–अपनी भूमिकाओं को बखूबी निभाएँगे।

कविता

पूर्ण हुआ जन्म का अंतिम सफर

मंजु गुप्ता,
वाशी, नवी मुम्बई

छंद मुक्त कविता
जन्म से शुरू होता
मौत का सफर
हाँ! माँ की अँधेरी कोख से
प्रस्फुटित बीज
पोषित–पल्लवित, प्रकाशित
हो के गुजारे गुलजार जीवन के
कुल इकत्तर पड़ाव
कितनी बाधाओं, संघर्षों को चीरा
राह के रोड़ों को
राह के लिए हटाया
सफल हुआ बढ़ता हुआ कदम
रोजगार के लिए प्रशासनिक सेवा

जिजीविषा को मिली मंजिल
एक जिम्मेदार नागरिक
घर, समाज, देश का उजाला
फिर
खुशियों की शहनाई बजी
मिली जीवन की फूलझड़ी
झूमी वासंती बहार
चहुँ ओर वसंत के संग वसंत
किसे मालूम था
टूटेंगे सपने
रूठेंगे अपने
जीवन बहार बनेगी ठूँठ
अनहोनी का अकाल हादसा

लील गया जीवन रथ
पूर्ण हो गया
जन्म का अंतिम सफर
मुक्त हो गया बंधनों से
छोड़ के सांसारिक धाम
चला गया परम धाम

आलेख

रघुवीर सहाय के काव्य में ऐन्द्रिक बोध

नीरज कुमार सिन्हा, नेट (जे.आर.एफ)
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, ति.माँ.वि.वि. भागलपुर
मो 7033295704

'ऐन्द्रिक बोध' वाक्य के अर्थ को यदि विशदता से लिया जाये, तो किसी प्रकार का बोध ऐन्द्रिय ही होता है। हमारे पाँच ज्ञानेन्द्रिय हैं, इन्हीं के माध्यम से हमे बोध होता है। इसलिए जितनी साहित्यिक रचनाएँ हैं, वे ऐन्द्रिक बोध से परे नहीं हो सकते; परन्तु इस ऐन्द्रिक बोध को जब अंग्रेजी के शब्द रोमांटिक से सन्दर्भित किया जाता है, तब इसके अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। अंग्रेजी के 'रोमांटिक' शब्द का अर्थ हिन्दी में अर्थ लिया गया है–प्रेम प्रसंगयुक्त, अजीब, अद्‌भुत, अवास्तविक, अव्यावहारिक, असम्भव, कल्पित, खयाली, रोमन, विलक्षण, रूमानी, रोमानी, कल्पित कथा सम्बन्धी प्राकृतवाद, आदि।

उपर्युक्त भावों को यदि कविता के सन्दर्भ में देखा जाए तो ऐसी अनेक कविताएँ हमारी हिन्दी भाषा के काव्य–जगत् में पाई जाती हैं, जो प्रेम विरह, मिलन, आनन्द आदि को कल्पना के माध्यम से, उपमाओं के माध्यम से, प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त कर भावों के तदनुरूप जगाए जाते हैं। इस प्रकार की रचनाओं में सुखद या दुःखद रंगीनियाँ अधिक होती हैं। दुखद रंगीनियाँ को स्पष्ट करने से ज्ञात होगा कि जब प्रेमिका या प्रेमी से विरह होता है तो दुख होता है, मगर उस दुःख में भी कहीं–न–कहीं प्रेमजनित आनन्द की अनुभूति ही होती है। इस प्रकार की कविताओं में राजनीति, अन्याय, शोषण, उत्पीड़न, असमानता, अन्याय, सांसारिक दुःख आदि का समावेश न रहकर प्रेम, श्रद्धा, अपनापन, आदर आदि के भाव विशेष रूप से सन्निहित रहते हैं। इस सन्दर्भ में अंग्रेजी के 'रोमांटिक' शब्द का अर्थ 'प्रेमप्रसंग युक्त' और प्राकृतवाद से लेना उचित प्रतीत होता है। मेरी दृष्टि में 'रूमानी' या 'रोमानी' का अर्थ भी यही होता है। हिन्दी साहित्य में यह एक पुरानी परम्परा है। हाँ, अंग्रेजी साहित्य की देखा–देखी इस रोमांटिसिज्म का एक प्रकार से हिन्दी साहित्य में भी नवीकरण हो गया है।

किसी भी प्रकार की कविता की रचना के लिए युगीन परिस्थितियाँ ही मूल आधार होती हैं। युगीन परिस्थितियों के साथ–साथ किसी न किसी रूप में रचनाकार की अवस्था भी रोमानियत की भावना जगाती है।

उपर्युक्त दृष्टि से यदि रघुवीर सहाय की रचनाओं को कालबद्ध किया जाय तो स्पष्ट होगा कि सहायजी ने अपनी रचनाओं का आरंभ रोमांटिक रूप में ही किया था। इसका एक प्रधान कारण तो यह था कि 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय जनमानस में एक नवीन उत्साह, एक नई आशा, एक भावी मंगल होने की भावना जगी थी, जो कम–से–कम अगले दस वर्षों तक रही। इन दस वर्षों में प्रायः सभी रचनाकारों ने उत्साह, उमंग, नई आशा, नवीन उल्लास और प्रेम प्रसंगों से पूरित कविताओं की रचनाएँ कीं। रघुवीर सहाय भी उन्हीं कवियों में से एक थे, जिन्होंने प्रेम–प्रसंग पूरित, आशा, उमंग से भरी रोमांटिक रचनाएँ कीं। इस सन्दर्भ में समालोचक सुरेश शर्मा के प्रश्न के उत्तर में रघुवीर सहाय जी ने स्वीकारा है कि 'एक तो यह कि जब मैंने लिखना शुरू किया था, तब उन्हीं दिनों देश को आजादी मिली थी और एक तरह की आशा और स्वप्न से मैं जुड़ा था, दूसरा यह कि क्या मैं उस समय अपने लिखने के उद्देश्य को जानता था?याकि और भी कुछ कारण थे, जिससे मेरा उद्देश्य निश्चित होता था?एक बहुत बड़ा क्षितिज हो सकता है, जिसमें वह उद्देश्य फैला हुआ हो, केवल सुन्दर स्वर छन्द, शब्द को पहचानना, उन्हीं को फिर से सृजित करना, यह भी एक उद्देश्य का हिस्सा था। कुछ ऐसी बातें हैं, जो न्यायोचित और सत्य लगती हैं, उनको कहना भी उद्देश्य था। इस प्रकार उद्देश्य की पूरी एक परिधि हो सकती है। मैं नहीं कहूँगा कि उस समय मैं अच्छी तरह पहचानता था, लेकिन वह रहा जरूर होगा।'

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सुन्दर भविष्य के स्वप्न की चर्चा करते हुए आगे रघुवीर सहाय ने कहा कि ''इसलिए मैं आपका उत्तर यही दूँगा कि मेरे मन में लिखने का कोई उद्देश्य पूरी तरह स्पष्ट नहीं था, लेकिन आशा के अलावा लिखने के दूसरे जो प्रेरक तत्त्व थे, उनमें एक बहुत बड़ा तत्त्व था भाषा का आकर्षण। जो कुछ उससे पहले लिखा–पढ़ा था, उसी के आधार पर एक नई चीज, सुन्दर चीज बनाने का मोह या लोभ, यही लिखने के दूसरे प्रेरक तत्त्वों में थे और यद्यपि उस समय सामाजिक स्तर पर या राजनैतिक स्तर पर या यहाँ तक कि साहित्यिक समझ के स्तर पर मेरा दिमाग बहुत विकसित नहीं था, लेकिन कुछ मौलिक बातों के बारे में, जो सामाजिक मूल्य कहे जा सकते हैं, उनके बारे में दृष्टि जरूर यथेष्ठ स्पष्ट थी।''[1]

रघुवीर सहायजी की उपर्युक्त स्वीकृति से स्पष्ट है कि कविता लिखने के अपने प्रारंभिक काल में देश की छिपी हुई यथार्थता और आनेवाले कठिन भविष्य की जानकारी उन्हें नहीं थी और न उनका काव्यिक मस्तिष्क ही उतना परिपक्व था कि वो गंभीर यथार्थ की कविताएँ लिखते। रघुवीर सहाय ही नहीं, अपितु उस वय के और उस काल के अनेक कवि सहाय जी की तरह ही स्वतंत्रता के उमंग में तरंगायित थे और रोमांटिक कविताएँ लिखा करते थे।

सुरेश शर्मा ने सहायजी से एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह पूछा कि–''लेकिन क्या यह आशा और स्वप्न का प्रसंग इतना महत्त्वपूर्ण था कि आजादी के बाद विभाजन, दंगा, गाँधी की हत्या के संदर्भ, नए रचनाकारों के सोच को प्रभावित नहीं कर सके और निरन्तर एक रोमानियत उनकी उस समय कविताओं में दिखाई पड़ती रही। उदाहरण के लिए 'दूसरा सप्तक' की अधिकांश कविताएँ ली जा सकती हैं।''

रघुवीर सहाय ने उत्तर दिया–''हाँ लगता है कि यह बात सही है, पर जिन लोगों ने इस रोमन को अपनी एक रचनात्मक उपलब्धि के रूप में पाया और उसी तरह से उसे सजाया–सँवारा और सिरजा, उसको सँभालकर रखा, उसको महत्त्व दिया, उन लोगों के संस्कार में, प्रशिक्षण में, जीवन में जिससे उन्होंने जो सीखा–समझा था, जिससे वे बने थे, उसी में यह निहित था कि वे सामाजिक रिश्तों के बारे में सचेत नहीं है, अगर हैं भी तो यथास्थितिवादी हैं। यहाँ तक कि जितने ऐसे तथ्य वे समाज में पाते हैं, जो प्रकट रूप से असत्य, अन्याय और अत्याचार को दिखाते हैं, उनके प्रति भी वे बहुत निर्भय हैं। वे इस हद तक यथास्थितिवादी है कि उनसे वे विचलित नहीं होते तभी खास तरह की मनःस्थिति मे हर चीज में उनको एक आशा–ही–आशा दीखती है, एक आकांक्षा–ही–आकांक्षा दीखती है, स्वप्न–ही स्वप्न–दीखता है और वे रोमानियत के तत्त्व को निरंतर स्थापित करते चल सकते हैं।ण्ण्ऐसे कवि जिनमें सामाजिक चेतना या तो है नहीं या है तो यथास्थितिवादी है, उस रोमानवाद के त्रष्टा है।''

इतना कहते हुए भी रघुवीर सहाय स्वयं को इस तर्क से बचा लेते हैं कि–''पर हमारे जैसे ऐसे बहुत–से लोगों के लिए जिन्होंने उस समय लिखना शुरू किया था, वह सामाजिक चेतना की शिक्षा का प्रारंभिक काल था। अगर आप यह सब कुछ मानकर चल रहे हों कि कवि जब लिखता है, तो एक बिल्कुल परिपक्व और पुष्ट ढंग से तैयार हो चुका होता है तो शायद ऐसा नही है।''[2]

रघुवीर सहाय के अनुसार आजादी के बाद कवियों की एक कोटि ऐसी थी, जो मूलतः रोमानवाद को ही अपना परम प्राप्य मानती थी, लेकिन हमारे जैसे लोग जो इस धारा में नहीं थे, उन्होंने बहुत जल्दी ही पाया कि यह जिस तरह की आशावादिता उनके मन में उत्पन्न होती है, उसको वे लगातार रोमानी शब्दों में प्रतिबिंबित करने में असमर्थ हैं; क्योंकि तुरंत उस कविता को खोखलापन दिखाई देने लगता था। इस समय के आने के पूर्व रघुवीर सहाय भी

अपनी कविता का प्रारंभ रोमांटिक रूप से ही किया था। उस समय के भारतीय परिदृश्य पर यदि सम्यक् दृष्टि डाली जाय तो 1947 के बाद करीब दस वर्षों तक एक तरह से उत्साह का समय था। भारतीयों को विश्वास था कि सुन्दर भारत के निर्माता हम ही लोग हैं। अपने समकालीन रचनाकारों के साथ रघुवीर सहाय ने भी अपने इस स्वातंत्रोत्तर मनःस्थिति को अनेक कविताओं मे व्यक्त किया है। 1959 में 'दूसरा सप्तक' में प्रकाशित अधिकांश कविताओं पर रोगात्मक एवं रूपानियत का गहरा प्रभाव है। इस सन्दर्भ में रघुवीर सहाय की–'पहला पानी' शीर्षक कविता को देखने पर पहले से स्पष्ट होता है कि भारतीय स्वतंत्रता के बाद रचनाकार को एक नई आशा और नया विश्वास है कि अब हमारे समाज से विकृतियाँ समाप्त होंगी एवं नये समाज की संरचना होगी–

''खुलकर बरसा पहला पानी
इन धुले–धुले विखों के नीचे से होकर
वह चली गाँव के गैल–गैल
कच्ची मिट्टी की सुधर गेहुँई दीवारें
मन ही मन भींगी
छवनी छप्पर नतशिर धारण करते जल
लम्बे–लम्बे जनपथ पर रहँकल की टेढ़ी–मेढ़ी लीकें
धुलती जातीं
फिर मिट्टी में जीवन की आशा जागी है
गलते है दकियानूसी मिट्टी के ढेले।''[3]

स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू के उस महत्त्वपूर्ण भाषण को रघुवीर सहाय ने भी सुना होगा जिसमे 14 अगस्त को संविधान सभा को सम्बोधित करते हुए पंडित नेहरू ने भारतीय जनता के मन की बात कही थी। करीब–करीब एक सौ वर्षों की परतंत्रता के बाद अपना देश स्वाधीन हुआ था। एक बर्बर युग का अन्त हुआ था, जिससे सभी भारतीय उमंगित और उल्लासित थे।यही कारण हुआ कि स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रथम दशक तक 'रोमांटिक मोह' का काल रहा।मूलतः यही कारण था कि रघुवीर सहाय की प्रारंभिक रचनाओं में रोमांनियत का रंग चढ़ गया। रघुवीर सहाय की–'दूसरा सप्तक' 1951 एवं 'सीढ़ियों पर धूप' 1960 में संकलित कविताएँ उनकी इसी मनःस्थिति का परीचय देती हैं। 'सीढ़ियों पर धूप' शीर्षक कविता संग्रह में संकलित सहाय जी की 'मेरा एक जीवन' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियों से उपर्युक्त अवधारणा प्रमाणित होती है–

''सारे संसार में फैल जाएगा एक दिन मेरा संसार
सभी मुझे करेंगे–दो चार को छोड़ कभी–न–कभी प्यार
मेरे सृजन, कर्म–कर्तव्य मेरे आश्वासन मेरी स्थापनाएँ
एक दिन मेरे जीवन को छा लेंगे–ये मेरे महत्त्व।
डूब जाएगा तंत्रीनाद कवित्त–रस में, राग में रंग में
मेरा यह महत्त्व
जिसमें मैं जीवित हूँ।
मुझ परितृप्त को तब आकर वरेगी मृत्यु–मैं प्रतिकृत हूँ।''[4]

श्री अभय कुमार ठाकुर रघुवीर सहाय की इस रूमानियत के सम्बन्ध में कहते हैं–रघुवीर सहाय की प्रारंभिक रचनाएँ इसी 'प्रतिकृत' मानसिकता को व्यक्त करती हैं जिसे रोमानी भाव–बोध गहरे रूप से जुड़ा है। लेकिन रघुवीर सहाय की रोमानियत छायावादी रोमानियत से इस बात में भिन्न है कि इसमें सहजता और साधारण की तुलना में भावोच्छ्वास बहुत कम है।यही कारण है कि शमशेर बहादुर सिंह ने रघुवीर सहाय को 'नॉर्मल रोमांस' का कवि कहा है। रघुवीर सहाय की रचनाओं की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसमें प्रकृति एवं मानवीय जीवन के सहज सामान्य चित्र हैं, जो यथार्थपरक होने का अहसास कराते हैं। सामान्य जीवन की सामान्य स्थिति होने का अहसास कराते हैं। सामान्य जीवन की सामान्य स्थितियों से काव्य की अन्तर्वस्तु का ग्रहण रघुवीर सहाय की अभिनय उपलब्धि है। यह मानसिकता केवल रघुवीर सहाय की रचनाओं में ही नहीं पाई जाती, बल्कि 1950 के आसपास विकसित 'नई कविता' के अधिकांश रचनाकारों में इसके पर्याप्त संकेत मिलते है।''[5]

रघुवीर सहाय के उस दौर की अधिकांश रचनाओं में प्रणय, सौन्दर्य एवं जीवन के प्रति विश्वास भाव मुखर तो है, पर उनकी रचनाओं की विशेषता यह है कि 'निराला' की रचनाओं की तरह रोमांटिक होते हुए भी यथार्थ जीवन से गहराई से जुड़ी हुई होती है। इस विशेषता की पुष्टि के लिए उनकी 'स्वीकार' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं–

''तुम में कहीं कुछ है
कि तुम्हें उगता सूरज, मेमने, गिलहरियाँ
कभी–कभी का मौसम
जंगली फूल, पत्तियाँ, टहनियाँ–भली लगती हैं
आओ उस कुछ को हम दोनों प्यार करें
एक दूसरे के उसी विचलित मन को स्वीकार करें।''[6]

सामाजिक समस्याओं से मुक्त एक युवा मन की ऐन्द्रिक बोध सम्बन्धी प्रेम–प्रणय की कामनाओं से पूरित कविताओं की ओर यदि दृष्टि डाली जाए तो प्रारंभिक दौर में रघुवीर सहाय ने ऐसी कई रचनाएँ की हैं, जो अवस्थानुकूल स्वाभाविक भी है। यह तो प्रकृति सत्य है कि प्रकृति और पुरुष का एक दूजे के प्रति आकर्षण होगा ही। सहायजी की 'याचना' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियों से इस तथ्य की पुष्टि होती है–

''युक्ति के सारे नियंत्रण तोड़ डाले
मुक्ति के कारण नियम सब छोड़ डाले
अब तुम्हारे बन्धनों की कामना है।
विरह यामिनी में न पल भर नींद आई
क्यों मिलन के प्रात वह नैनों समाई
एक क्षण ही तो मिलन में जागना है।''[7]

इसी प्रवृत्ति से पूरित सहायजी द्वारा रचित एक–दो गजलों में उनके प्रणय–भावों को देखा जा सकता हैं–

''खोल दो द्वार प्रेयसि, प्रात का
मुक्त हो बंदी अभागिन रात का
जानता हूँ किसलिए बिखरा तिमिर
क्योंकि खिलता था हृदय जलजात का
तप्त है ज्वर से उजाले का बदन
उष्ण है संस्पर्श तेरे गात का।
प्रीति की वह रीति पिछली भूल जा
यह नहीं अवसर निठुर आघात का।
कौन कहता है कहानी प्यार की
यह तुम्हें उत्तर तुम्हारी बात का।''[8]

पहली छन्दोबद्ध कविता में 'मुक्ति के कारण नियम सब छोड़ डाले' और दूसरी गजल की पंक्ति 'प्रीत की वह रीत पिछली भूल जा, यह नहीं अवसर निठुर आघात का' से प्रकृति–पुरुष के प्रति प्रेमपूरित आकर्षण के भाव तो प्रवाहित होते ही हैं, पर एक नई आशा, नए उल्लास और नयी आस्था की रश्मियाँ भी इन प्रेम–प्रणय के गीतों को रश्मित करती हैं।

रघुवीर सहायजी की कुछ ही रोमांटिक रचनाएँ हैं, जो स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उल्लसित भाव से पूरित तो हैं, पर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद दायित्वों की वृत्ति भी होती है।आगे क्या कुछ करना है, उसका संकेत भी है, उसकी चिन्तन भी है, मात्र प्रणयानन्द में निमग्न रहने से ही आगत उल्लास में स्थायित्व पर शंका होने लगती है। 'समझौता' शीर्षक कविता से उपर्युक्त बात की पुष्टि होती है–

''प्राण मत गाओ प्रणय के गान,
पथ लगता अधिक सुनसान,
तेरे गीत गाने से।
दृष्टि जाती है जहाँ, राह जाती है वहाँ तक,
और इतना तो तुझे अनुमान से ही ज्ञात

राह मेरी और भी है दृष्टि के पश्चात्
अः न छाया कर दुपट्टे से मुझे,
अब यह नहीं अवसर करूँ विश्राम
कम होगा नहीं यह धाम तेरी प्रीत पाने से।
तुम चलो चुपचाप होकर
ताकि खा जाओ न ठोकर
और आँखों को गड़ा दो क्षितिज के भी पार
क्योंकि बसता है क्षितिज के पार भी संसार
अतः न कर मोहित कनखियों से मुझे,
अब शान्त!
सुनने दे चरण की चाप,
पथ घटता स्वयं है आप
मन पर जीत जाने से।''[9]

प्रेम के तारल्य से पूरित हृदय में प्रणय के चित्र जैसे जल भरे बर्तन में युगल छाया हो और स्वीकृति अस्वीकृति के मधुर द्वन्द्वमें प्रेम–अमृत छलक पड़े जैसे प्रयोगों से पूरित कविता का रोमानी भाव 'आओ, जलभरे बर्तन में' शीर्षक कविता मे मुखर हो उठा है। यह कविता 'सीढ़ियों पर धूप' शीर्षक कविता संग्रह में संकलित है तथा रघुवीर सहाय रचनावली भाग 1 में संकलित है–

''आओ जल भरे बरतन में झाँकें
साँस से पानी में डोल उठेगी दोनों छायाएँ
चौंक कर हम अलग–अलग हो जाएँगे
जैसे अब, तब भी न पिलाएँगे आँखें, आओ
पैठी हुई शीतल जल में छाया साथ–साथ भींगे
झुके हुए उपर दिल की धड़कन–सी काँपें
करती हुई इंगिति कभी 'हाँ' के, कभी 'ना' के
आओ जल भरे बरतन में झाँकें।''[10]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व की स्थिति में भी जो सामाजिक विकृतियाँ थीं, उस ओर भी कवि की संवेदना जाग्रत थी, पर इसी स्थिति में कवि की प्रेमिल भावना भी जगती थी। ऐसी स्थिति में कवि समसामयिक स्थिति से स्वयं को मुक्त नहीं कर पाया। प्रेम में भी भविष्य की चिन्ता उन्हें सताती रही। ऐसा नहीं कि रोमांटिक भाव में समसामयिक स्थिति का विस्मरण हो गया हो। रघुवीर सहाय की रोमांटिक कविताओं की यही विशेषता है, जो छायावादी रोमानियत से भिन्नता दर्शाती है–

''तुम सपनों में क्यों आती हो
मन की ज्वाला बुझा चुकी हो
अन्त राह का सुझा चुकी हो
फिर क्यों मेरा हाथ पकड़कर
उस दुर्गम पथ पर लौटाती हो।
तुम सपनों में क्यों आती हो।
गीत एक ही मैंने गाया
गा गा कर मैं ही भरमाया
भूल गया उसकी जो कड़ियाँ, मुझे सुनाकर क्यों गाती हो।
तुम सपनों में क्यों आती हो।
आज मुझे टुक सो लेने दो
उन भूलों पर रो देने दो
हँसते मुसकाते सपनों से आज मुझे क्यों जगवाती हो।
तुम सपनों में क्यों आती हो।''[11]

इस कविता–संकलन की भूमिका स्वयं रघुवीर सहाय ने लिखी है। भूमिका के अन्त में उन्होंने लिखा है कि ''प्रत्येक रचना एक ही समय में एक नये समाज की रचना और एक नये शिल्प की रचना के लिए कृतसंकल्प होती है। इसलिए कवि जिन कविताओं को लिख–लिखकर फाड़ देता या छिपाकर रखता जाता है, ये भी उसके समाज और साहित्य के द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध की पहचानें हैं। मेरा निवेदन है कि आप प्रस्तुत संकलन को इसी रूप में देखे क्योंकि इसे अपनी उपलब्धि के रूप में नहीं, अपने प्रयत्न के रूप में आपके हाथों में छोड़ रहा हूँ।''[12]

रघुवीर सहायजी ने जिस द्वन्द्वात्मक स्थिति की चर्चा अपनी भूमिका में की है वह रोमानियत अर्थात प्रेम–प्रणय प्रसंग और सामाजिक निर्माण भावनात्मक द्वन्द्वही तो है, जो उपर्युक्त कविता में स्पष्ट लक्षित होता है।

इस प्रकार की कई कविताएँ रघुवीर सहाय जी के कविता संग्रहों में उपलब्ध है। अन्य सारी काव्यिक विशेषताओं में सबसे विशेषता सहायजी की रचनाओं में यह है कि कल्पना से कहीं अधिक उनकी रचनाओं में यथार्थता स्पष्ट होती है। एक छात्र होने के नाते मेरे मन में एक बात यह भी उठती है कि किसी–किसी स्थिति में यथार्थता मर्यादा की सीमा भी तोड़ देती है। यथार्थता में भी मर्यादा का पालन सामाजिकता, विवेक, और बौद्धिकता का उच्च स्थान होना साहित्य के लिए अनिवार्य होना मेरी दृष्टि में उचित प्रतीत होता है। सहायजी की एक छोटी–सी रोमांटिक कविता इस सन्दर्भ में प्रस्तुत की जा रही है–

''बाँहें ये गले हमारे डाल, सखी
मेरे कन्धों पर आ जायें ये बिखरे बाल, सखी
ओठों पर ओठ दहकते हों
आँखों पर आँखें मुँद जाएँ
भुजबन्धन कसता जाए–
यह आतुर तन उस तन में धँसता जाए
थक जाएँ
थक जाएँ तेरे कुच मेरे सीने पर धक्–धक् करके
फड़कें
फिर रह जाएँ गुम्फित जंघाएँ
हो जाए वह क्षण जीवन–मरण–विशाल, सखी।''[13]

उपर्युक्त कविता में रतिक्षण का जैसा यथार्थ चित्रित हुआ है, उसमें वासनाजनित प्रेमस्फुरित आंगिक चेष्टाओं और उस क्षण को ही जीवन मरण की विशालता से भावोद्रेकित करने के सिवा और क्या लक्षित होता है। यह बात ठीक है कि यह भी एक यथार्थ है पर इतना निरावृत्त यथार्थ सामाजिक और पारिवारिक सन्दर्भ में सत्साहित्योचित है?

कथं बहुणा, इतना तो यथार्थ है कि ऐन्द्रिक बोध (रोमांटिक) से पूर्ण रचनाओं मे भी सहाय जी की कविताएँ यथार्थ पर आधृत बिम्बविधान से संपृक्त एक नवीन शिल्प का प्रतिपादन करती है।

संदर्भ ग्रंथ–

01. शर्मा, सुरेश, रघुवीर सहाय का कवि कर्म, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ.स.–138.
02. वही, पृ.स.–139.
03. शर्मा, सुरेश; रघुवीर सहाय रचनावली भाग–1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ.स.–43.
04. वही, पृ.स.–95.
05. ठाकुर, अभय कुमार; रघुवीर सहाय एवं प्रतिरोध की संस्कृति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–110002 वर्ष–2014 पृ.स–16.
06. शर्मा, सुरेश; रघुवीर सहाय रचनावली भाग–1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ.स.–88.
07. वही, पृ.सं.–39.
08. वही, पृ.सं.–40.
09. वही, पृ.सं.–49.
10. वही, पृ.सं.–57.
11. वही, पृ.सं.–395.
12. वही, पृ.सं.–392.
13. वही, पृ.सं.–82.

आलेख

इसे भी जानें
बब्बर अकाली आंदोलन

डॉ. ऊषा निगम,
एम.ए. इतिहास, पीएच.डी.
कानपुर, मो0 9792733777

29 मार्च, 1849 को पंजाब का अंग्रेजी राज्य में विलय कर लिया गया। इसके उपरांत अनेक दशक तक पंजाब शांत रहा। भारत में अंग्रेजी राज्य को उनकी स्वामिभक्ति असंदिग्ध प्रतीत होने लगी। सिख सैनिकों की वीरता और सरकार के प्रति उनके समर्पण भाव के कारण न केवल भारत में वरन् विदेशों में भी हुए अनेक युद्धों में सिखों के साथ ने अंग्रेजी सरकार को विजय प्रदान की। यदि अंग्रेजों को सिख जैसी वीर जाति का साथ न मिला होता तो 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का अंत कुछ और होता। लेकिन बीसवीं सदी के प्रारंभ होते ही पंजाब की कहानी बदलने लगी थी। महाराष्ट्र और बंगाल तो पहले ही सुलग रहा था, अब पंजाब में भी सरकार विरोधी स्वर उभरने लगे थे। एक बार यह विरोध आरंभ हुआ, फिर वह रुका नहीं, आगे बढ़ता चला गया। पंजाब में आर्य समाज का बढ़ता प्रभाव, किसान आंदोलन (1907), विशाल स्तर पर गदर के प्रयास (1914–15), सत्याग्रह, असहयोग आंदोलन एवं इन सबके साथ–साथ चलनेवाला सशस्त्र क्रांति आंदोलन, जिसकी चरम परिणति शहीद भगत सिंह की शहादत में हुई।

बब्बर अकाली आंदोलन की पृष्ठभूमि :

बब्बर अकाली आंदोलन का मूल कारण रौलट ऐक्ट के विरोध में हुए सत्याग्रह से जुड़ा हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप अमृतसर में जालियाँवाला बाग कांड हुआ था। इस अमानुषिक कांड ने पूरे देश को स्तब्ध कर दिया था। प्रतिक्रिया स्वरूप जो विरोध हुआ, उसका दमन सरकार ने बर्बरतापूर्वक किया। इस बर्बरता ने पंजाबवासियों को खून के आँसुओं से रुलाया। उसी अनुपात में पंजाबवासियों का विरोध बढ़ता गया।

यहाँ पर संक्षेप में अकाली आंदोलन की चर्चा आवश्यक है। सिख गुरुओं ने सिख धर्म के प्रचार के लिए गुरुद्वारों और धर्मशालाओं का निर्माण कराया गया। इनके प्रमुख महन्त हुआ करते थे। कालान्तर में महन्तों में फैले दुराचार को दूर करने के लिए अकाली नवयुवकों ने अकाली दल का संगठन किया। 20 फरवरी, 1921 को 200 अकाली नवयुवकों ने ननकाना साहब के गुरुद्वारे पर चढ़ाई की। वहाँ के महन्त नारायण दास ने अंग्रेजी सरकार की मदद से 200 युवकों को मौत के घाट उतार दिया। इन अत्याचारों ने अकालियों में और भी उत्तेजना पैदा की।

किशन सिंह गड़गज्ज :

जालंधर निवासी किशन सिंह गड़गज्ज अंग्रेजी सरकार की फौज की सिख रेजिमेंट में हवलदार थे। वे समाचार पत्र पढ़ते थे। अतः उन्हें जलियाँवाला बाग तथा पंजाब पर हुए सारे अत्याचारों की जानकारी थी। वे बहुत विचलित थे। क्रांतिकारी इतिहासकार मन्मथ गुप्त (वे अमर क्रान्तिकारी, पृ. 110) लिखते हैं कि किशन सिंह महसूस कर रहे थे कि अंग्रेजी फौज में रहकर अंग्रेजों की सेवा करना उचित नहीं है। लेकिन सरकारी नौकरी छोड़ने का निर्णय नहीं ले पा रहे थे। 1921 में जब ननकाना साहब की घटना हुई तब उन अत्याचारों से वे इतना पीड़ित हुए कि उन्होंने नौकरी छोड़ने का निर्णय ले लिया। नौकरी छोड़ने के बाद वे अकालीदल में शामिल हो गये। अकाली दल अहिंसक मार्ग द्वारा अपने उद्देश्यों को प्राप्त करना चाहता था। किशन सिंह गड़गज्ज को शीघ्र ही इस मार्ग पर विश्वास समाप्त हो गया। उनके लिए यह स्वाभाविक था। एक सैनिक शस्त्र द्वारा शत्रु का मुकाबला करना चाहता है। शीघ्र ही उन्होंने अकाली दल छोड़ दिया और अपना स्वतंत्र मार्ग निर्मित किया, जो क्रांतिकारी आंदोलन से मिलता–जुलता था।

बब्बर अकाली दल का गठन :

किशन सिंह साहसी, बहादुर और एक कुशल संगठन कर्ता थे। आरंभ में उन्होंने अकेले ही पंजाब के गाँवों में जाकर अपने भाषणों द्वारा अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध किसान को जगाने का प्रयास किया था। उस समय उन्होंने अपने दल के नाम 'चक्रवर्ती दल' रखा था। होशियारपुर के कर्म सिंह, उदय सिंह और धन्ना सिंह के साथ आ जाने से किशन सिंह का हौसला बढ़ा। कुशल सहयोगियों की संख्या में वृद्धि होने लगी। अब उन्होंने अपने दल का नाम 'बब्बर अकाली दल' कर दिया।

सशस्त्र साधनों द्वारा अंग्रेजी राज्य को नष्ट करना दल का लक्ष्य था। एक विशाल फौज एकत्र करके वे अंग्रेजों से युद्ध नहीं कर सकते थे। उन्हें तो गुप्त रहकर सरकारी तंत्रा के कलपूर्जों पर वार करना था, जिसके परिणामस्वरूप सरकारी मशीनरी कमजोर पड़ने लगती। किशन सिंह ने जालंधर को बब्बर अकाली दल का केन्द्र बनाकर पूरे पंजाब में इस दल की शाखाएँ खोलीं। इस दल की एक समिति बनाई गई, जिसके अध्यक्ष किशन सिंह थे। दिलीप सिंह, करम सिंह, उदय सिंह समिति के मनोनीत सदस्य थे।

दल के नियमों के अनुसार गृहस्थ व्यक्ति दल के नियमित सदस्य नहीं बन सकते थे। संगठन को अपना पूरा समय समर्पित करनेवाले लोग ही, भले ही वे किसी भी आयु के हों, इसके सदस्य बन सकते थे। गृहस्थ अन्य अनेक प्रकार से सहयोग दे सकते थे, जैसे–सूचनाएँ एकत्र करना और उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाना, पर्चे बाँटना आदि। इसका परिणाम यह हुआ कि संगठन में सदस्यों की संख्या अधिक न होते हुए भी सहयोगियों की संख्या बहुत थी और एक स्थान पर न होकर फैले हुए थे।

दल में प्रतिदिन गुरुवाणी का पाठ होना आवश्यक था। दल की ओर से स्त्रियों को आदर करने का आदेश था। व्यक्तिगत संपत्ति को हाथ लगाना अपराध था तथा व्यक्तिगत स्तर पर प्रतिशोध लेने की अनुमति नहीं थी।

संगठन के कार्यक्रमों में व्याख्यानों, भाषणों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। गाँवों की बहुसंख्यक किसान जनता की चेतना को जगाना बहुत आवश्यक समझा गया। संगठन की ओर से एक विशेष रणनीति बनाई गई। बिना किसी पूर्व सूचना के किसी गाँव में अचानक प्रकट होना, ग्रामवासियों को एकत्र कर उनके सम्मुख अंग्रेज सरकार विरोधी व्याख्यान देना, क्रांति का संदेश देना और उसके बाद अचानक गायब हो जाना।

तत्कालीन सभी आंदोलन की तरह बब्बर अकाली संगठन ने भी क्रांतिकारी साहित्य की आवश्यकता को महसूस किया। कर्म सिंह के संपादन में 'बब्बर अकाली' पत्र निकाला गया। दिसम्बर, 1922 में पहली बार 'बब्बर अकाली दोआब' शीर्षक से एक पर्चा प्रकाशित हुआ, जिसको बड़े पैमाने पर बाँटा गया। इस पर्चे को 'अत्यधिक राजद्रोहात्मक' माना गया (के.सी.घोष 'द रोल ऑफ ऑनर', पृ. 377)

सरकार से जुड़े अंग्रेज अफसरों व भारतीय कर्मचारियों की हत्या के साथ–साथ अंग्रेजों के पति निष्ठावान लोगों को मारना भी उनकी नीति में शामिल था, जिन्हें झल्ली चक कहा गया। किशन सिंह गड़गज्ज को यह ज्ञात था

कि दल के मुखबिर सदस्यों के कारण क्रांतिकारी संगठनों का विनाश हुआ था। जब कभी क्रांतिकारी पकड़े गए अधिकांश ने पुलिस द्वारा प्रताड़ित किए जाने के बावजूद भी अपने दल और उसके सदस्यों के विषय में पुलिस को सूचना नहीं दी। लेकिन प्रत्येक संगठन ने दो एक ऐसे मुखबिर दिए, जिन्होंने दल का सर्वनाश कर दिया। अतः यह निर्णय लिया गया कि मुखबिर बननेवाले व्यक्ति को जीवित नहीं छोड़ जाएगा।

किशन सिंह गड़गज्ज के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप बब्बर अकाली दल अपने छोटे से जीवनकाल में शहर से गाँवों तक अत्यधिक लोकप्रिय हुआ। इसे किसानों का पर्याप्त समर्थन प्राप्त हुआ।

सरकार सतर्क हुई :

सर्वप्रथम ननकाना साहेब में हुए अत्याचार का प्रतिशोध लेना था। इस कांड के लिए जिम्मेदार दो अंग्रेज अफसरों–कमिश्नर सी.एम.किंग एवं गुप्तचर विभाग के एस.पी.जे.डब्ल्यू. बाउरिंग को मारने का निर्णय लिया गया। जिन व्यक्तियों को इन्हें मारने का दायित्व दिया गया था, दुर्भाग्य से वे पकड़े गये। किशन सिंह तुरंत भूमिगत हो गये। अनेक अंग्रेज भक्तों को मारने के साथ ही बिसन सिंह, नम्बरदार बूटा सिंह तथा लाभ सिंह नामक मुखबिरों को मारा गया। 14 फरवरी, 1923 को हैयतपुर के दीवान तथा 7 मार्च से बैबलपुर के हजारी सिंह को निशाना बनाया। अनेक अफसर भी मारे गये।

प्रारंभ में पंजाब सरकार ने बब्बर अकाली दल की ओर ध्यान नहीं दिया था, लेकिन दल की बढ़ती हुई गतिविधियों ने यह प्रमाणित किया कि अब इस दल की ओर विशेष कदम उठाने की आवश्यकता है। अप्रैल 1923 में सरकार ने क्रिमिनल लॉ अमेंडमेंट ऐक्ट 1908 के तहत इस दल को गैर कानूनी घोषित कर दिया।

बोमेली का युद्ध :

इसी बीच एक घटना हुई। 1 सितम्बर, 1923 को दल के कुछ प्रमुख सदस्य कर्म सिंह, उदय सिंह, बिशन सिंह, महेन्द्र सिंह आदि कपूरथला स्टेट में स्थित बोमेली गाँव से गुजर रहे थे। यह सूचना पाते ही उन्हें पुलिस और सेना के द्वारा घेर लिया गया। दल के नेता और कार्यकर्ता गाँव के गुरुद्वारे में शरण लेना चाहते थे, लेकिन पुलिस और सेना ने ऐसा नहीं होने दिया। वहीं, उसी समय दल को उनका सामना करना पड़ा। इस खुले युद्ध में दल के सभी सदस्य मारे गये।

होशियारपुर के धन्ना सिंह किशन सिंह के दाहिने हाथ थे। बोमेली की घटना के बाद पुलिस उनकी तलाश में थी। एक मुखबिर ज्वाला सिंह ने धन्ना सिंह को उस गाँव में पहुँचा दिया, जहाँ पुलिस उनकी प्रतीक्षा में थी। वे पकड़े गए। उनके दोनों हाथ को पुलिस ने जकड़ लिया। इस विवश स्थिति में भी उन्होंने अपनी सहज बुद्धि का प्रदर्शन किया। उन्होंने वही किया, जिसे क्रांतिकारी करते रहे थे। धन्ना सिंह की कमर में एक बम छिपा हुआ था। उन्होंने अपने गार्ड को इस प्रकार धक्का दिया कि वह बम धक्के के दबाब से फट गया। धन्ना सिंह शहीद हुए पाँच पुलिस कर्मियों एवं एक अंग्रेज अधिकारी मि. हर्टन की मृत्यु हुई।

12 दिसम्बर, 1923 को एक और घटना हुई। एक मुखबिर ने ज्वाला सिंह, बन्ता सिंह और बेरिया सिंह को अपने घर में शरण देने के बाद पुलिस को खबर कर दी। परिणामस्वरूप उन तीनों को पुलिस के जत्थे का सामना करना पड़ा। इस संघर्ष में ज्वाला सिंह और बंता सिंह मारे गये, बेरिया सिंह बच निकले। वे भी 8 जून 1924 को पुलिस के जाल में फँस गये। उन्होंने भी आत्मसमर्पण न करके लड़ते हुए शहीद होना उचित समझा। 'वे एक सिंह की भाँति लड़े और एक सैनिक की मृत्यु प्राप्त की।'

इस प्रकार पुलिस विभाग को बब्बर अकाली दल के विरुद्ध अनेक सफलताएँ प्राप्त होती चली गईं। दल की शक्ति और क्षमता घटने लगी। पुलिस के हौसले बुलंद हुए। बाद में किशन सिंह को भी पकड़ लिया गया। कुल 91 अभियुक्तों पर मुकदमा चलाया गया। प्रारंभिक कार्यवाही के बाद 4 अप्रैल को केस सेशन सुपुर्द कर दिया गया। मिस्टर टैप (ज्वच) एडीशनल सेशन जज नियुक्त किए गए। 2 जून, 1924 को मुकदमे की कार्यवाही आरंभ हुई। दीवान बहादुर पिंडीदास स्पेशल सहकारी वकील थे। अभियुक्तों के खिलाफ 447 प्रत्यक्षदर्शी गवाह थे, 734 पत्र एवं 228 अन्य प्रमाण प्रस्तुत किए गए थे। उनपर सरकार विरोधी भाषण देने, विदेशी शस्त्र रखने, उनका भंडारण करने तथा हत्या और डकैती के आरोपों के साथ ही यह आरोप भी लगाया गया कि उनका ध्येय पंजाब में अंग्रेजी सरकार का अंत करना था।

91 आरोपियों पर एक वर्ष से अधिक समय तक यह केस चलता रहा। केस के दौरान जेल में ही तीन अभियुक्तों की मृत्यु हो गयी। 28 फरवरी, 1925 को 54 व्यक्तियों को अपराधी माना गया। शेष 34 छोड़ दिए गए। किशन सिंह को दल का प्रमुख नेता माना गया, उन्हें तो मृत्युदंड मिलना ही था। उनके साथ करम सिंह, नन्द सिंह, धरम सिंह, संता सिंह और दिलीप सिंह को भी सजा–ए–मौत दी गई। 11 को निर्वासन दंड मिला। शेष अभियुक्तों को उनके आरोपों के आधार पर सजाएँ दी गयीं।

27 फरवरी, 1926 को समस्त दोषियों को फाँसी दी गई। फाँसी के साथ ही इतिहास के एक अध्याय क अंत होता है। एक ऐसा अध्याय जिसे उसके अपने देशवासी जानते ही नहीं। इनकी कभी कहीं कोई चर्चा नहीं होती। यह सच है कि ये सशस्त्र विरोध कभी भी विशाल स्वरूप नहीं ले सके। देशव्यापी नहीं बन सके, सफल भी नहीं हुए। फिर भी उनका महत्व कम नहीं होता। उन्होंने अपने विरोध और बलिदान से कभी सारे देश को जाग्रत किया, तो कभी किसी प्रदेश को। आजादी की लड़ाई में उनकी भी महत्वपूर्ण भूमिका रही। यह देश सेवा सरल कार्य नहीं था, इस राह में बड़ा जोखिम था। शहीद करतार सिंह सराबा 20 वर्ष की छोटी आयु में गाया करते थे–

सेवा देश दी जिंदाड़िए बड़ी आँखी, गल्ला करनियाँ ढेर सुख लियाँ वे।
जिन्हा इस खेल विच पैर पाया, उन्हां लख मुसीबतां झल्लियाँ वे।

कविताएँ

अक्स

मैं जैसा लिखता हूँ
वैसा ही दिखता हूँ
अपनी रचनाओं में भी
मेरी रचना
मेरे अंतर्मन की व्यथा है
किसी बेवस, लाचार की
उसके ही शब्दों में
अभिव्यक्त कथा है

दशरथ माँझी

न मैंने भगीरथ को देखा था
न मैंने कबीर को देखा था
देखा तो मैंने तुम्हें भी नहीं था
पर खुशी इस बात की थी
कि तुम मेरी ही सदी में जन्मे थे
दशरथ माँझी
तुमने तो पहाड़ का सीना चीरकर
अपनी जीवन संगिनी को
मुमताज से भी ऊँचा दर्जा दे दिया
औरों के श्रम से अपनी बेगम का
महल बनानेवाला शाहजहाँ भी
तुम्हारी व्यथा के आगे कहाँ टिका
तुम्हारे मेहनती हाथों ने तो
श्रम की परिभाषा ही बदल दी
सचमुच, तुम, तुम थे
तुम्हारे जैसा दूसरा कहाँ
दशरथ माँझी।

डॉ. अशोक कुमार जोशी
उडिसा
9437525638

शोधपरक आलेख

बदलते दौर में लुप्त होते स्त्री–पुरुष के स्वाभाविक संबंध

सुभाष चन्द्र झा
(पूर्व) विशेष सचिव (बिहार प्रशासनिक सेवा)
संयुक्त आयुक्त–सह–सचिव
क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकार भागलपुर प्रमण्डल,
भागलपुर मो०: 9431208428

घोर मतलबपरस्ती के इस असंवेदनशील क्रूर समय में, सारे रिश्तों में अपनत्व तथा भावनात्मक ऊष्मिल नाजुक स्पर्श के उत्तरोत्तर पतनोन्मुखी भयावह दौर में, परस्पर लाभ–लोभ संकेन्द्रित मानसिक विकृति के ग्लोबल वक्त में द्रुत रफ्तार से बदलने लगे हैं स्त्री–पुरुष के मध्य स्वस्थ सहज नैसर्गिक मधुर प्रेमिल संबंधों के सारे समीकरण और काव्यात्मक व्याकरण! पल–पल रंग–रूप बदलती गिरगिटी फ़ितरत ने आपस में मानसिक दूरियाँ बढ़ायी हैं, एक–दूसरे पर भरोसा और विश्वास का सत्यानाश किया है तथा संग–साथ होने के चरम् अहसास को चोटिल किया है।

एक तरफ़ शिक्षा के प्रचार–प्रसार से व्यावसायिकता को जहाँ प्रश्रय मिला है, वहीं दूसरी तरफ़ सहज व्यावहारिक ज्ञान की गुणवत्ता में भारी कमी आयी है। आधुनिक शिक्षित महिलाएँ आज तेज़ी से विभिन्न सरकारी एवं ग़ैरसरकारी संस्थानों में रोज़गार प्राप्त करने लगी हैं; क्योंकि आर्थिक उपार्जन इस युग में आवश्यक आवश्यकता का स्वरूप ले चुका है। इस सच्चाई से हरगिज़ इंकार नहीं किया जा सकता कि ग्लोबली सूचना–क्रांति तथा समय और दूरियों के निरंतर कम होते जाने के समय–प्रवाह में विवाहपूर्व एवं विवाहेतर रिश्तों में अप्रत्याशित इज़ाफा देखा जा रहा है। स्त्री–पुरुष के रिश्तों में आमूलचूल बदलाव आया है। टेक्नोलॉज़ी में आये भारी उछाल से गैजेट और कैमरों की बदौलत आज हम जब चाहें आसानी से किसी से अंतरंग हो सकते हैं। ऐसे में क्या शर्मनाक और क्या नहीं है, किसे छिपाकर रखने की ज़रूरत है और किसके बारे में खुलकर बात करने की–इन बातों की खोज़बीन और मीनमेख़ निकालना नामंजूर होता जा रहा है। कहीं कोई बंधा–बंधाया फलसफ़ा नहीं दृष्टिगत होता है। विभिन्न प्रकार के प्रलोभन, आकर्षण एवं तात्कालिक सुख–सुविधा के अंतहीन अवसर चारों ओर बिख़रे दिखते हैं, जो अंततः खूबसूरत फ़रेबी मायाज़ाल–मात्र ही साबित होते हैं और इनमें धोख़े, शोषण के सिवा कुछ नहीं होते।

आज की अंतरंग ज़िन्दगी में केवल एक ही ख़ुशबू काफ़ी नहीं रही । प्रेम और सेक्स के दायरे निरंतर विस्तृत हो रहे हैं। पारंपरिक और ज़ायज़ तथा नैतिक–मर्यादित जीवन–मूल्यों की सारी पूर्व–निर्धारित सीमा–सरहदें चरमराकर टूट रही हैं। झिझक, हिचक, संकोच, शर्म एवं सहिष्णुता का समय अब नहीं रहा। वर्ज़नाओं, निषेधों और लक्ष्मण–रेखाओं की हदों को पार कर जाने का अनैतिक दौर है यह। सड़क पर लालबत्ती यूँ ही बिना किसी ख़तरे की परवाह किये पार कर जाने का विकट बोल्ड समय है यह।

नये–नये अनुभवों के अहसास और फ़ंतासियों को खुलकर आज़माने के मामले तेज़ी से बढ़ रहे हैं। सुरक्षा के तरह–तरह के उपायों ने संभावित यौन–ख़तरों को बहुत हद तक कम कर दिया है, जिस कारण उपभोग के प्रति खुलापन अधिक अहम् हो गया है। यही कारण है कि उम्र और सेक्स के बंधन टूटने लगे हैं। अब कोई भी घटना चौकानेवाली, कानाफूसीवाली और हायतौबा मचानेवाली नहीं होती। सब कुछ को बिलकुल ही सहज, सामान्य मान लिया गया है। संतुष्टि का स्तर भी बढ़ रहा है और अब यही चलन है।

ऐसे नाजुक वक्त में जब महिलाओं को ज़्यादा आज़ादी हासिल है और इसका इस्तेमाल भी कर रही हैं। हर उस औरत को ग़लत ठहराया जाने लगता है, जो अपने विकल्पों का इस्तेमाल करना चाहती है। यौन–आकर्षण, यौन–अभिव्यक्ति यौन–गतिविधि, यौन–संबंधों की घटनाएँ यौन–स्वतंत्रता के अन्तर्गत अब सामान्य–सी बातें हैं। यौन–आकर्षण की प्रक्रिया बेहद ज़टिल है और सेक्स की राजनीति तो बिलकुल सीधी सरल नहीं होती। संबंधों की मर्यादा का उल्लंघन उचित नहीं। इस तरह का संबंध कभी भी स्वस्थ नहीं होता। ऐसे रिश्ते हालांकि ज़्यादातर गुपचुप होते हैं, पर उनमें ज़ोखिम और ज़वाबदेही की समस्या भी होती है। ये सुप्त ज़्वालामुखी की तरह होते हैं, जो अचानक कभी भी फूट सकते है। शारीरिक, मानिसक एवं भावनात्मक संतुष्टि की चाहत रिश्ते खो देने का संभावित अड्डा है। रोमांस या यौन–रिश्ते विभिन्न क़िस्म की वज़हों से शुरू हो सकते हैं।

आदमी और औरत में अंदरुनी दिमागी और हार्मोनल फ़र्क होते है। जहाँ आदमी तेज़, झमेला लेनेवाले और नतीज़ों पर ज़ोर देनेवाले होते हैं, वही औरतों में सहज ज्ञान से पैदा हुई क़ाबिलियतें, बेहतर नतीज़ों की सोच, बॉडी लैंग्वेज़ेज पढ़ने की क्षमता वग़ैरह ज़्यादा होती है। समाज के बदलते रवैये के बीच स्त्री–पुरुष के बीच भारी उलझन रहती है कि विकसित हो रहे भावनात्मक रिश्ते में सेक्स की भूमिका क्या है, आपसी रज़ामंदी आख़िर क्या है?सबसे ज़्यादा ज़रूरी है कि अपनी पसंद और रज़ामंदी से यह तय करना कि व्यक्ति किसके साथ और किस हद तक शारीरिक, यौनिक, मानसिक और भावनात्मक रिश्ते बनाना चाहता है। यह अपने लिए अपनी जगह खुद गढ़ने जैसा है। इसी में हम खुद के साथ दूसरों के लिए भी सम्मान की भावना विकसित करते हुए संवाद के अवसर खोज़ते हैं। यौन–सहमति का मतलब किसी यौन–गतिविधि में शामिल होने की रज़ामंदी है। यौन–संबंध बनाना है, तो दूसरे की रज़ामंदी हासिल करनी होती है। किसी भी ऐसे संबंध में सहमति के लिए ज़रूरी है कि दोनों हर बार यौन–संबंध स्थापित करने के लिए स्वीकृति दें। स्वीकृति स्वेच्छा से दी जानी चाहिए। यौन–सहमति बेहद स्पष्ट रूप से संप्रेषित होनी चाहिए। जब भी कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के साथ यौन–संबंध बनाने का प्रस्ताव करता है, तो उसे हर बार दूसरे व्यक्ति से सहमति हासिल करनी ज़रूरी है। अन्यथा निजी सीमा का उल्लघन किया गया तथा असहजता महसूस होती है।

आज कार्य–स्थलों पर भी बड़ी तादाद में विवाहपूर्व एवं विवाहेतर यौन–रिश्तों का शोरगुल स्पष्ट सुनाई देता है। ज़्यादा शादी–शुदा औरतें आज काम करनेवालों में शामिल हो रही हैं। प्रकृति और पुरुष की रचना भिन्न तरीक़े से हुई है। पुरुष जहाँ कामुक दृश्यों से उत्तेजित हो जाते हैं, वहीं महिलाएँ अहसास, भावनाओं, मन और बातचीत जैसी संज्ञानात्मक उत्तेजनाओं से। कामोत्तेजक साहित्य के धाराप्रवाह के कारण अब यह बुनियादी अंतर तेज़ी से सिमटता जा रहा है। यही कारण है कि अब रिश्ते खुला रहस्य बनते जा रहे हैं। सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक रूझान आज उस दिशा की ओर इंगित करते हैं, जिनमें रोमांस और सेक्स भी शामिल हैं । इस आग में घी डालते हुए नई पीढ़ी कामकाजी ज़िन्दगी के नये उसूलों को अंज़ाम दे रही है। निजी और पेशेवर के बीच की लकीर क्रमशः धुंधली पड़ रही है।

आज यौन–मुलाकातों के लिए सशरीर मौजूदगी कोई बंधन नहीं रही। न ही लैंगिक फ़र्क या सेक्स समान कोई बंधन है। शर्मिन्दगी या झिझक भी नहीं। खुलापन अहम है। पोर्न का बोलवाला है। यौन–क्रियाएँ अब अधिक सुखद अहसास, ज़्यादा संवेदनशील कामक्रिया और सहमति के विस्तृत दायरे का माध्यम बन गई हैं। पुरुषों में आत्म विश्वास की कमी देखी जा रही है और ये महिलाओं के मामले में खुद को अयोग्य महसूस करते हैं। यौन–आज़ादी उचित तो नहीं । आज की पीढ़ी तेज़ रफ़्तार ज़िन्दगी जीना चाहती है, जो यौन–रिश्तों की तरफ़ धकेलती है और कम उम्र में ही जिन्दगी के तज़ुरबे होने लगते हैं और इनमें यौन–सुख भी शामिल है। मौज़–मस्ती के कारण यौन् गतिविधि में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है और यौन–संलग्नता को आज कोई ग़लत नहीं माना जाता है।

स्वच्छन्दता में वृद्धि हुई है। आज उन्मुक्त सेक्स, विवाहेतर संबंध और रोमांस खूब फल–फूल रहे हैं। कौन कहाँ, किससे यौन–संबंधों में लिप्त है, कहना मुश्किल! अब कोई वर्जना नहीं है। सब कुछ आसानी से उपलब्ध है और आसानी से यौन–संबंधों में नये–नये प्रयोग हो रहे हैं। कैजुअल यौन–संबंध अब चौकानेवाली बात नहीं है। इस तरह की किसी घटना को बड़ी बात नहीं मानी जाती है।

स्त्री–पुरुष एक–दूसरे से भिन्न और विपरीत

देह–संबंधों की आत्यंतिक पराकाष्ठा अद्वैत की स्थिति होती है, जिसका सहज ही अनुमान आँखों की बदलती रंगत, मुख–मुद्रा और हावभाव, व्यवहार से लगाया जा सकता है। प्रेम–संबंधों में नारी का सच है असीम होना। जो असीम है, विराट है प्रकृति की तरह, उसका न प्रारंभ है, न अंत है– पुरुष उसको पूरा–पूरा कैसे जान सकता है! उसका रहस्य तो रहस्य ही रहेगा, अज्ञेय। कोई पूर्णविराम नहीं, समाप्ति नहीं, सब कुछ होकर भी अभी होने को शेष रहेगा। अंतहीन है उसकी संभावना, वहीं–की–वहीं, आत्यंतिक गहराई में यथावत् बनी। चाक घूमता है, कील नहीं घूमती। कील अपनी जगह पर वैसी–की–वैसी। जिस पर घूमता है, वह नहीं घूमती। अगर कील घूम जाए, तो फ़िर चाक गिर जाए! प्रकृति का यही स्वभाव है, जड़वत्, अक्रियाशील, निष्कर्म स्थिति! जो होता है, प्रकृति में होता है। सबसे बड़ा कृत्य करने से नहीं होता, अपने–आप होने से होता है। पुरुष के लिए यहाँ कर्ताभाव और उसके मन की मौजूदगी ही छेद है, जिससे सब बह जाता है, बिखर जाता है, चूक जाता है। मन का यहाँ विश्राम में होना ही सुख की झलक़ का कारण है। प्रकृति वही देखना चाहती है, जो वह है, अपनी ही प्रतिछवि! पुरुष ऊपर–ऊपर है और स्त्री बहुत गहराई में। नौका को सागर में छोड़ना होता है, सागर की पुकार अज्ञात की पुकार है। जीने का रास्ता है उसे, समझने का नहीं। जितना समझेंगे, उतना ही ज़्यादा शेष है समझने को।

और प्रेम का जानने से क्या संबंध? प्रेम कुछ जानता ही नहीं, प्रेम निर्दोष है, ज्ञान से मुक्त है। जो ज्ञान को ढोता है, वह प्रेम नहीं कर सकता। इसलिए प्रेम पुरुष के वश की बात ही नहीं। प्रकृति कभी हायतौबा नहीं मचाती, हाहाकार नहीं करती, आपाधापी में नहीं होती, उसमें परिपूर्ण ठहराव होता है, सहजता–स्थिरता होती है, सम्पूर्णता होती है। क़शमकश में होना प्रकृति का स्वभाव नहीं। प्रकृति संग तालमेल तो ठहर जाने से ही संभव है, भागदौड़ से नहीं। ठहरे पाँव तो मिले गाँव। ऐसे चलना होता है, जैसे अनंतकाल मिला हुआ हो, कोई जल्दी नहीं, कहीं से उतावलापन– अधीरता नहीं। प्रकृति के लिए आनन्द तो लयतालबद्ध संगीत की तरह कतारबद्ध– शृंखलाबद्ध खड़े होते है। वहाँ सिर्फ़ एक आनन्द नहीं है, एक आनंद के बाद दूसरा, तीसरा... शिख़र–पर–शिख़र, शिखरों–से–शिखर, शिखर के बाद शिखर और एक–से–एक बड़ा शिखर, वहाँ तो बस आनंद–ही–आनंद है, अंतहीन आनंद है समय के विस्तृत फ़ैलाव में! इसे पाना कम, आविष्कृत ज़्यादा करना होता है। प्रकृति के लिए धीमी रफ़्तार की भी कोई सीमा नहीं होती और प्रचण्ड रफ़्तार की भी कोई सीमा नहीं होती। पर्याप्तता और पूर्णता प्रकृति की मांग है।

यौनतंत्रियों के पूरे शरीर में ही समरूप फ़ैलाव के कारण स्त्री की देहभाषा बहुकेन्द्रीय होती है। सर्वाधिक उपयुक्त व्यक्ति, परिस्थिति, स्थान विशेष अर्थ रखते हैं। पुरुष वही, जो उसे पूर्ण कर दे, पूर्णत्व का अहसास करा दे। स्त्री का सही मेल एक पूर्ण पुरुष के साथ ही संभव है। पूर्णता पाकर ही स्त्री में सौन्दर्य का संचार होता है। यही कारण है कि वीमन लिव एवं स्त्री–सशक्तिकरण यौन उन्मुक्त दौर में पश्चिम में स्त्रियाँ आज ऑर्गैज़्म प्राप्ति को अपना मौलिक अधिकार समझ रही हैं। इतना ही नहीं इसके लिए पर पुरुष गमन से भी उन्हें गुरेज़ नहीं है! उनकी सोच है कि अगर पुरुष बेवफ़ा हो सकते हैं, तो वो ही बा–वफ़ा क्यों रहें? यौन में चरम सुख पर बराबर का अधिकार माँग रही हैं।

विलम्ब करना नारी का स्वभाव होता है। सब्र, धैर्य, इत्मीनान से भरीपूरी होती है। यौन–संबंधों में अत्यधिक विलंब से ही उत्तेजना की पराकाष्ठा पर पहुँच पाती है और पर्याप्त समय तक चरमानंद की अवस्था में कई बार आगे–पीछे होती रहती है और बार–बार अनगिन चरमानंद प्राप्त करती रहती है। ऑर्गेज़्म प्राप्त करने के बाद भी पूर्णतः श्रान्त–क्लान्त और शिथिल नहीं पड़ती और कई बार चरमसुख प्राप्त करती है। पुरुष समान उसे तुरंत ही स्खलन और शिथिलता का सामना नहीं करना पड़ता है। उत्तेजना और सुख को हज़म करते रहने के लिए उसका तंत्रिका तंत्र पूर्णतः सबल होता है। पुरुष इसमें सब्जेक्ट होता है और स्त्री ऑब्जेक्ट, पुरुष कर्ता और स्त्री कर्म की भूमिका में। पुरुष एक्टिव और स्त्री पैसिव रोल में। पुरुष डोनर और स्त्री रिसीवर के रोल में। स्त्री मार्ग जैसी और पुरुष बटोही जैसा। मार्ग कहीं आता–जाता नहीं। स्वयं से गति नहीं करता, मुसाफिर ही मार्ग से यात्रा करते हैं, रास्ते से आते–जाते रहते हैं। राह का कभी कुछ नहीं बिगड़ता। राह से सफ़र करनेवाले राही ही थकते हैं, उन्हें ही विश्राम की ज़रूरत पड़ती है। बटोही को जल्दी होती है पहुँचने की। रास्ते को पहुँचाने की कोई शीघ्रता नहीं होती। स्त्री में प्रेम, स्वर, संगीत, सुगंध है, मिठास और स्वाद की बड़ी गहरी प्रतीति है, एक प्रकार की उसमें समतुल्यता है, गोलाई है। स्त्री अपने होने से ही परम तृप्त है। कुछ डेग–मात्र चलकर ही पूरी पृथ्वी को नापा नहीं जा सकता। स्त्री पूर्ण है। पूर्ण से पूर्ण को निकाल लें, फ़िर भी पीछे पूर्ण शेष रह जाता है। पूर्ण को पूर्ण में डाल दें, फिर भी पूर्ण उतना का ही उतना है।

पुरुष के साथ समस्या यह है कि बिना दौड़े प्रतियोगिता में प्रथम आना चाहता है। मुकदमा दायर करने के पूर्व ही डिग्री पा लेने की बेताबी होती है और जहाँ होना चाहिए सम्पूर्ण ठहराव के साथ, वहाँ पूरी तरह उपस्थित नहीं होता, कहीं और होता है, अभी में मौजूद नहीं होता। जबकि नारी जहाँ होती है, सिर्फ़ वहीं होती है, अभी में सम्पूर्ण उपस्थित। पुरुष की तरह कहीं और नहीं होती। यही वज़ह है कि पुरुष तो तुरंत ही वापस लौट जाता है, मगर स्त्री शीघ्रता में लौट नहीं पाती, वहीं–की–वहीं ठिठकी रह जाती है। स्त्री के लिए सम्पूर्ण नारीत्व का अहसास पुरुष या प्यार की ज़रूरत के अहसास से कहीं गहरी और जटिल चीज़ है। लंबी छलांग और चारे को प्राप्त करने के तौर–तरीके के संग ताक़त को महसूस कराया जाना आवश्यक होता है। मगर पुरुष पास नहीं देखता, दूर ही देखता रहता है। आशंकित तथा भयभीत, चिंतित ही अधिक होता है, मानसिक उधेड़बुन में ही उलझा रह जाता है, स्वयं को कर्ता और भोक्ता समझने के कारण असफल हो जाता है। उसमें साहस, आत्मविश्वास एवं धैर्य की ऐसे समय में प्रायः कमी पायी जाती है। इसलिए चूक जाता है।

सच तो यही है कि पुरुष जबतक स्त्री की संपूर्ण देह–वीणा के तारों को धीरे–धीरे पूरी तरह छोड़कर झंकृत करते हुए उसमें काम की राग–रागिनियाँ उत्पन्न नहीं भरता, सुर–लय–ताल–छंद में पिरोकर संगीत–सरगम उत्पन्न नहीं कर देता, तबतक स्त्री की देह सोयी हुई निष्क्रिय ही रह जाती है, बिना पुरुष के जगाये अपने–आप नहीं जागती। पुरुष की सक्रियता, क्रियाशीलता और शक्ति के बदले ही स्त्री को विभिन्न प्रकार के आनंद और सुख की प्राप्ति हो पाती है। इस मामले में वह पूरी तरह पुरुष पर ही निर्भर करती है, उसी के अधीन होती है। पुरुष के पहल की बाट जोहती रहती है। अपने से न तो आरंभ कर सकती है और न ही समापन। स्त्री के लिए इसमें कभी पूर्णविराम नहीं आता, सदा होने को शेष रहता है, अंतहीन होती है उसकी संभावना, पुरुष समान वह चूक नहीं जाती। स्त्री सागर है और पुरुष चम्मच। छोटे–से चम्मच से सुविस्तृत सागर को नहीं नापा जा सकता। इस दिशा में पुरुष का सारा प्रयास नन्हीं–सी चोंच में चुटकी भर मिट्टी लिए विशाल समन्दर के अंतहीन विस्तार को पाटने के क्षुद्र प्रयास जैसा ही साबित होता है। सम्मोहित कर देनेवाली समाप्ति के बाद भी स्त्री की झंकृत देहवीणा का गहन अनुनाद देर तक बना ही रह जाता है। प्यास बची ही रह जाती है। इस मामले में पुरुष की सारी कोशिशें अपर्याप्त, अधूरी, बनावटी तथा हास्यास्पद मात्र ही होकर रह जाती हैं और स्त्री का भिक्षा पात्र कभी भर नहीं पाता, इसमें कोई तलहटी नहीं होती। ज़रूरी होता है शरीर–शरीर के बीच संवाद, मन–मन के बीच वार्त्तालाप, धीमी प्रक्रिया और जल्दी भी देर से करना। इसके बग़ैर सम्पूर्णता का अहसास नहीं कराया जा सकता। पूर्णता का अनुभव होना स्त्री के लिए अनिवार्य होता है; क्योंकि उसमें काम की मात्रा पुरुष की तुलना में कई गुना अधिक पायी जाती है तथा कामावेग कम होता है।

इस प्रकृति के युग में न जाने कौन–सी विकृति मनुष्य के भीतर घुसती,

बढ़ती चली जा रही है; जिससे वह निरंतर सूना–खोखला, बेहाल, एकाकी, डरावना, खोया–निचुड़ा, लुटा–पिटा–सा निष्प्राण होता जा रहा है। न किसी के जीवन में आनंद, न उमंग, न उल्लास, न सुख–चैन, न शांति, न संतोष, न शुकून। उस उम्मीद से दिनोंदिन वंचित ही होता चला जा रहा है जो आंतरिक खुशी और समस्वरता के आधार पर उत्पन्न होती है और जिसके बिना ऊब, ख़ीझ, घुटन, जलन, कुंठा, त्रासदी और अतृप्ति ही जीवन में रोष रह जाती है ।

कलह तथा दिखावे के इस युग में क्या खो गया है आदमी से?इतना उद्वेग, इतनी बेचैनी, इतनी आतुरता, इतनी अीघ्रता, नैराश्य का कारण क्या है। सचमुच किसी बड़े अभाव जिसने सब कुछ होते हुए भी मनुष्य को कुछ भी नहीं जैसी स्थिति में ला पटका है। नि:संदेह प्रेम जीवन की सबसे बड़ी विभूति है और उसको लगभग विस्मरण जैसा ही कर दिया गया है। प्रेम विहीन एकाकी रिक्त व्यक्ति आज अस्थिर, असंतुष्ट, रूक्ष और आतुर है। रिक्तता तो केवल प्रेम से ही भर सकेगी। वैभव बढ़ गया, अंतरंग को भुला दिया गया। प्रेम जो आत्मा की प्रकृति और प्रवृत्ति है। न कोई हमारा, न हम किसी के–यह स्थिति अत्यन्त भयावह है। यहाँ कोई किसी के साथ नहीं है। सब लोग अपने साथ हैं। यह कैसा समय है जहाँ हर कोई एक–दूसरे से डरा हुआ है और इसलिए हर कोई अकेला है। हम पाँव गँवाकर जूते बचा रहे हैं। आज मनुष्य की आंतरिक रिक्तता, भावनात्मक शून्यता प्रेम–भावनाओं के कुंठित हो जाने के कारण उत्पन्न हुई है। साधन रहते हुए भी घोर दरिद्र जैसी दयनीय स्थिति में पड़े रहने का एकमात्र कारण है किसी को अपना और अपने को किसी का न समझना, अपनी ही संकीर्ण और स्वार्थपरता में उलझे रहना। इन्द्रिय–सुखों, तृष्णाओं, वैयक्तिक सम्पन्नता की महत्त्वाकांक्षाओं में उलझा मनुष्य जाल में जकड़े हुए हिरण की तरह तड़पता ही रहेगा। जो स्वाभाविक है, वही सुख देता है, कृत्रिम नहीं।

विश्व बाज़ार संस्कृति में मनुष्य को इतना एकांगी बना दिया है कि वस्तुवादी दृष्टि से वह समाज सापेक्ष नहीं रह गया है। वह केवल अपने बारे में सोचता है और सुख–समृद्धि के सारे सितारे खुद तोड़ लेना चाहता है। इस अंधी दौड़ में उसे अपने जीवन का अमृतत्व दिखाई नहीं पड़ता। वह भाग रहा है; क्योंकि वह देख रहा है कि उसके इर्द–गिर्द सारे लोग भाग रहे हैं। उसे पता नहीं कि वह कहाँ पहुँचने के लिए भाग रहा है। जैसे कोई हवाई जहाज़ का उपयोग ठेले की तरह करे–हम ज़िन्दगी के साथ यही कर रहे हैं। इतना पाने और गँवाने के बाद भी समझ में नहीं आता कि बस मृगमरीचिकाएँ हैं! विश्व बाज़ार ने मनुष्य को उपभोक्ता में बदलकर जीवन को यांत्रिक कर दिया है। आपसी संबंधों में सन्नाटा पसरा है। व्यस्तता और आपाधापी में इस सन्नाटे को और गहराया है। किसी के पास बैठने, बात करने की फुरसत निकालना सबसे बड़ा कौशल बन गया है, जिसकी पूर्ति हर कोई अपनी व्यावसायिक बुद्धि के हिसाब से ही अधिक कर रहा है ।

यौन, प्रेम तथा साहचर्य तीनों ही महत्त्वपूर्ण हैं तन और मन

तन में ही सत्य का अभिव्यक्त होना होता है। जीवाजीव, प्रकृति आदि सभी में सत्य है। 'अन्तर्मन बहिर्मन को प्रेरित करता है।' बाह्य–मन को अन्तर्मन प्रेरित करता है। मन को प्रेरणा किससे मिलती है, उस पर किसका शासन है?''मूल द्वन्द्वमें से पाकर मन प्रेरणा को इन्द्रियों की ओर भेजता है। इन्द्रियाँ फ़िर उस प्रेरणा की चालना से बाहर के प्रति उन्मुख होती हैं। जिस रूप में उस बह्म को फ़िर मन के द्वारा वे आदि में पहुँचाती हैं, उसी से फ़िर प्रतिप्रेरणा का आरम्भ होता है। यह क्रिया–प्रतिक्रिया एक क्षण के लिए भी जीव में रुकती नहीं है।'' मन को वस्तु जगत् सम्मोहित करता है। वस्तु जगत् आत्मजगत् में परिणत होने के लिए सदैव प्रयत्नरत दृग्गोचर होता है। अत: मन अन्तर्जगत् से प्रेरणा पाता है। मन तन में है, तन से है। आत्मा भी वहीं है। परन्तु फ़िर भी तन, मन और आत्मा में द्वैत ही बना रहता है। उनमें समन्वय हो नहीं पाता। ब्रह्म–ब्रह्माण्ड और खण्ड–तन दानों में एकात्मकता है। मस्तिष्क और हृदय तो अलग–अलग है। मन के दो प्रकार है– अन्तर्मन और बाह्य–मन। बाह्य–मन अन्तर–मन से प्रेरित होता है और अन्तर–मन द्वन्द्वके मूल से अनुप्रेरित होता है। तन को मन से अलग माने की चेतना अस्वस्थता का लक्षण है। उसकी स्वच्छता तथा स्वस्थता पूजा–अर्चना के समान व्यक्ति का अनिवार्य कर्त्तव्य है। शरीर के प्रति आसक्ति का भाव व्यक्ति को मन और अन्त: करण से सम्पृक्त कर देता है। उसी रस को मन में पाना और तन में छोड़े रखना कोई गर्व और श्रेय की बात नहीं है। तन का संयम जितना सख्त होगा, मन उतना ही कामनाओं तथा आसक्तियों की ओर जायेगा। वे कामनाएँ पापबोधक होती हैं। सारत: तन–मन दो नहीं, एक है। जबतक उनमें द्वैत रहता है, तबतक व्यक्ति सत्योन्मुख नहीं हो पाता।

कर्म–प्रवृत्ति है। विचार उस कर्म की निवृत्ति है। उस निवृत्ति में से प्रवृत्ति और अकर्म में से कर्म निकलेगा तो उसकी प्रबलता अमोघ होगी। अकर्म में से कर्म प्रेम–सत्य द्वारा ही सम्भव हो सकता है। द्वैत बंधन है। अद्वैत सत्य है। 'मैं' के रहते 'द्वैत' हट नहीं सकता। सत्य ईश्वर है। ईश्वर सर्वव्याप्त है। सम्पूर्ण सत्य को नहीं जाना जा सकता। खलील जिब्रान के शब्दों में कहना चाहिए ''कभी यह न कहना मैंने समस्त सत्य को जान लिया है, बल्कि मैंने एक सत्य पाया है।'' ''सत्य शुद्ध चैतन्य है। वह समग्र की अन्तरात्मा है।'' वह अनन्त है। अकल्पनीय है। अत: हम जो कुछ जान सकते हैं, वह एकांगी सत्य है। दूसरी दृष्टि से वह असत्य भी हो सकता है। ''सम्पूर्ण सत्य वह नहीं।

सेक्स, प्रेम और साहचर्य

स्त्री और पुरुष की परस्परता, उनके बीच आकर्षण तो प्रकृति ने ही सिरजा है। ''सामाजिक संस्कृति का उत्तरोत्तर विकास तभी सम्भव है, जबकि इनमें परस्परता व्यापक और सम्पन्न'' होती जाए। 'प्रेम' 'ईश्वर' दानों की प्रेमावृत्त परस्परता से अहम् का परिष्कार होता है और वह विराट की ओर उन्मुख होता है। अपने को छोड़े बिना प्रेम प्राप्त नहीं होता। प्रेम पाना फ़िर सब–कुछ पा जाना है–यानी अपने को खोना सदा के लिए खोने के डर से छूट जाना है। व्यक्ति स्पर्शेन्द्रिय (सेक्स) के बिना जन्म ही नहीं सकता। फ़िर जी कैसे सकता है?प्रेम में काम ऐसे परितप्त और परिपूर्ण होता है कि उसे अपने होने तक का चेत नहीं रहता। काम खण्डित है, प्रेम अखण्ड है। अखण्ड में खण्ड का वर्जन नहीं है, बल्कि समाबेश हो जाता है। मृदुता अगर कुछ भी कठोर बनना न जान सके तो क्या वह निकम्मी ही चीज़ न हो जाएगी?पुरुष की कठोरता भी स्त्री की कोमलता की ओर प्रेम से उमड़ कर कठोर कम यद्यपि तेजस्वी अधिक हो जाती है। कठोरता का आदर्श कठोरता नहीं है। कोमलता से वह अपना सम्बन्ध जोड़ सके, कठोरता युगपत् भीतर से कोमलता हो। सेक्स वह शक्ति तथा स्फूर्त भाव है, जिससे व्यक्ति के अहम् का परिष्कार होता है और जीवन–जगत् का सुष्ठु निर्माण होता है। उसके प्रति ''स्वीकार और समावेश की वृत्ति होनी चाहिए।'' सेक्स मिश्रण है अहम्–रक्षण और अहम् विसर्जन की दो अनिवार्य और विरोधी प्राण प्रेरणाओं का। इस तरह उसमें एक विस्फ़ोटक तत्त्व विद्यमान रहता है।'' वस्तु स्वभाव और वस्तु धर्म को समझकर ही सम्यक् चरित्र व ज्ञान की निष्पत्ति होती है। यदि सेक्स से इनकार किया जाता है, तो अहंकार सामने आता है। अहंकार से परस्परता का विस्तार रुकता है, जिस प्रकार सेक्स को मात्र शारीरिक भोग–तृप्ति मानकर चलने से परस्परता को क्षति पहुँचती है और वह अपराध का कारण बनती है। सेक्स सीमित है। काम की परस्परता प्रेम से हो चले तो उससे मानव मानव के प्रति वर्त्तमान में फ़ैले हुए समग्र गतिरोध स्वत: ही दूर हो जाए। आज पुल्लिंगी सभयता है, क्योंकि उसमें नारी की ग्रहण–वहन प्रवृत्तियाँ सम्यक् रूप से सहायक नहीं हैं। वस्तुत: स्त्री–पुरुष एक–दूसरे के सम्पूरक हैं, उनमें द्वैत नहीं है। व्यक्ति में 'वह मुझमें हो' का भाव स्त्री का अहम् है और 'मैं उसमें हूँ' का भाव पुरुष का अहम् है और इन दोनों का तादात्म्य या समर्पण एक–दूसरे के प्रति सप्रेम हो तो अर्द्ध–नारीश्वर की पौराणिक कल्पना जीवन–जगत् में चरितार्थ हो सकती है। फलत: शरीर–सम्भोग–प्रेम प्राकृतिक है। ''ब्रह्माण्ड निरावरण है, आवरण छोड़कर ब्रह्माण्ड के प्रति खुल आये, तो कहाँ रहता वह सब कुछ जो कदर्य है। नग्नता का तत्त्व किसी न किसी अंश में हमारे जीवन में काम करता रहता है, तभी हम जीवित भी बने रहते हैं। कोई होता है, जिसके प्रति हम अपने को ढँकना चाहते ही नहीं, खुल आते हैं और वहाँ से प्राण स्फूर्ति पाते रहते हैं।'' स्त्री–पुरुष के बीच सहज आकर्षण वैज्ञानिक तथ्य है। ''मनुष्य जाति में ही स्त्री–पुरुष नहीं है, सारी समष्टि में यह भेद व्यापा हुआ है और इसी की क्रिया–प्रतिक्रिया में से समूचा जगत्–व्यापार सम्भव और सम्पन्न

हो रहा है। काम का विरोध होता नहीं है, तपस्या द्वारा किया जाता है, तो अन्त में तपस्या को हारना पड़ता है, विजय काम की होती है।'' तपस्या अथवा ब्रह्मचर्य–व्रत में अहम्चर्य–व्रत है, जिसमें व्यक्ति विगलित नहीं होता है, बल्कि उसके विपरीत उसमें अहम् (अहंकार) ही पुष्ट होता है। काया सुखाना या काया को सजाना–सँवारना और स्त्री के प्रति वैर जैसा भाव मन में सम्पोषित करने के लिए सतत साधनारत बने रहना, अवैज्ञानिक, अनाध्यात्मिक और असामाजिक है। उससे भेद परिपक्व होता है, मन खुल नहीं पाता, उत्सर्ग हो नहीं पाता। वह कुण्ठाओं एवं ग्रंथियों का आखेटक बनता है। वर्ज्नाओं के आवृत्त में सत्य–दर्शन की मंगलकामना का अहम् जीता है। ''झूठ बिना अश्लील हो सकता नहीं और जहाँ झूठ है, वहाँ अश्लीलता के बीज अवश्य है।''

''सेक्स, काम और प्रेम–तीनों ही महत्त्वपूर्ण हैं। प्रेम का सहज व स्वाभाविक परिणाम शरीर सम्भोग है। शरीर सम्भोग न तो नकारते हैं और न उससे बंधित होते हैं। प्रेम से प्राप्त तृप्ति शरीर–सम्भोग की अपेक्षा कहीं ज़्यादा अतलस्पर्शी होती है। वह ''मानव की सम्भावनाओं को विस्तृत करती और उसके कदमों को विराट ब्रह्मा की ओर मोड़ती है।'' प्रेम हठशून्य और सहनशील होता है। प्रिय की प्रेमी से अधिक हित–कामना और कोई भी नहीं कर सकता। प्रेमी प्रिय के अहम् को सबसे अधिक जानता–पहचानता है और उसका विकास–विस्तार ही उसका लक्ष्य बन जाता है। उसमें दोनों को ही समग्र तृप्ति मिलती है और कृतार्थता का अनुभव होता है। इस तृप्ति और कृतार्थता से 'स्व' की सीमाएँ टूटती हैं और व्यक्ति परोन्मुख बनता है।'' जीवन का मूलोद्देश्य सत्योन्मुख होकर परम तथा अगोचर ब्रह्मानुभव को प्राप्त करना है। उसके लिए प्रेम का विस्तार व फैलाव चाहिए। प्रेम ही सत्य है, वह निखिल में परिव्याप्त है, वही ईश्वर या ब्रह्मा है। परस्परता का विस्तार उसी से है। वह सूक्ष्म है। तदन्तर्गत ही सेक्स व्यवधान नहीं, अपितु उसके लिए सहायक है। सेक्स में स्वास्थ्य को उत्तरोत्तर प्रेमोन्मुख करते जाना मौलिकता है, जिससे न नग्नता अश्लील है, न साहचर्य पाप है और न सेक्सहीन व उपेक्षा का कारण है। इसकी क्रिया–प्रक्रिया में से समूचा जगत् व्यापार सम्भव और सम्पन्न हो रहा है। खण्ड प्रेम जो खण्ड भोग को स्वीकार कर शिशु की सृष्टि कर पाता है, वही उत्तरोत्तर उत्थानोन्मुख होता हुआ अखण्ड प्रेम की ब्रह्मचर्य स्थिति तक पहुँचता है। इसकी अवहेलना प्रकृति के नियम का अपवाद है।

काम और अर्थ– वर्तमान युग की प्रमुख समस्या काम और अर्थ के कारण से है। आज परिवार, समाज, राज्य और संसृति काम और अर्थ के द्वैत में फँसी हुई हैं। वर्तमान में सभी संस्थाओं में काम की प्रमुखता है, प्रेम–पक्ष कमजोर है। बिना उदात्त कामेच्छा हुए बिना प्रेम की नीति सफलीभूत नहीं हो सकती है। कल्पनाएँ अपने समय पर साकार होती हैं। ऐसा धर्म चाहिए, जिसमें प्रेम और उपयोगिता तथा काम और अर्थ का समन्वय हो सके। 'प्रयत्न कामना में से निकलता है। प्रयत्न का मूल इस तरह काम है, फल अर्थ है।' मनुष्य की मानसिकता तथा कार्मिकता का सृजन ''प्रेम–अप्रेम मूलक काम व जागतिक उपयोगिता अर्थात् अर्थ से हुआ है। इन दोनों में अर्थ का प्रसार हुआ है, प्रेम–अप्रेम मूलक काम को लगातार क्षीण से क्षीणतर होता जाना पड़ा है। अर्थ में संयोग से प्रसूत प्रेम नीति नदारद है। 'नीति का उद्गम स्वयं निछावर प्रेम है।' प्रेम के बिना मानव बँटता–कटता रहेगा। काम और अर्थ प्रेम में से आयें और चलें तो मानव जाति पर मंडरा रहा संकट किसी सीमा तक कम हो सकता है और सहजता का अनुभव हो सकता है।

समाज और व्यक्ति–विज्ञान के तेजी से होनेवाले विकास ने पूर्व–प्रचलित परम्पराओं तथा मर्यादाओं के आगे प्रश्न–चिह्न लगाये हैं। नैतिकता का निघटन, मानव मूल्यों का ह्रास, आस्था का खण्डित रूप, अहम् फुत्कार, आपसी विद्वेष, रंग–भेद, जाति व धर्म भेद, आदि रूप मानव के सामाजिक मूल्यों में स्थापित हुए हैं। विवाह संस्था में भी बेहद तीखे परिवर्तन हुए हैं। 'प्रेम पर बंधन बनकर आनेवाला विवाह अधिक काल तक टिक नहीं सकेगा। विवाह जो स्वयं से स्वत: को छीनता है, आगे नहीं टिकनेवाला है।' समाज टूट रहा है, परिवार टूट रहा है, व्यक्ति टूट रहा है, तब फ़िर क्या रहेगा, कौन बचेगा?अन्दर पर्त की पर्त उखड़ी पड़ी हैं। विवाह इन हालातों में ऐसा बंधन हो आता है, जो सुभीते का नहीं रह जाता। 'विवाह पर गृहस्थ टिकता है, समाज टिकता है। यह प्राणतत्त्व है, आत्मा के लिए ऑक्सीजन है।'

पाप के प्रति करुणा– पाप भाव है, जो स्थिति आधृत है, युग सापेक्ष है। अत: एक कर्म दूसरे स्थान पर पाप नहीं माना जाता। उसके लिए सामाजिक, सांस्कृतिक तथा सभ्यता से निर्मित परिवेश का उत्तरदायित्व माना जा सकता है, जिसकी वजह से पाप अलग–अलग रूपों में है। वह पाप है भी अथवा नहीं। 'भय में से पाप की उपज है।' पाप मनुष्य की पशुता में है। पाप की स्थिति से पुण्य है। परन्तु वह अपराध नहीं है। अहंकार पाप का निमंत्रण है और स्वयं पाप है। मन में उठनेवाली आँधी ही पाप का बोध करा देती है। पाप का बंधन कटता नहीं है। पाप निदान का करुणा से सम्भव है। करुणा से हृदय पुन: निश्छल होकर स्वस्थ हो जाता हे। मन नि:शंक हो जाता है। व्यक्ति में हार–जीत का द्वैत रहता ही नहीं। द्वैत रहते हुए पाप रहेगा; क्योंकि जिधर जाने को मन नहीं है, उधर जाने की विवशता टाली नहीं जाती–अमोघ आकर्षण खिंचे हुए होता है और व्यक्ति के 'मैं' पर आघात–प्रहार होता, जिसे व्यक्ति में सहने की शक्ति नहीं होती और यही कारण है कि बड़े–बड़े ऋषि–तपस्वी अन्त में शाप देने से चूक नहीं सके। किसी न किसी मेनका ने उनका तप–बल अपहृत या भंग अन्ततोगत्वा कर ही दिया और हजारों वर्ष की त्याग–ताप के सफल से उन्हें हाथ धोना पड़ा। 'पाप वह जिसमें हम खिंचते हैं और खिंचना नहीं चाहते। जिसे आधा मन चाहता है और आधा मन एकदम नहीं चाहता।' 'द्वन्द्वका शमन तो सत्य में है'। पाप कानून द्वारा परिष्कृत नहीं हो सकता। वह भी एक प्रकार की शक्ति है। पाप भय का कारण है। भाषा स्वयं गलत या सही नहीं होती, आदमी गलत या सही होता है। आलम्बन तो सदा ही स्थूल होगा, अन्यथा हो नहीं सकता। सहयोग तभी हो सकता जब सहमति भी हो। मति सदा भिन्न होती है। इस भिन्नता के रहते ही सहयोग का मूल्य है। सत्य सर्वोपरि है, सत्य स्वयंभू है, सम्पूर्ण है, एक है, उसे आलम्बन की आवश्यकता नहीं है। सब विरोध उसमें लय हो जाता है। वहाँ सब 'न' कार स्वीकार्य है। अन्तिम कुछ नहीं है। आज का मानव अन्दर ही अन्दर कहीं गहरे में, परस्पर आतंकित हैं उसकी आस्थाएँ चरमरा रही है।

श्लीलता–अश्लीलता– 'अश्लीलता यदि है तो वस्तु में नहीं, व्यक्ति में है।' नग्न शरीर में अश्लीलता नहीं है। चूड़ान्त आवृत्त शरीर अश्लीलता से नहीं बचा रहता है। 'शरीर–वर्णन जहाँ ध्यान को अपनी ओर अटकाने के लिए है या वर्णन करनेवाले का ध्यान खुद शरीर में अटक कर रह गया है और इस तरह जहाँ समभाव और आत्मभाव का भँग है, वहाँ अश्लीलता है। किन्तु जहाँ शरीर–व्यापार द्वारा मनोवृत्ति को समझने–समझाने का अथवा उससे भी आगे बढ़कर उसके भीतर से आत्म–धर्म की शोध या प्रतिष्ठा का प्रयास है–वहाँ अश्लीलता नहीं है।' अश्लीलता तथा लीलता का सम्बन्ध वृत्ति से है, न कि वाक्य से, शरीर से। आज व्यक्ति का नज़रिया सभ्यता को ही नहीं, प्रत्युत् संस्कृति को भी फैशन के रूप में लेने का है। सभ्यता का बढ़ता हुआ प्रभाव सत्य को ढँकने लगता है। जैसे अंगूर पर का छिलका, छिलके भीतर के रस को सुरक्षित रखने के निमित्त हैं। रसोपलब्धि के लिए छिलके के मोह को त्यागना होगा। नारी में अतृप्ति तथा दमित इच्छाएँ, काम–वासना की छटपटाहट उनके त्याग में उदात्तता का भाव है। अपने को देने के लिए तत्पर होते समय भी सेक्स से पीड़ित नहीं है। अपने को समर्पित करते हुए भी अपने से अलग, असम्पृक्त दिखलाई पड़ती है। मन में कहीं कुछ शैथिल्य नहीं है। इतनी लम्बी ज़िन्दगी है और उसमें क्या सब कहीं आवरण रहेंगे?

प्रश्न है कि फ़िर अश्लीलता–श्लीलता का अन्तर कैसे समझा जाये?एक व्यक्ति किसी अनब्याही युवती के साथ बलात् सम्भोग कर लेता है। उसको गर्भ रह जाता है। कहाँ गई नैतिकता और अश्लीलता?ब्रह्माण्ड आवरण रहित है। सारा ब्रह्माण्ड निर्वस्त्र है। अश्लीलता का प्रश्न सभ्यता का प्रश्न है और सभ्यता अप्राकृत है। अश्लील वस्तु के साथ नहीं है, कृत्य के साथ नहीं है, वह असत्य के और छल के साथ है। झूठ बिना अश्लील हो सकता नहीं और जहाँ झूठ है, वहाँ अश्लीलता के बीज अवश्य हैं।' शरीर दर्शन में अश्लीलता नहीं है। अश्लीलता का सम्बन्ध मनोभाव से है कि स्त्री–पुरुष का आकर्षण निसर्ग प्रदत्त है। जो वीर्य–वमन को उत्तेजन दे, वह अश्लील है। 'जो कामेच्छाओं को उत्तेजित या प्रोत्साहित करती हो।' वह कानून की दृष्टि में अश्लील है। वस्तुतया कोई भी चीज स्वयं में अश्लील नहीं हुआ करती है। 'अश्लील असल में वह भँवर है, जहाँ हमें अपना प्रयोजन भूल जाता है और इन्द्रिय व्यापार भुला और भरमा कर हमें घेर

लेता है। मान्यताएँ जन्मती हैं, काल कवलित होती रह जाती हैं। गिरावट का कारण परस्परता का अभाव है।

स्त्री–पुरुष की परस्परता

मानव–मानव की परस्परता सेक्स, प्रेम तथा साहचर्य में देखी जा सकती है। सेक्स को अहम् का परिष्कार करने और उसे शक्ति तथा स्फूर्ति के रूप में देखने की ज़रूरत है। स्त्री–पुरुष का आकर्षण आवश्यक है। विवाह संस्था संभोग के लिए नहीं, उन्हें संयत करने का प्रयोग है। शरीर–संभोग प्रेम या आकर्षण का परिणाम मात्र रहता है, जबकि प्रेम से मिली तृप्ति कहीं स्थायी तथा गहरी है। प्रेम से व्यक्ति विराट् की ओर बढ़ता है। मानव की परस्परता के लिए यौन, प्रेम तथा साहचर्य की आवश्यकता है। वासना प्रेम के विरोध में नहीं है। 'बन्धन में घुटकर योग भोग हो जाता है। वासना को कुचलना नहीं है, उठाना है। नकार–निषेध के जोर से विकार नहीं मिटता। विकार के सम्मुख होकर संस्कार सहज ही उसे उठाएगा।' जबतक तृप्ति बहुमुखी है, वह तबतक अतृप्त रहेगी। आत्मा या प्रेम का व्यापार इन्द्रियों के जरिये से सम्भव होता है। प्रेम में अशेष दान अनिवार्य है। भोग स्वभाव से अपूर्ण है। अतः व्यक्ति भोग कर अशान्त तथा अतृप्त रहता है। भोग से एक दिन योग मिल सकेगा, तो हम भोग के प्रति सहिष्णु और सहानुभूतिशील होना सीख सकते हैं। अहम् का निर्वैयक्तिक भाव से स्फूर्त होना रोमांस है। स्त्री–पुरुष एक ही अहम् के दो रूप हैं। यों अर्द्धनारीश्वर की कल्पना का पौराणिक रूप मान्य है। शुद्ध प्रेम स्त्री–पुरुष में प्रवर्तमान दृग्गोचर होना ज़रूरी है–वायव्य आदर्श नहीं। प्रेमी–प्रेमिका का और प्रेमिका प्रेमी का शुभ–चिन्तन करते हुए विकासोन्मुख हो सकते हैं और धीरे–धीरे व्यक्ति दायरे से निकलता हुआ विराटोन्मुख हो जाता है। कोई एकदम बाल्यावस्था से युवास्था में नहीं पहुँच सकता। 'प्रेम की ज़्योति और जीवन के आनन्द की शक्ति को प्रदान करने का वरदान विधाता ने नारी को ही सौंपा है। बाहर से गतिमय दीखने पर भी पुरुष अन्तर में स्थिर है, गतिहीन है और स्त्री बाहर से स्थिर दीखने पर भी गतिमति है। इसलिए पुरुष को गतिमय और कर्ममय होने के लिए नारी से अभिन्नता पाना आवश्यक है। नारी से नहीं तो नारीत्व से। पुरुष अपूर्ण है, नारी भी। पूर्णता का नाम 'अर्द्धनारीश्वर' है।' नीति यदि पोषण की हो तो प्रेम और अर्थ, प्रेम और काम तथा प्रेम और उपयोगिता का समन्वय हो सकता है–यह पारस्परिकता का मूल सिद्धान्त है कि शोषण न हो, पोषण रहे। नारी केवल गृहिणी क्यों हो, गृहिणी से अलग भी उसका जीवन है। अगर उसमें गृहिणीत्व से आगे बढ़ने का सामर्थ्य है तो वह क्यों न आगे बढ़े। स्त्री–पुरुष के आकर्षण से आगे मनुष्यत्व ईश्वर का है–हम उधर नहीं जा पाते हैं। पुरुषत्व पुरुषार्थ द्वारा ही साध्य है। सत्य को समझने के लिए गहराई चाहिए, उत्तेजना नहीं।

दो पाटन के बीच में साबूत बचा न कोय

मूल्यों में सतत बदलाव

वक्त के साथ चीज़ें बदलती रहती हैं और मूल्यों में सतत बदलाव होता रहता है और ऐसा हमेशा से ही होता आ रहा है। मनुष्य छः मूलभूत मूल्यों को धारण करता है–उत्तेजना (भावनाएँ, आंनद एवं कामवृत्ति); उत्प्रेरणा (शक्ति, प्रतिष्ठा एवं सफलता); हस्तक्षेप (लगाव, जुड़ाव एवं सहायता); निर्देशात्मक (कर्त्तव्यपालन, धर्म एवं परंपरा); वास्तविकवाद (सौन्दर्य, ज्ञान एवं परिपक्वता) और अस्तित्व (स्वास्थ्य, स्थिरता एवं उत्तर जीवन)। इन सभी मूल्यों की शक्ति समय के साथ बदलती जाती है और प्रभाव में परिवर्तन होता रहता है।

प्रेम और चरित्र

स्त्री एवं पुरुष के लिए प्रेम और चरित्र एक बहुत ही सब्जेक्टिव टर्म है। स्त्रियों के संदर्भ में अक्सर उन्हें पुरुषों से उनके रागात्मक संबंध के दायरे–मात्र में ही देखा तथा परखा जाता रहता है। किसी भी स्त्री को उसके चरित्र, स्वभाव एवं प्रेम तथा सेक्स से परिभाषित किया जाता रहा है। इसके बावजूद किसी स्त्री से कोई सवाल नहीं पूछा जाता! मान लिया गया है कि स्त्री कभी ग़लत नहीं होती, ग़लत नहीं करती और सदैव प्रकृति की तरह पैसिव, अकर्मक, जड़ या निश्चेतन अवस्था में बनी रहती है। प्रश्न है कि क्या सौन्दर्य, माधुर्य, रूप, रस, रंग, गंध में कभी कोई गति होती ही नहीं?

बाज़ारु संस्कृति में

उपभोक्तावादी बाज़ारु संस्कृति में आज प्रणय तथा सेक्स में कोई फ़र्क नहीं किया जा रहा है। ऐसा स्वीकार हो रहा है कि देह की संतृप्ति सुख (प्लेज़र) में है, न कि प्रज़नन में! निषेध, नकार तथा निष्क्रियता स्त्री को संभवतः पुरुष से अधिक वफ़ादार बना देती है। तो क्या सेक्स का संपूर्ण परम सुख मोक्ष है?इसकी चरम दशा महासुख है? प्रेम और सेक्स अलग–अलग है या फ़िर साथ–साथ?

समय बदल रहा है

सच है कि समय बदल रहा है। जातियों एवं धर्मों के किले ढ़ह रहे हैं। पेशे एवं व्यवसाय में तब्दिलियाँ आई हैं। परिवेश में खुलापन बढ़ा है। मगर यह भी सच है कि कुछ बातें कभी ख़त्म नहीं होतीं। ख़ासकर स्त्री और पुरुष के बीच नैसर्गिक प्रेम. .प्रेम की बातें! इनमें कई सवालों के जवाब स्वयं छिपे हैं । तेज़ी से आधुनिक और उन्मुक्त होते समाज़ में प्रेम के नाम पर स्त्री हो या पुरुष हर कोई कुछ–न–कुछ बचा रहा है। जबकि इस क़ायनात में तमाम चीज़ों की उम्र लगभग तय है...कुछ भी पूरी तरह से बचता नहीं, बच नहीं सकता–न सूरज, न चाँद, न ग्रह, न उपग्रह... कुछ भी नहीं...प्रेम भी नहीं। हम होते हैं, इसलिए बचाते हैं। बचाते हैं, इसलिए हम होते हैं। इस सच्चाई से आज कतई कोई इन्कार नहीं कर सकता कि स्वार्थ, सुविधा तथा लाभ के इस दौर में कोई किसी के साथ नहीं है। दिखावे हम लाख़ भले ही कर लें! सब लोग अपने साथ हैं। साया तो सिंहासन के पायों का भी होता है और साये के सहारे सन्मार्ग की तलाश नहीं की जा सकती है।

स्त्री हो या पुरुष

स्त्री हो या पुरुष कला की तरह अपनी ज़िन्दगी में ही हरेक को खुश तो नहीं रख सकते। खुद को महत्त्वपूर्ण समझने और बड़ा करने की कोशिश में बाकी सारी चीज़ें आज छोटी होती चली जा रही हैं। प्रेम का भी यही हश्र हो गया है। पृथ्वी ऐसी जगहों से खाली हो रही है, जहाँ प्रेम किया जा सके। ग़लत चीज़ों को हम बचा रहे हैं। वस्तु को बचाते हैं, आत्मीय भाव के प्रति लापरवाही है।

स्त्री हो या पुरुष कोई आज किसी के सपने पूरे करने के लिए बाध्य नहीं है। त्याग और समर्पणशीलता की बात बेमानी हो चुकी है। दोनों ही अपने–अपने तरीक़े से जी रहे, भोग रहे हैं। इसलिए कोई भोग को नहीं भोगता। दोनों ही भोग के द्वारा भोग लिये जाते हैं। सहनशीलता आज किसी के पास नहीं रही। अपना हित, अपना सुख, अपनी खुशी, अपना कल्याण आज सर्वोपरि है। मृदु और तीक्ष्ण समय पर कोई नहीं हो पाता। अपने स्थान पर सहज सुलभ भोगों का सुख कोई नहीं ले पाता...मन से हर कोई कहीं और ही होता है। आत्ममुग्ध है सब और यही आत्ममुग्धता पतन को आमंत्रित करती है। आपसी संबंधों का स्तर बहुत नीचे गिर गया है। सच तो यह है कि स्त्री हो या पुरुष कोई किसी को समर्पित नहीं होता है। दोनों ही प्रेम को समर्पित होते हैं। इसलिए प्रेम का मूल्य कभी कम नहीं हो सकता, परन्तु आज कोई किसी में नहीं है। सब अपने–अपने में हैं।

आज प्रेम जीवन–मरण का प्रश्न तो नहीं

आज प्रेम स्त्री हो या पुरुष किसी के लिए जीवन–मरण का प्रश्न नहीं रह गया है! परस्पर शोषण का ज़रिया–मात्र बनकर रह गया है। हमारे जीवन की किताब, विचार, संवेदना, सरोकार के साथ–साथ प्रेम के लिए कोई जगह नहीं है। आज ज़माने और जीवन में प्रेम शायद सबसे अंत में है ! मगर वह है। जहाँ भी है, उसे कुछ लोग दूब पर गिरे ओसकण की तरह बचाने को अपने जीवन की सबसे बड़ी सार्थकता मान रहे हैं। प्रेम किसी बुजुर्ग के झुर्रीदार चेहरे पर टिकी बुझी बूढ़ी आँखों में मृत्यु के इंतज़ार के रूप में शायद महत्त्वपूर्ण है। हमारे चारों तरफ़ भौतिकता की तेज़ रफ़्तार में अँधेरा गहरा है और न चाहते हुए हम उसमें धँसते चले जाते हैं। हमें आकार–प्रकार, रंग–रूप, गंध–सुगंध और गति का जैसे ज्ञान ही नहीं है। यह समय ज्ञात से अज्ञात की ओर, ध्रुव से अध्रुव की तरफ अंधे होकर भागने का है। हमारा दिमाग पसंद– नापसंद के अनुसार कुछ ख़ास विषयों, प्रसंगों, विचारों में हरपल जैसे उलझा रहता है। आज के असंवेदनशील दौर में स्त्री–पुरुष परिस्थितिवश मिल भी जाते हैं, कहीं–न–कहीं उनका मानसिक, भावनात्मक एवं दैहिक स्तर पर परस्पर स्पर्श भी होता है, क्रिया–प्रतिक्रिया भी करते हैं–मगर बस, यहीं तक! सिर्फ़ आकर्षित होते हैं रहस्यों के प्रति। देहहीन प्रेम इस पृथ्वी पर हो सकता है क्या?हम अकेले भी नहीं होते।

आज प्रेम कहाँ–कहाँ से नहीं धकेला जा रहा है

आज प्रेम कहाँ–कहाँ से नहीं धकेला जा रहा है! संस्कृति, परंपरा, मर्यादा, रीति–रिवाज़... से! सच आज का समय प्रेम करने का नहीं, प्रेम के दिखावे का है। बिल्ली की तरह प्रेम के भी कई जन्म होते दिख रहे हैं। स्त्री–पुरुष का प्रेम–संबंध महज़ द्वन्द्वयुद्ध का अख़ाड़ा बन कर रह गया है। रेड कलर का ख़ूब फूला हुआ वेस्टर्न गाउन। हमें पता होना चाहिए जिस डाली को हम सहला रहे हैं, वहाँ छाँव भले ही कम हो, पर काँटे तो चारो तरफ हैं। दो रास्ते हैं, जिनमें जबरदस्त घर्षण होता है ! ऐसे में 28 से 36 होती स्त्री ठगी हुई–सी प्रेम में रह जाती है। ज़रा–सी नरमी मिले, तो भींग जाती है और थोड़े–से ताप से ही सुलगने लगती है। सोने की चमक में खोट की संभावना बनी रहती है। आज का प्रेम ऋषिकेश के लक्ष्मण झूले जैसा है, जहाँ नहीं है झूलने जैसा कुछ! बस, मान लेना होता है कि हम झूले पर हैं और झूल रहे हैं। झूलते हुए ढूँढ़ रहे हैं हम अपनी अंतिम पनाहगाह, जहाँ कुछ पास होता है तो कुछ दूर हो जाता है। कुछ हज़म कर लेने पर आराम से पसर जाने की तरह। एक्सचेंज़ करने के खूबसूरत बहाने हमारे पास मौजूद होते हैं। ज़रूरी है खुद के साथ खुद का होना !

प्रेम में खुद एक ताप होता है

प्रेम में एक ताप होता है और जो इस ताप से समुचित मात्रा में भाप नहीं बना पाता, वह आख़िरकार पश्चाताप ही तो करता है। आज प्रेम एक ईख है। ईख चूसने से लेकर पेरने, रस निकालने, गुड़ बनाने, शक्कर बनाने और अंततः सिरका बनाने के काम आता है। गन्ने से विवाद की स्थिति में लाठी का भी काम ले लिया जाता है। इसके बावजूद जाने क्यों गन्ने को हर हाल में कोई–न–कोई खरीदार मिल ही जाता है। बस, ख़रीदार कुछ कुशल टाइप का हो और थोड़ा ज्यादा ही चालाक हो। जिसने मुँह चीरा, वह भोजन की व्यवस्था भी करेगा।जिसने...खैर...आगे नहीं कहा जा सकता!

प्रेम और अप्रेम के बीच

आज का अफ़सोस प्रेम और अप्रेम के बीच का है। ग़लत पते की चिट्ठी बनकर रह गया है प्रेम! अफ़सोस होता है लोगों को कि प्रेम में प्रेम ही क्यों किया?दिल की जगह दिमाग से क्यों नहीं काम लिया?आज की पीढ़ी यह आवश्यक समझने लगी है कि हम प्रेम करते हुए भी प्रेम में न रहें। अन्यथा यह पश्चाताप होना ही है कि हमने प्रेम किया !सोच–विचार आधुनिक होती जा रही है। प्रेम करते वक़्त सबसे ज़रूरी है कि हम किसी के प्रेम में न रहें।प्रेम करते समय प्रेम में न रहें। प्रेम के कीचड़ में कमल की तरह रहें। प्रेम भी साक्षी भाव से करें, आसक्ति से ऊपर उठकर। गणित इस दुनिया में अब सबसे अच्छी जगह है रहने के लिए। हम प्रेम क्यों कर रहे?क्या दुनिया में भले आदमी के करने लायक कोई और काम नहीं बचा?प्रेम का आउटपुट क्या होगा?प्रेम में छिटफुट से काम नहीं चलता। हम कब तक प्रेम करेंगे?क..ब..त..क?सेटल होने तक या किसी अन्य अप्रेमित जिससे किसी ने प्रेम न किया हो या जिसने किसी से प्रेम न किया हो, ऐसी पवित्र नारी से विवाह होने तक ! जो लोग ऐसे सवाल हल कर लेते हैं, उनके हालचाल पूछने को दुनिया उत्सुक रहती है। जो नहीं कर पाते, प्रेम उनके हलक में फँसा रहता है।

सनातन प्रेम

सबसे विचारणीय अहम् सवाल तो यह है कि हमारा सनातन प्रेम जिन परंपराओं, मूल्यों, विश्वासों, भरोसों, आत्मीय संबंधों की अपनत्वभरी संवेदनाओं पर आधारित और सृजित है– उनके ख़त्म हो जाने के बाद..अंतरंगता के स्वाहा हो जाने के बाद हमारे पास फ़िर बचेगा ही क्या?पार्थिव और भौतिक चीज़ों की उपलब्धि के सहारे जीवन की लंबी डगर का हम सफ़र कैसे कर पाएँगे?मानसिक सुख, शांति, सहजता को खोकर, सुकून–चैन गँवाकर हम कौन–सी अलभ्यता को प्राप्त कर सकेंगे?मूल्यविहीन जीवन, संस्कारहीन परिवेश, परस्पर अविश्वास और धोख़े का जीवन क्रम अंततः हमें कहाँ लेकर जाएँगे?अराजकता, अपराध, बिडंबना की दहशत के साये में हम कैसे जीवन–यापन कर सकेंगे?असंतुलन हमारे अंदर है। हमारे भावों–विचारों और कर्म–आचरण में है। संतुलित हुए बग़ैर कुछ भी संभव नहीं होगा।

क्या है पुरुषार्थ

बिना आपा खोये बल, संयम, धैर्य का परिचय देना पुरुषार्थ है। पुरुष का अर्थ है–जो हमेशा प्रसन्न रहता है, निडर है, आत्मविश्वासी है, साहसी है, मन से मज़बूत है, स्थिर है, उत्साह उमंग ज़ोश से लबालब है। पुरुषत्व का संबंध क्षमता से है, क्षोभरहित होने से है, चिंता से मुक्त रहने से है। सादाजीवन, उच्च विचार से है और अब ऐसा कहाँ है ?न तो उद्वेगशून्य आचरण है, न अनातुर व्यवहार। इच्छाओं, वासनाओं का कोई अंत नहीं। दौड़ ने दुनिया को बहुत करीब तो कर दिया; लेकिन हमारे अपनों से ही हमें दूर कर दिया। हम संबंधों की भीड़ में अकेले रह गये हैं। हमारे आस–पास सुख–सुविधाओं का अंबार तो लगा है, लेकिन हम फ़िर भी भीतर से तनहा और अशांत हैं। बुद्धि का इतना विकास हो गया है कि भावनाएँ ख़त्म हो गईं। हम शोषक अधिक हो गये हैं। आज किसी की आँखों में सच्चे प्रेम की तस्वीर नहीं है, दूसरी ही चीज़ की तस्वीर है।

मशीनीकरण के दौर में

मशीनीकरण के दौर में संबंधों की मिठास और स्वाद स्वाहा हो रहे हैं। नए मूल्य व नई संस्कृति के सही इस्तेमाल करने के अलावा प्रेम को सँभालने–सहेजने और सुरक्षित बचाने का दूसरा कोई मार्ग भी नहीं है। मनसा, वाचा, कर्मणा हमें संबंधों के प्रति ईमानदारी बरतनी ही होगी। स्वार्थ की जगह त्याग की कर्मभूमि पर खड़ा उतरना ही होगा। ज़रूरी है हम किसी चीज़ को हासिल करने की न सोचें। बेहतर है कुछ खोजने के लिए सात्विक एवं आध्यात्मिक चिंतन–मनन करें। अपने आप पर ही प्रहार कर हम कैसे साबूत रह सकेंगे?हम स्वयं नहीं सुधरेंगे, तो सुधार होगा कैसे?हमें जो प्राप्त है, उसमें संतुष्टि और प्रसन्नता की तलाश करनी ही होगी। प्राप्त का सम्मान और अप्राप्त की उपेक्षा किए बिना ऐसा संभव नहीं होगा। ज़रूरी है कि दूसरों की ज़िन्दगी जीने की ललक और नकल में हम समय न बर्बाद करें।

नारी : निमित्त और प्रेरणा

रति भाव–दर्शन की दुर्दम्य उत्कंठा मदांध परिस्थिति विशेष में ही उत्पन्न होती है, जो अकारण नहीं है। दैहिक पराभव की अपेक्षा मानसिक पराभव अधिक घातक होता है; क्योंकि उसका एक ही परिणाम होता है नैतिक और सांस्कृतिक पतन! अपनी उफ़नाती हुई काम–इच्छाओं की क्षणिक अग्नि–शिखाओं के संतोष की रक्षा के लिए, स्मरोद्दीपन तृप्ति के लिए जीवन के नैतिक मूल्यों का रूप धारण कर लेती है। आहुतियाँ दे–देकर उस काम–ज़्वाला को जगाने से चिटकती हुई चिनगारियाँ आहुतियाँ पाकर कामाग्नि को और भी प्रज़्वलित करती हैं। नारी इसके लिए निमित्त और प्रेरणा होती है! वासनामूलक नैसर्गिक प्रवृत्ति के अतिरिक्त अन्य पाशविक प्रवृत्तियाँ भी होती हैं। खाद्य–कुखाद्य– अखाद्य का विचार न करना भी पाशविक प्रवृत्तियाँ हैं। आवेग जब चरम अवस्था को प्राप्त हो जाता है, तब उसका कार्य समाप्त हो जाता है। पुरुष की समस्त गति का अंत नारी पर आकर होता है जिसमें मासिक व्यभिचार और शारीरिक दुराचार की संतुष्टि शामिल होती है।

गति एवं गंभीरता के लिए

यह सही है कि परिस्थितियाँ सदैव एक–सी नहीं रहतीं, सतत बदलती रहती हैं, और इस परिवर्त्तन के फ़लस्वरूप विचार–धारा एवं मान्यताओं में भी परिवर्त्तन होता रहता है। लोग ऐसे परिवर्त्तन की आवश्यकता भी महसूस करते हैं। मूल्य–निर्धारण के प्रसंग में नव प्रयोगों का बड़ा ही महत्त्व है। जब मूल्य–निर्धारण का प्रश्न उठेगा, तब हमें यह देखना ही पड़ेगा कि हम किन सिद्धांतों को मान्यता दे चुके हैं, हम किस पथ से चलकर उस ऊँचाई तक पहुँच सके हैं, जहाँ हमारा अतीत सगर्व खड़ा है। मन की अनुभूतियाँ ही अभिव्यक्ति का रूप धारण करती हैं। जिसे हम सच्चाई कहते हैं, वह आकाश की तरह ऊँची, आग की तरह शुद्ध एवं गंगाजल की भाँति निर्मल और साथ ही चट्टान की भाँति निर्मम तथा बज्र समान कठोर भी होती है। हमारी श्वासों को वर्त्तमान से ही संबंध नहीं। उनमें अतीत की प्रेरणा है और भविष्य के लहराते हुए समुद्र को अपने में समाहित कर लेने का भावावेशित अदम्य उत्साह भी। जीवन को गति एवं गंभीरता देने के लिए हमें भीतर की ओर देखना और भीतर की वाणी सुनना ही होगा।

स्त्री–पुरुष के बीच प्रेम–प्रसंग

यह विषय ही ऐसा है, जिसकी प्रासंगिकता हर युग में बनी रही है, युगों–युगों तक बनी ही रहेगी। काल के अंतराल में व्यक्ति और समाज की

मानसिकता में विज्ञान–ज्ञान के आलोक में परिवर्तन भले ही आया हो, प्रणयजन्य कुदरती नैसर्गिक सुकोमल रागात्मक भावना और विपरीत प्रकृति का जैविक आकर्षण तथा मन में–प्राण में साम्वेगिक उद्वेलन में कोई फ़र्क नहीं पड़ता। जीव–मात्र से प्रकृति–प्रदत्त जो जिजीविषा है, उसका अभिन्न अंश है प्रेम और काम। विज्ञान, कला के संग मनोविज्ञान और पाश्चात्य जीवन–दर्शन का प्रभाव भले ही प्रेम के रागात्मक पक्ष पर पड़ा हो, लेकिन भारतीय परिवेश में सहज संवेद्य लाज़–सम्वलित चेष्टाओं तथा आनंद–छंदित कल्पनाशीलता का आसक्ति–वितान आज भी कायम है।

सेक्सजन्य प्रकृति–पुरुष आचरण

भारतीय नारी के चरित्र में एक उज़्ज्वल पक्ष यह भी है कि वह कोई प्रतिक्रिया शीघ्रता में नहीं दर्शाती। अपने आप में वैचारिक और भावना के स्तर पर परिपुष्ट और स्वयं में तुष्ट होती है। उनके भाव–समुद्र में उठने–गिरनेवाली प्रकीर्ण प्रगल्लभ क्षुद्र लहरियों का सद्यः सहज स्पर्श होता तो है, परन्तु सेक्स का मुख़र उभार कहीं नज़र नहीं आता है; क्योंकि स्त्रियोचित लाज़ का झीना अवगुंठन उसे समेटे रहता है। जबकि पुरुष सेक्स के उद्वेलन में अपने ऊपर संयम नहीं रख पाता। सेक्सजन्य प्रकृति–पुरुष आचरण अनुभूतियों की विविध गहराइयों को छूते हुए कलात्मक विस्तार पाते हैं। क्रिया–प्रतिक्रिया का कोई–न–कोई संदेश अवश्य होता है। पुरुषों में विशेषरूप से इन्टेलेक्चुअल्स में सेक्स की भावना दमित होती है, जो मौका मिलने पर उद्दाम हो जाती है और व्यक्ति का अपने आप पर नियंत्रण नहीं रह जाता। नारी इसके प्रति सजग, सचेष्ट, सतर्क रहती है। इसलिए क्षण विशेष में पुरुष के भुजबंधन में होते हुए भी प्रणयजन्य आवेग–आवेश में कमज़ोर नहीं पड़ती, साम्वेगिक उत्तेजना नहीं महसूस करती और पुरुष आगे नहीं बढ़ पाता। भारतीय नारी में एक कुदरती चारित्रिक दृढ़ता स्वतः पायी जाती है।

कहाँ तक सत्य है स्त्रियों के लिए

पंचतंत्र के अनुसार स्त्रियों में काम–शांति, ये किसने सुने या देखे हैं?विषय–भोग से स्त्रियाँ कभी संतुष्ट नहीं हो सकतीं। विषय–भोग के माध्यम से स्त्रियों को न तो सुखी बनाया जा सकता है, न ही प्रसन्न और न ही उन्हें जीता जा सकता है। क्या देवताओं ने भी भोगों के द्वारा अपनी पत्नियों को संतुष्ट किया है?''कामा ये कामदा नराः। आद्यन्तवन्तो भार्यया देवा।'' पुरुष तो स्वयं ही पैदा होते और मरते रहते हैं। स्त्रियों की दैहिक, मानसिक, भावनात्मक भाषिक आवश्यकताएँ ख़ास, विस्तृत और अलग हैं तथा आदि–अंत से रहित होती हैं, अधिक गहरी, स्थायी और सुविशाल होती हैं। स्त्री–शरीर में कामना की ग्रंथियाँ हर तरफ़ माधवी लता की तरह प्रसरणशील होती हैं। उनमें कामावेग भले ही पुरुष की तुलना में कम हो, परन्तु काम की मात्रा पुरुष से कई गुनी अधिक होती है। कामोत्तेजना सहन करने के लिए उनका तंत्रिका तंत्र काफ़ी सबल और प्रतिरोधक क्षमता कई गुनी अधिक होती है। उत्कर्ष पर स्वयं को देर तक टिकाये रखने की उनमें प्राकृतिक सहन–क्षमता होती है। पुरुष शरीर की तरह एक अंग विशेष में ही उनकी काम–ऊर्जा कीलित नहीं रहती। वह जो देखती, सुनती, भोगती है अपनी पूरी ईयत्ता के साथ। भोग में उनका पूरा शरीर, मन और भाव–कल्पना एक साथ क्रियाशील रहती है।

सच ही कहा गया है कि अग्नि से ईन्धन कभी तृप्त नहीं होती, सभी जल समुद्र में प्रवेश कर जाए तो भी जल से समुद्र की तृप्ति नहीं होती, सभी जीवों का भक्षण करके भी काल तृप्त नहीं होता, आकाश के सारे बादल बरस जायें, तो भी धरती तृप्त नहीं होती, इन्द्रियाँ विषयों के सुख से तृप्त नहीं होतीं, मन कामनाओं की पूर्त्ति से तृप्त नहीं होता, स्त्रियाँ विषय–भोगों से कभी तृप्त नहीं होतीं। उनका कुछ भी छिछला, उथला और सतह पर पुरुष की तरह नहीं होता।

प्रेम–संबंध का आज उद्देश्य

प्रेम–संबंध का आज सिर्फ़ उद्देश्य ही हो गया है–एंज़्वाय करना...कोई एक–दूसरे को सहने–झेलने के लिए बाध्य थोड़े ही है। अब वह युग नहीं रहा! आज के पुरुष को स्त्री में सिर्फ़ आदिम स्त्री दिखती है और आज की स्त्री को पुरुष में केवल पुरुष–मात्र! सबकी अपनी–अपनी ज़रूरतें हैं, ख़्वाहिशें हैं। अपनी कामनाओं की आहूति कोई क्यों देते फिरे?ऐसे में प्रेम करना...स्वीकार करना नहीं तो और क्या है?कोई भी प्रतिमा खंडित होने के लिए ही होती है!न कोई हमारा होता है, न हम किसी के होते हैं, परंतु हम अकेले भी तो नहीं होते हैं! आज स्त्री हो या पुरुष दोनों ही प्रेम के मामले में दोहरे चरित्र को जी रहे होते हैं और कबीर ने कहा है–

दो पाटन के बीच में साबित बचा न कोय।
ग़लत पते की चिट्ठी बनकर रह गया है प्रेम।

ग्लोबली बदल रही हैं स्त्रियाँ! पहले की तरह अबला नहीं रहीं। अब वो घुट–घुटकर नहीं जीना पसंद करतीं। खुलकर जीवन जीना चाहती हैं। मुख़र प्रतिरोध करती हैं, न्याय के लिए उठ खड़ी भी होती हैं। धर्म, जाति, रूढ़िगत परम्पराओं के बंधनों को तोड़ने से भी परहेज़ नहीं करतीं। लकीर की फ़कीर अब वो नहीं रहीं। थोपी हुई छवियों से बाहर आ रही हैं। जो उन्हें अच्छा लगता है और जिन कार्यों से उनकी आत्मा को खुशी मिलती है, आज की स्त्रियाँ वही करना पसंद करती हैं। पति की बेवफ़ाई से संबंध विच्छेद भी करती हैं और न्यायालय तक भी पहुँचती हैं।

वैधव्य जीवन जीने के लिए मज़बूर स्त्रियाँ भी सफेद परिधान की विवशताभरी परिधि से निकलती दिखने लगी हैं। वे सजती हैं, सँवरती है, घूमती हैं और अपनी मरजी से करती, मस्त रहती हैं। अपनी ज़िन्दगी को अपने ही तरीक़े से जीना पसंद करती हैं। अपने हिसाब से पुनर्विवाह भी कर लेने से गुरेज़ इन्हें नहीं रहा। अकेली ज़िन्दगी गुज़ारनेवाली महिलाएं भी आत्मतुष्टि– आत्मविश्वास से भरी हैं। आज की स्त्रियों को किसी और को प्रसन्न करने के लिए उनके अनुसार जीना पसंद नहीं। अपनी एकरसता से निकलकर मन में उत्साह, तन में ताज़गी और जीवन में रंग भरने का कोई मौका नहीं खोना चाहतीं। किसी भी स्थिति से सामंजस्य बिठाने की स्त्रियों की अपूर्व क्षमता होती है। उनकी सहनशीलता पृथ्वी समान है। स्त्री कथा अनंता।

सवाल है कि एक से अधिक पुरुषों से जुड़कर भी क्या स्त्रियाँ शुद्ध और स्वतंत्र हो सकती हैं?स्त्रियों की महानता को मापने का सतीत्व के अलावा भी कोई और मानदण्ड हो सकता है?पश्चिम में स्त्रियाँ ऊपर से देखने पर बेहद उन्मुक्त और स्वतंत्र जान पड़ती हैं, परन्तु वास्तव में कई प्रकार की विषम शृंखलाओं में बँधी–बँधायी होती हैं। ये चाहे कितने ही पुरुषों से फ्लर्ट कर लें, शादी के बाद तो संतानोत्पत्ति अनिवार्य रूप से करनी ही होती है तथा संतान के मामले में तथाकथित अवैध रिश्ते की उपज से प्रायः दूर ही रहती हैं। एक से अधिक पुरुषों से जुड़कर भी बिल्कुल अलग। विवाह संस्था का कोई विकल्प नहीं। परिवार समाज की पहली इकाई है। संतान और बुजुर्ग इसी इकाई में सुरक्षित रह सकते हैं।

बड़ी सच्चाई है कि स्त्री के व्यक्तित्व के जितने ज़्यादे आयाम होते हैं, उतने पुरुष के नहीं होते। उनमें एक गज़ब की समतुल्यता होती है, गोलाई होती है, गहराई होती है, प्रसाद होता है। यौन–शुचिता आज के समय में आँख पर पट्टी बंधा पाखंड है। शुचिता अगर स्त्री खोएगी, तो किसी अन्य पुरुष ही के साथ न! अपने जीवन की निज़ता में कौन, कहाँ, क्यों और कैसे सुखी है–इससे हम मतलब रखना छोड़ दें। स्त्री की यौनिकता, यौन–स्वतंत्रता, यौन–शुचिता उनका अपना निजी मामला है।

नई सदी के आरंभ में क्या हम भी एक चक्र की तरह ऐसी ही स्थिति की ओर अग्रसर नहीं हो रहे हैं, जहाँ स्त्री और पुरुष के संबंध स्थायी और बाहरी रूप से अनन्य नहीं है, जहाँ स्त्री और पुरुष मुक्त होकर मिलते–जुलते नहीं हैं, समान शर्तों पर एक–दूसरे की क्षमता को संपूर्णता देने के लिए निरंतर नहीं अग्रसर होते। हम जिस जगह खड़े हैं, वहाँ से लगता है कि समय अपने रास्ते से भटक गया है...! पुरुष अगर मंगलग्रह से है तो महिलाएँ शुक्र ग्रह से। इसलिए दोनों के बीच बहुत सारी चीजें बिल्कुल अलग होती हैं ऐसे में इन दोनों की सोच कभी सामान्य हो ही नहीं सकती। महिलाएं पुरुषों से ज़्यादा सोचती हैं। महिलाओं के शरीर के कुछ हिस्सों में खून का प्रवाह ज़्यादा होता है, जिससे वे ज़्यादा समय तक ध्यान केंद्रित रखने, आत्मनियंत्रण में और पुरुषों के मुकाबले स्थितियों को ज़्यादा बेहतर तरीके से समझने में सक्षम होती हैं। इसी वजह से महिलाएँ पुरुषों की तुलना में ज़्यादा संवेदनशील भी होती हैं। भावनात्मक सुरक्षा अधिक चाहती है। स्त्री–पुरुष हम उम्र होंगे, तो भावनात्मक और यौन परिपक्वता के मामले में स्त्री आगे होगी। स्त्री बड़ी होगी, तो सेक्स संबंध असंतुष्ट होगा, सेक्स डिज़ायर अधिक होगी। अविवाहित होना अलग है और वर्जिन होना बिल्कुल अलग।

आज पुरुषों में उतावलापन, अधीरता, जल्दबाजी और बेसब्री अपने चरम पर है। हरपल जैसे हड़बड़ी और हर काम में जैसे शीघ्रता और आतुरता। सब कुछ अभी ही चाहिए, इंस्टेंट। सब्र और इन्तज़ार तो है ही नहीं किसी के पास। जबकि जल्दबाजी को भी समय की ज़रूरत होती है। आज पुरुषों की मनः स्थिति बेचैन और डावाँडोल है, स्वयं की शक्ति पर भरोसे का अभाव और इच्छा शक्ति में घोर कमी स्पष्ट परिलक्षित हो रही है। आज पुरुषों की काम ऊर्जा कड़ाहे में लगातार खदबदाते दूध–सी ऊर्जा जैसी है, जो दूध में एकबार उफ़ान तो ला सकता है, मगर उस उफ़ान को देर तक अपेक्षित समय तक बनाये रखने की उनमें क्षमता नहीं होती, इसलिए पूर्णता और परफॉर्मेंस के मामले में पूरी तरह नाकाम साबित होते हैं। न खुद में संतुष्ट प्रसन्न होते हैं और न ही किसी को संतुष्टि और प्रसन्नता ही प्रदान करने का उनमें सामर्थ्य होता है। अपनी ऊर्जा का उपयोग कर पाना उनके बलबूते से बाहर की बात होती है। उनमें कामुकता तो अधिक होती है, परन्तु कामशक्ति के मामले में लचर सिद्ध होते हैं।

विवाह का मतलब यह कदापि तो नहीं कि पति को पत्नी के साथ जोर–ज़बरदस्ती करने और दुष्कर्म करने का अधिकार स्वतः मिल गया। वैवाहिक दुष्कर्म अपराध है, शुद्ध व्यभिचार है। जैसे एक अविवाहिता स्त्री का अपने शरीर पर अधिकार होता है, वैसे ही एक विवाहिता महिला को भी अपने शरीर पर अपना अधिकार होना, न्यायोचित है। वैवाहिक बलात्कार और अनिच्छा शोषण जुर्म है, यौनाचार है, पापाचार है। घटनाएँ कहती हैं कि जिसे जहाँ मौका मिलता है, वह दूसरे के प्रति अत्याचार करने से बाज नहीं आता। सवाल यह है कि पति–पत्नी के बीच दुष्कर्म हुआ, यह कैसे साबित होगा?वैवाहिक दुष्कर्म तो अलग है, दुष्कर्म कितनी बड़ी संख्या में हो रहे हैं, यह किसे पता नहीं है!निजता का अधिकार अब मौलिक अधिकार क्या नहीं है?क्या वैवाहिक जीवन की शुरूआत ही बलात्कार से नहीं हो रही है?प्रेम आधारित यौन–संबंध कितने प्रतिशत मामलों में देखे जाते हैं?भर्तृहरि ने कहा है भोग भोगी को ही खा जाता है। भोग वैसा ही है, जैसे अग्नि में घी! तृष्णा का कोई अंत नहीं है। इन्द्रिय और मन का संयम ही तप है।–महाभारत में उल्लेख है।

नहीं रहे अब भीगे–भीगे संबंध

साहित्य और निरंतर शोध का विषय है: 'स्त्री–पुरुष संबंध': उनका मन, उनकी संवेदनाएँ, उनकी भावनाएँ, उनके निरोध, उनकी तृप्ति, उनकी आकांक्षाएँ–उनके चरित्र का सब कुछ! उनका भीतर–बाहर, उनका 'आत्म–पर', उनकी स्वनिष्ठा– परनिष्ठा, उनके मनोवेग और उनके समस्त कार्य–व्यापार।

आज का युग चिन्ता, तनाव, अवसाद, निराशा, हताशा और मानसिक रुग्णता का असंवेदनशील तेज़ गति युग है। सभ्यता के विस्तार ने आवश्यकताएँ असीम कर दी हैं। मनुष्य न तो इनकी पूर्ति ही कर पा रहा है और न ही इन्हें सीमित करने के प्रयत्न में उसे सफलता मिल रही है। युग और जीवन–मूल्यों में संक्रांति है। अतः पगे–पगे अन्तर्द्वन्द्वहै, द्विधा है तथा मानवीय पारिवारिक संबंधों में अज़ीब–सी रिक्तता, संवादहीनता, रागहीनता आ गई है। भौतिकवाद के तीव्र प्रवाह ने उसे अस्त–व्यस्त कर दिया है। सुकोमल स्नेहिल भावनाएँ सूख रही हैं, कुंठाएँ जन्म ले रही हैं, स्नायविक विकार बढ़ रहे हैं। मनोग्रंथियों–असामान्यताओं का शिकार व्यक्ति समाज से ही नहीं अपनों से, अपने सपनों से भी दूर जा बैठा है। असामान्य परिस्थितियों ने व्यक्ति के व्यक्तित्व में भी असामान्यताएँ ला दी हैं। जीवन का सहज और स्वस्थ विकास अब उसे अनुपलब्ध है। वह प्रायः अति वैयक्तिक, मनोरचनाग्रस्त और मनस्तापी दीख पड़ता है। भीगे–भीगे संबंध नहीं रहे अब! ज़िन्दगी बहुत कड़वी, तीखी और व्यावहारिक हो गयी है। व्यक्ति देखता है अर्थाभाव सकल शारीरिक–मानसिक दुःखों का कारण है और अर्थ–प्राप्ति समस्त सुखों का कारण। इसलिए वह अर्थोपार्जन को ही चरम सत्य मान बैठा है।

आज सामाजिक संदर्भ भी व्यक्ति को असहज, असंतुलित तथा असामान्य बना रहे हैं। मानसिक उधेड़बुन, अशांति चरम सीमा पर है। व्यक्ति टॉनिक और विटामिन खा–खाकर जीते हैं, ट्रेंकुलाइज़र खाकर नींद लेते हैं। आज संबंध–विघटन व्यक्ति, परिवार तथा समाज सभी स्तरों पर है। वर्त्तमान जीवन की आर्थिक विषमताएँ और वैयक्तिक चेतना के उदय ने व्यक्तियों को धीरे–धीरे आत्मपरक होने को बाध्य किया है। अतः पारिवारिक व सामाजिक संबंध आर्द्रतापूर्ण नहीं रह गये हैं। संक्रमण की स्थिति से गुज़रते मनुष्य की स्थिति यह है कि जहाँ वह रहता है, वह अपना हो नहीं पाता और जन्मस्थान भी पराया हो जाता है। महानगरों के जीवन में सर्वत्र अपनत्व का अभाव है, एक अज़नबीपन का दंशित बोध है। वहाँ बाज़ार, कार्यालय, मैत्री, प्रेम सभी में एक बेग़ानापन है, यांत्रिकता है। व्यक्ति अपनी भी पहचान से सशंकित हो उठता है। व्यक्ति परिवेश से कट जाने को विवश है। हर किसी के पास कुछ ऐसा है जो कहा नहीं जाता, किसी से शेयर नहीं किया जाता। व्यक्ति का स्व समाप्त होता जा रहा है। वह चेहरे जैसी चीज़ बनकर रह गया है।

समसामयिकता के गुण से युक्त होने के कारण आधुनिकता की विशेषताएँ निरंतर बदलती रहती हैं। अपने को परिवेश के प्रति अनुकूलित न कर पाने की दुःखद स्थिति में अनिष्ट की निश्चित संभावना का तत्त्व सभी के अवचेतन में भय के रूप में समाया है। असफलता के भय से आज का व्यक्ति अपना इच्छित नहीं कर पाता। कुछ न कर पाने की विवशता मानसिक तनाव का सृजन करती है। अज्ञात भय व्यक्ति के अचेतन में बहुत गहरे पैठ गया है। यह व्यक्ति की क्षमताओं को निष्प्राण और आत्माओं को खोख़ला करता रहता है। इसलिए व्यक्ति प्रतिदिन कायर, कमज़ोर, असमर्थ और नपुंसक होता जा रहा है। जीवन द्वन्द्वसे निर्मित है। प्रातः के साथ सायं, प्रकाश के साथ अंधकार, दिवा के साथ रात्रि और हास्य के साथ रुदन का चक्र चलता रहता है। अतः जीवन की कृति में विकृतियों का अस्तित्व भी पूर्णतः स्वाभाविक है।

जीवन दिनोंदिन अधिक वैयक्तिक होता जा रहा है। स्त्री–पुरुष के बीच प्रेम और आकर्षण, रोमांस और कोमलतम भावानुभूति की स्थिति समाप्त हो चुकी है। प्रेम करने और प्रेम प्रकट करने तथा प्रेम को जीने–मरने के लिए न तो अब किसी के पास अवकाश है और न वैसी मानसिकता। आंतरिक 'स्व' पर भौतिक 'स्व' का आधिपत्य हो गया है और वह मुक्ति के लिए तड़फड़ा रहा है, पर कोई मुक्ति नहीं। सब अपने–अपने परिवेश की कालगत स्थितियों से अकेले लड़ रहे हैं। आज की प्रेम–भावना गहरी नहीं हो पाती, उसमें एक पिघला देनेवाला उत्ताप नहीं। आज के व्यक्ति के जीवन में कोमलतम आर्द्र अनुभूतियाँ लुप्तप्राय हैं। शरीर, हृदय और आत्मा न होकर मात्र मस्तिष्क बनकर रह गये हैं सभी। गंभीरता, शुष्कता, नीरसता, आपाधापी, भौतिकता, गंभीरता और अंतरंग आत्मीय संवादहीनता ने सरस संबंधों का सारा माधुर्य चौपट कर दिया है।

आज के तेज़ रफ़्तार यांत्रिक युग में सामाजिक, नैतिक मूल्य तेज़ी से अपकर्षित हुए हैं। वैयक्तिक मूल्य, व्यक्ति–स्वातंत्र्य तथा स्वाभिमान का अति विकास हुआ है। इसलिए हर जगह विख़राव, विघटन, तक़रार दृष्टिगत हो रहे हैं। पर इन सब में दोष किसी का नहीं है। युग बदल रहा है। अर्थव्यवस्था के संग सोच बदल रहा है, मान्यताएँ बदल रही हैं। वैयक्तिकता इतनी बढ़ गयी है कि परस्पर अपेक्षाओं के लिए स्थान नहीं बचा है। सब अपने लिए ज़िम्मेदार है। जीवन के वर्तमान क्षेत्र से समायोजन के लिए आज के व्यक्ति के लिए प्राचीन धारणायें, विश्वास, संबंध, मूल्य सभी अग्राह्य हैं। वर्तमान समय में व्यक्ति न तो अपने जीवन के प्रति भावुक हो सकता है, न किसी अन्य के प्रति संवेदनशील। व्यक्ति के आदर्शों, मूल्यों और परिवेश में कोई तालमेल नहीं रह गया है। परिवेश के अनपेक्षित दबावों को सहते–सहते व्यक्ति का अहं इतना भर गया है कि हर स्थिति का स्वीकारना ही उसका अभ्यास बन गया है। परिवेश और व्यक्ति के बीच वैषम्य बढ़ गया है।

महानगरों में शांति अप्राप्य है। सर्वत्र कोलाहल है। जीवन की गति अत्यंत द्रुत है। व्यक्ति के व्यस्त जीवन में अवकाश का अभाव है। विशाल भीड़ में व्यक्ति अपने को अकेला अनुभव करता है। आत्मीयताभरी पहचान के लिए तरस गया है। हर कोई एक–दूसरे को लापरवाही से नकारता निकल जाता है। व्यक्ति टूट रहा है। कभी परिस्थिति से, कभी मनोजन्य ग्रंथियों के कारण। यहाँ ख़ून का रिश्ता भी कोई रिश्ता नहीं है। सकल रिश्ते अर्थ अर्जित करने की संभावनाओं से सम्बद्ध हैं। सर्वत्र एक दौड़ है, एक अज़नबीपन है। अतिव्यस्तता और

संवेदन–शून्यता है। कोई डाली नहीं फूलती। बबूल की छाँव है! मुट्ठीभर पहचान है! यही सच है। 'भाव–ताव, ख़रीदो–बेचो' की व्यस्तता है। कहीं तरलता नहीं है! सब कुछ जड़ हो गया है। एकदम ठोस! अवैध संबंधों को देखकर भी कोई हस्तक्षेप नहीं करता। चारों तरफ़ विवशताजन्य मूक समझौता पसरा है।

बदलते युग के साथ आज की नारी में भी स्वतंत्र चेतना का जागरण हुआ है। अब स्त्री परंपरा और रूढ़ियों के दमघोंटू सीखचे को तोड़कर बहुत आगे निकल चुकी है। वैसे तो सृष्टि के आदि से ही 'काम' जीवन और साहित्य का शृंगार–सौन्दर्य और रसमय माधुर्य रहा है और विश्व साहित्य का अधिकांश कथ्य काम–सम्बद्ध है। आज काम को जीवन के प्रमुख जैविक और मानसिक प्रेरक के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है। जीवन के स्वस्थ विकास के लिए काम–विषयक गोपनीयता और संकोच की आज खुलेआम तिलांज़लि दी जा रही है। तद्विषयक अनैतिकता और पाप–बोध की धारणा का लगातार ह्रास हो रहा है। आज काम–विषयों की चर्चा रहस्यपूर्ण ढंग से तथा लुके–छिपे न होकर निःसंकोच तथा अन्य सामान्य बातों की तरह साधारण खुले रूप से होती है। अपरिचित स्त्री–पुरुष भी काम विषयों पर बिना संकोच बातें करते हैं और अपनी राय प्रकट करते हैं। नारी में काम विषयक छुईमुई की सिमटन अब नहीं रही है। दृष्टिकोण में उदारता और उन्मुक्तता के साथ खुलेपन में वृद्धि हुई है। 'काम–प्रसंग' आज पूरी तरह निरावृत्त हो गया है। यौन–संदर्भ अब स्वस्थ रूप से गृहीत होने लगा है।

'यौन' मात्र विवाहित जीवन का ही परिच्छेद नहीं रह गया है । यौन–शुचिता एवं कौमार्य की अवधारणा आज समाप्तप्राय है। अविवाहिताएँ भी निःसंकोच भाव से बिना विवाह के ही स्वाभाविक प्रेम को स्वीकार किये जा रही हैं। काम–तुष्टि की इच्छा जागने पर विवाह–पूर्व यौन–संबंध में कोई हिचक–झिझक जैसे नहीं रह गया है। हालाँकि इससे संपूर्ण जीवन अस्तव्यस्त और अव्यवस्थित हो उठता है। यौन–संबंधों में स्वच्छन्दता बढ़ी है। लिव इन रिलेशन की संख्या बढ़ी है। भावनात्मक लगाव में प्रेम की सघन संवेदनात्मक सरस अनुभूति से यौन–संपर्क का आज कोई आकांक्षी नहीं रहा। उत्तरदायित्वहीन यौन–सुख आज का सच है। नगरों में अविवाहित शिक्षित उन्मुक्त यौनाचार की ओर तेज़ गति से क़दम बढ़ा रही है। पर–पुरुषों से शारीरिक संबंधों के स्थापन के बाद आज की उन्मुक्त नारी में क्षोभ अथवा अपराधजन्य पीड़ा या प्रायश्चित का भाव नहीं है। बल्कि इससे खुशी और इत्मीनान हासिल करने जैसी अनुभूति होती है। नारी–पुरुष उन्मुक्त यौनाचार का अवसर ढूढ़ते रहते हैं। काममुक्तता विकृति की सीमा तक बढ़ी है। स्वच्छन्द भोग बढ़ा है। 'पर–गमन' अब पश्चाताप की घटना नहीं रही। प्रेम–संबंध तथा यौन–संबंध भी आज के जीवन की सामान्य स्थिति है, जिसकी स्वीकारना बिना पाप–बोध के आज के खुले विचारों की नारी कर रही है। विवाहिता भी पति के स्वच्छन्द प्रेमाचार का प्रमाण मिलने पर स्वयं भी पर–पुरुषगामिनी होने की ओर अग्रसर होने से स्वयं को नहीं रोक पाती है। सच्चाई है कि हर स्त्री अपने काम्य पुरुष को केवल अपने लिए चाहती है। प्रतिबद्धता की आकांक्षा और माँग तथा पूर्णाधिकार की इच्छा किसी भी स्त्री में पुरुष से अधिक पाई जाती है।

यदि परिस्थितिवश अपने को अपराध–ग्रंथि से मुक्त करने के लिए, अपने रिक्त जीवन में पूर्णता लाने के लिए नारी को किसी अन्य पुरुष के साथ अल्पकालिक शारीरिक संबंध स्थापन करने की मज़बूरी होती भी है, तो इसे अपने दाम्पत्य जीवन के प्रति विश्वासघात नहीं मानती। कभी–कभी पति–पत्नी में एक की शारीरिक या मानसिक अनुपयुक्तता के कारण दूसरा अतृप्त रह जाता है। इससे उसके मन में कुंठाओं व ग्रंथियों का जन्म संभावित है। इससे वैवाहिक सुख अलभ्य हो जाता है। इस कष्टप्रद स्थिति से बचने के लिए चेंज़ की संभावना के सूत्र को ऊँची सोसाइटी में बेधड़क स्वीकारा जा रहा है। जीवन की एकरसता से बचने के लिए या अन्य किसी आवश्यकता से बचने के लिए अनुभूत होने पर पति–पत्नी इच्छित शरीर–संपर्क भी स्थापित कर लेने की ओर उन्मुख हो रहे हैं। दाम्पत्य संबंधों में चेंज़ का समर्थन आज की अधिकांश महिलाएं करती हुई दिखती हैं। समाज में कामचेतना का जिस अबाध गति से संक्रमण हुआ है, उससे नैतिक मूल्यों और सामाजिक मर्यादा का बाँध टूटा है। रिश्तों की पवित्रता शारीरिक तृप्ति की चाह में स्वाहा हो रही है। परम्परागत, नैतिक व सामाजिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है। सच तो यह है कि स्त्री–पुरुष के बीच आज जो भी है–मात्र विषमलिंगी आकर्षण है। दोनों एक–दूसरे के प्रति सदैव शंकाशील हैं। अंतर्सतह पर यह स्थिति दोनों को मनस्तापी व हीन बना रही है। उनमें अपराध–ग्रंथि बोझिल हो रही है।

बदलते युग के साथ स्त्री–पुरुष के परिवर्तित प्रेम–संबंधों में बौद्धिक नारी प्रेम में आत्मरक्षा के सभी संभव प्रयास छल–सहित अपनाने से परहेज़ नहीं कर रही है। कहीं किसी विशिष्ट क्षण को अनुकूल न बना पाने पर जीवन असफलता में बदल जाता है। आज स्त्री–पुरुष क्षण को जीवन का निर्णायक और परम सूत्र मानते हैं–जो सामने है, जो क्षण हम जीते रहते हैं, उससे बड़ा सच कोई हो सकता है, इसपर किसी को विश्वास नहीं है। उनके लिए अनुभूतक्षण ही सत्य है, शेष सब झूठ! जीवन के अन्तर्गत कोई–न–कोई ऐसा कमज़ोर क्षण आ ही जाता है, जिसमें कमज़ोर मन कमज़ोर निर्णय लेने को बाध्य हो जाता है। परिस्थितिवश ऐसा स्वाभाविक है। ऐसे में जीवन का परिदृश्य ही बदल जाता है। आज के व्यस्त जीवन में मनुष्य को न तो जीवन को संपूर्णता से जीने का अवकाश है, न निहारने का। अतः क्षण के मनोरंजन, क्षण की तुष्टि और क्षण के सुख के लिए वह आग्रहशील है। क्षण में कालसीमा का बंधन ही तो है। हर क्षण व्यक्ति सुख के लिए चिंतित है। एक क्षण भी व्यक्ति को अपने ढ़ंग से जीने को नहीं मिलता। अतः वह तृप्ति के एक क्षण–जीने के एक झिलमिल क्षण–भोग के क्षण को ही ज़िन्दगी की सार्थकता मान लेता है। हम जीवन में आये सुखों के क्षणों को भी संपूर्णतः स्वीकार नहीं पाते, भोगना तो दूर की बात है!

काम–मूल्य की स्वस्थ पूर्ति जीवन के सहज विकास के लिए आवश्यक है। काम की अतृप्ति से मानसिक क्षय होता है। स्वस्थ काम संबंधों के ह्रास की स्थिति में व्यक्ति के चेतन, अचेतन और पराहम का संतुलन टूट जाता है। इनमें परस्पर विषमता आ जाने से व्यक्ति अति–वैयक्तिक्ता की ओर प्रेरित हो जाता है। किसी अन्ध प्रेरणा से परिचालित व समाज से समायोजन नहीं कर पाता और असामान्य व्यवहार करने लगता है। प्यार से अतृप्त, अस्त–व्यस्त जीवनेच्छाशून्य जीवन हो, जाता है। पति–प्रेम की कमी स्त्री को अन्य पुरुषों से शारीरिक संबंध, काम–लिप्सा की पूर्ति, शरीर समर्पण की ओर ले जाती है। पति की बौद्धिकता और पत्नी की संवेदशीलता को न समझ पाने के कारण ही पत्नी अन्यत्र शरीर समर्पण करती है।

मन अदृश्य, अस्पष्ट, अस्पृश्य, विवादास्पद और अनुमानित है। मनःस्थिति का विश्लेषक–व्याख्या व्यवहार है। व्यवहार बाह्य उत्तेजना के प्रति अनुक्रिया है। मनोविज्ञान उत्तेजना प्रक्रिया का विज्ञान है। यह व्यवहार का विज्ञान है। चेतन अचेतन दोनों प्रकार की अनुभूतियों से प्रभावित होकर व्यवहार करता है। मानसिक प्रतिक्रियाएँ व शारीरिक प्रतिक्रियाएँ (अनुभूतियाँ चेतन तथा अचेतन) तथा शारीरिक प्रतिक्रियाओं–व्यापारों (क्रियाओं) के माध्यम से मानसिक भावों, मनोवेगों, मनोविकारों एवं अनुभूतियों का प्रदर्शन होता है।

काम मनुष्य का मनोशारीरिक प्रेरक है। इसकी तृप्ति कहीं नारी को क्षोभोन्मादग्रस्त बना रही है, कहीं व्यक्तित्व विघटन का कारण बनी है, तो अन्यत्र उसमें कामकुंठा को जन्म दे रही है। अतः मनुष्य की कामतृप्ति के लिए ससमय विवाह–संस्था अनिवार्य है। वैवाहिक जीवन में प्रतिबद्धता अत्यंत आवश्यक है। अन्यथा कहीं तो पति का जीवन मानसिक द्वन्द्वसे परिपूर्ण हो जाता है, तो कहीं प्रतिबद्धता के अभाव में दाम्पत्य विच्छेद हो जाता है। कामसुख की अतृप्ति कुंठित कर उसे मनस्तापी और जीवनशैली को अव्यस्थित कर देती है। वैवाहिक सुख न बिता पाने की अतृप्तिजन्य कुंठा होती है। कहीं नारी–पुरुष का सामानान्तर अहम् वैवाहिक सुख में घातक है। पुरुष की बहिर्मुखी प्रवृत्ति और नारी का अधिक अंतर्मुखी होना दोनों का असामायोजन मूल होता है। वैवाहिक जीवन की अतृप्तियाँ ही नारी–पुरुषों को 'पर–गमन' की प्रेरणा देती है। अतृप्ति की कील कसक–कसक कर कहीं नारी को पर–पुरुष की ओर आकृष्ट करती है, तो कहीं किसी की बाहों के घेरे में जकड़े जाने की कुंठा को जन्म देती है।

आज की नारी विवाह की आवश्यकता को अपने अस्तित्व की सार्थकता के लिए स्वीकारती है। पुरुष को परंपरागत पति के रूप में कम, जीवन साथी के रूप में

अधिक ग्रहण करती है। काम–प्रेरक की अन–अनुकूलता में दम्पति की काम–अतृप्ति, अनैच्छिक भोग और दाम्पत्य अप्रतिबद्धता की तीनों स्थितियाँ परिगणित की जा सकती हैं। आज के युग में अतिबौद्धिकता और जड़त्व के कारण पति–पत्नी में अलगाव की स्थिति आई है। आज के पुरुष का दृष्टिकोण भौतिक हो गया है। उसके व्यवहार में या तो उदासीनता, ठंडापन रहता है या व्यर्थ का वाद–विवाद। काम–अतृप्ति का घर बिगाड़ने में बड़ा हाथ होता है। मनुष्य में कामेच्छा का प्रेरक तीव्र और प्राकृतिक है। इसकी शारीरिक, मानसिक अतृप्ति नारी–पुरुषों को घर से भटका देती है। नारी को जब नपुंसक पति से शारीरिक तृप्ति नहीं मिलती, तो वह घर के छोटे से घेरे से निकलकर इच्छापूर्ति का प्रयास करती है। हृदय में प्रतिशोध व विद्रोह की प्रतिक्रिया तीव्र हो जाती है। आज की नारी को पुरुष के प्रेम में भावनात्मक तृप्ति नहीं हो पाती है। चुम्बन, आलिंगन, शरीर व्यापार और व्यवहार सभी में यांत्रिकता और भावना–शून्यता बनी रहती है।

आज की नारी और पुरुष शादी और प्रेम को बेवकूफ़ी मानकर क्षण को जीने में ही सार्थकता मानते हैं। क्षणभोग की प्रवृत्ति ने नैतिकता, मर्यादा, मूल्यों का बाँध तोड़कर वैवाहिक जीवन में भी 'परगमन' की प्रवृत्ति पैदा की है। स्त्री–पुरुष भविष्य की चिंता से मुक्त होकर इसलिए अन्यत्र संबंध–स्थापन से चूकते नहीं! नारीत्व की अतृप्ति प्रेमगत असफलता के कारण है! पुरुष का पौरुष प्रश्नांकित है। भावुकता से ऊँचे उठकर पुरुष आर्थिक लक्ष्य को सर्वोपरि मान रहा है। खुशी तो मन की होती है, अपने से पानी होती है। बाहर से कौन किसी को खुशी दे सकता है। प्रेम के हवाई समर्पण या काम के शारीरिक आधार से वंचित अतृप्त नारीत्व पति की अधिक जड़ता, व्यस्तता और अति बौद्धिकता से आहत हो जाता है। किसी को बाहों में समेट अपने को उसमें लय कर देने और उसका सम्पूर्ण पा लेने की अतृप्त दुर्दमनीय चाह अभिशाप की तरह उनके मन पर छाई रहती है। आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यंत्रवत् 'सबकुछ' होना स्त्री को अतृप्त कर जाता है! सुंदर पति और पति का प्यार हर नारी का काम्य है। वह न मिलने पर कुंठित हो जाती है। आज का पुरुष पौरुषहीनता की आशंका से ग्रस्त है, उसका आत्मविश्वास खो गया है, शरीर से अधिक उसके दिमाग में गड़बड़ी है। धैर्य का अभाव है, उद्दाम काम–भावना की कमी है। यौवन–अतृप्ति, पुरुष का जड़ होना या रुग्ण होना, पुरुष की शारीरिक व मानसिक अक्षमता नारी में किसी की बाहों के घेरे में कसे जाने की अदम्य अस्वाभाविक इच्छा उत्पन्न करती है, प्यार की आर्द्रता जहाँ नारीत्व को नहीं मिलती प्रायः वह असामान्य और कुंठित हो जाती है। उनमें अन्यत्र शारीरिक सम्पर्क की कामना प्रकट होने लगती है। अतृप्त स्त्रीत्व की परिणति व्यक्तित्व के विखंडन में होती है। अनिच्छित पुरुष से विवाह से दाम्पत्य जीवन खाली लगता है। नारी की आर्थिक स्वतंत्रता अविवाहित और विवाहित दोनों ही स्थितियों में उसे महँगी पड़ी है। आख़िर इसमें बुरा क्या है?किसी को कुछ भी नहीं पता होता फ़िर भी पाप और ग़लत–ग़लत जैसा क्यों लगता है?इसमें क्या रखा है। आदमी–आदमी है और औरत–औरत। बौद्धिकता के अतिरेक में आज का पुरुष शुष्क, नीरस, मनोविकारग्रस्त है। पत्नी की कोमल भावनाओं को देखने का व्यस्त पति के पास अवकाश नहीं। परिणामस्वरूप नारी किसी के भी बाहों में कसे जाने की दुर्दम्य इच्छा की काम–कुंठा की शिकार बनती है। काम की अतृप्ति विस्मायोजित व्यवहार को जन्म देती है। पति से अतृप्त नारियां पति की पौरुषहीनता के कारण अतृप्त रहती हैं। ज़मीन भी जाने कैसे–कैसे भेद छुपाए रहती है। भोग की प्रबल इच्छा और संतति– निरोध के द्वन्द्वने आगामी पीढ़ी का भविष्य भी अनिर्मित कर दिया है। नहीं रहे अब भीगे–भीगे संबंध!

कविताएँ

सुशांत सुप्रिय,
वैभव खंड, इंदिरापुरम्,
गाजियाबाद, मो0–8520700 86

क्या मैं कोई गुनाह करता हूँ

क्या मैं गुनाह करता हूँ
यदि
पत्थरों से माँगता हूँ
चिंगारी भर आग
तितली से माँगता हूँ
चुटकी भर रंग
महबूबा से माँगता हूँ
विश्वास भर प्रेम
शिशुओं से माँगता हूँ
स्मृति भर किलक
पूर्वजों से माँगता हूँ
पृथ्वी की तबाही के लिए क्षमा
क्या मैं कोई गुनाह करता हूँ
यदि
मछलियों से माँगता हूँ
तैरने का राज
कोयल से माँगता हूँ
गीत का अंदाज
साहित्य से माँगता हूँ
जीवन का साज.....।

मैं पहुँचूँ तुम्हारे पास

मैं पहुँचूँ
तुम्हारे पास
बेचैन मनों में चैन–सा
तपती धूप में ठंडी रैन–सा
सूरदास में दृष्टि–भरे नैन–सा
मैं पहुँचूँ
तुम्हारे पास
सूखी धरती पर बारिश के जल–सा
बुझे जीवन में खिले कमल–सा
हार रहे योद्ध में विजय के संबल–सा
मैं पहुँचूँ
तुम्हारे पास
जलते रेगिस्तान में हरे नखलिस्तान–सा
हैवानियत भरी दुनिया में नेक इंसान–सा
नियर–डेथ–एक्सपीरियंस' के मरीज में
फिर से लौट आए प्राण–सा....

किस्मतवाला हूँ मैं कि

किस्मतवाला हूँ मैं कि
अब भी मेरे पास कुछ मित्र बचे हैं
मुझे लगा था कि
अब कोई मेरा मित्र नहीं रहा
किस्मतवाला हूँ मैं कि
पानी अब भी मेरी प्यास बुझाती है
मुझे लगा था कि
अब पानी ने प्यास बुझाना छोड़ दिया
किस्मतवाला हूँ मैं कि
तुम अब भी मुझसे प्यार करती हो
मुझे लगा था कि
अब पानी ने प्यास बुझाना छोड़ दिया
किस्मतवाला हूँ मैं कि
तुम अब भी मुझसे प्यार करती हो
मुझे लगा था कि
अब प्यार धरती से विलुप्त हो चुका है।

कहानी

आखिरी पड़ाव

शंकर लाल माहेश्वरी
पूर्व जिला शिक्षा अधिकारी
भीलवाड़ा,राजस्थान
मो– 9413781610

उस दिन बन्द कमरे में हो रही उनकी बातें अधखुली खिड़की से सुनी, तो मैं दंग रह गया। अन्दर से खाली होता जा रहा था, अज्ञात भय सालने लगा। बेटे अखिलेश की शादी हुए अभी दो ही साल तो बीते हैं। काफी सोच–विचारकर भरे घर की बेटी को बहु बनाकर लाया था। सोचा, थोड़ा आराम मिलेगा। सेवा निवृत्ति के पहले तो काम के बोझ से दबे रहना पड़ता था। पोता हुआ, तो चहल–पहल बढ़ेगी, उसकी मनचाही मुराद पूरी करने का आनन्द अलग ही होगा। लोग बहु–बेटे की सेवाओं की पास पड़ोस में ही क्या, गाँव में भी चर्चा होगी। पोते का सुख तो मूल से भी प्यारा होता है न?घर आँगन की रौनक बढ़ेगी, उसकी किलकारियों से मन मयूर नाच उठेगा। उसे अच्छे संस्कार, उत्तम शिक्षा देकर निहाल हो जाऊँगा। ये सारे अरमान एक ही पल में ध्वस्त हो गये।

बहु सुरेखा अपने पति अखिलेश से कह रही थी–''अब तो इस बूढ़े से पिण्ड छुड़ाकर कहीं बाहर की जिन्दगी जीने की चाह बलवती होती जा रही है। पास के किसी शहर, कस्बे में आपकी नौकरी लग जाये, तो चलकर वहीं अपना बसेरा बना लेंगे। कबतक इस बूढ़े की सेवा में दम घुटाते रहेंगे?बाहर चलने में ही सुख है। यहाँ की दमघोटूँ जिन्दगी से तो बाहर रहकर जीवन– यापन करना ही श्रेयष्कर होगा।'' पति अखिलेश यह सब कुछ सुनकर भी मौन रहा। गजब हो गया, क्या सोचा और क्या हुआ जा रहा है।

पत्नी के मरने के बाद सेवा निवृत्त कमलकान्त भी अकेले हो गये। सेवा समाप्ति पर जो पैसा मिला, उसे पत्नी की बीमारी में लगा दिया। उसे ब्लड केंसर था। दिन बीतते गये, ये बातें मन को झकझोरने लगीं। अखिलेश ने कुछ तो कहा होता, पर नहीं!वह भी तो यही चाहता था। मेरा मन भी अब वृद्धाश्रम को तलाशने लगा। आत्मबल मजबूत बनाकर कि दुनिया में लोग अकेले भी तो जी रहे हैं। केवल दो जून की रोटी का ही तो जुगाड़ बिठाना है। आखिर वह दिन आ ही गया, जिसकी सम्भावना थी। अखिलेश ने दबी जबान से मेरे सामने प्रस्ताव रखा–''पापाजी!हमलोग अब शहर में जाकर बसना चाहते हैं। मुझे एक बैंक में नौकरी का भी आश्वासन मिल गया हैं। कीर्तन को भी किसी अच्छी स्कूल में पढ़ा लूँगा। आप यहीं रहकर खेत–खलिहान व घर की देख–रेख कर ही लेंगे, घर में सारी सुविधाएँ हैं ही। केवल दो समय का खाना ही तो बनाना हैं।'' मेरे मुँह से स्वीकृति सूचक भाव निसृत हो गये और मैं अचानक बुझ–सा गया, जैसे किसी ने मेरा सब कुछ एक ही झटके में छीन लिया हो। वे चले गये।

आज घर सूना है। चूल्हा भी नहीं जलाया। अब कीर्तन का कीर्तन भी सुनायी नहीं पड़ता। घर में अन्धकार रहने लगा। मैं पहले कम और अब अधिक गमगीन हो गया। मेरा संकल्प बल डिगने लगा। मेरा हृदय विदीर्ण हो गया। अब वे कभी भी नहीं आयेंगे। यह सोचकर तड़प उठता, अपने भी कभी पराये हो जाते है। यह तो कभी सोचा भी नहीं था। अब बन्द कमरे में दीवारों से ही बातें करता रहता।

बस, मैं जी ही रहा था। प्रातः उठता, झाड़ू–बुहारू करता, सफाई, पोंछा लगाता, पड़ोसी से पानी की झुगाड़ बिठाता, पेट की आग को बुझाने के लिए खाना बनाने की सोचता, भले ही खाना दोनों समय नहीं बने, एक ही समय बनाकर दोनों समय पेट की आग बुझानी होगी। आज का खाना नहीं बना सका। दूसरे दिन भगवान भास्कर ने दस्तक दी। दिनकर की लालिमा खिड़कियों से झाँकने लगी, मानो वे मेरा साथ निभाने आयी हो और विचार आया, ''इस तरह जीना भी कोई जीना है?''

आज पहली बार अपने बूढ़े हाथों से खाना बनाने का साहस जुटाया था। कच्चा–पक्का जैसा भी बना, उसे खाली पेट में उड़ेलकर भरे पेट का अहसास करने लगा। कभी शाम का खाना न भी बने तो क्या आदमी मरता थोड़े ही हैं?अगले दिन पड़ोसी के नल वाले गड्ढे से पानी से भरी बाल्टी लेकर सीढ़ियाँ चढ़ रहा था, तो साँस फूल गयी, चक्कर आ गया, हाथों का दर्द बढ़ गया। जैसे–तैसे नहा–धोकर ईश वन्दना की और प्रभु से प्रार्थना की कि हे आराध्यदेव!किसी को भी वृद्धावस्था में ये दिन न दिखाना।

जली भुनी रोटियाँ, कच्ची–कसैली सब्जी, नमक का कम ज्यादा हो जाना, दूध का उफन कर बाहर आ धमकना, गैस के चूल्हे का खुला रह जाना और कभी गैस का लगातार धधकते रहना, ये सब मेरी परेशानी के कारण थे। एक दिन झाड़ू–बुहारू कर लेने के बाद भरे पानी का मटका उठाये पीड़ित अवस्था में ऊपर की सीढ़ी तक पहुँच तो गया, किन्तु वहीं से ऐसा लुढ़का कि सीधा अन्तिम सीढ़ी पर जा पँहुचा। हाथ–पैरों में चोट लगी, दाँये हाथ की कुहनी की हड्डी टूट गयी, बेहोशी आ गयी। होश आया तो देखा, पड़ोसी रामनाथ और उसके तीनों बेटे मुझे चारपाई पर लिटाकर कम्बल ओढाये,चारों कन्धा लगाये अस्पताल की राह पर चल रहे थे। चौकिये नहीं, यह कोई अर्थी नहीं, जिन्दा लाश है! अस्पताल में उपचार हुआ। चार दिनों तक वहीं के मुफ्त में मिले दाल–दलिए से गुजारा किया। लोगों ने इस घटना की सूचना अखिलेश तक पहुँचाने का प्रयास किया तो मालूम हुआ, वह सपत्नीक हरिद्वार तीर्थयात्रा पर गये हैं। चारों धाम की यात्रा करके ही लौटेंगे। वे तीर्थयात्रा करते रहे, मैं अस्पताल में सिसकता रहा।

अब कीर्तन तीन साल का हो गया। उस समय तो वह दूधमुँहा बच्चा ही तो था। पूरे बीस दिन बाद अखिलेश कीर्तन को भी लेकर आया। अखिलेश ने औपचारिक कुशलता पूछी। जाने की जल्दी थी। कीर्तन को मेरा प्रत्यास्मरण कराया, वह तो भूल ही गया था। जाते समय मैंने कीर्तन को सीने से लगा लिया। छलकते आँसूओं को पौंछते हुए आशीर्वाद दिया–''बेटा! सदा सुखी रहो।'' अखिलेश को नौकरी करते तीन वर्ष बीत गये। अच्छी पहचान बना ली। अधिकारियों का विश्वास जीत लिया। लोग उसे भरोसे का आदमी समझने लगे, कभी–कभी अधिक विश्वास जमा कर आसानी से धोखा देने में लोग चतुर हो जाते हैं, ऐसा ही हुआ। अब अखिलेश किसी गबन के मामले में फँस गया। जाँच में दोषी पाये जाने पर उसे नौकरी से हाथ धोना पड़ा। नौकरी भी विश्वास बनाये रखने पर ही रहती है। विश्वास जीतने के साथ ही जी तोड़ मेहनत भी करनी पड़ती हैं। लोग भ्रष्टाचार को ही शिष्टाचार बना लेते हैं, तो परिणाम दुखद ही होता हैं।

महीने गुजर गये। अखिलेश को दूसरी नौकरी नहीं मिली। अन्य कार्य व्यवसाय के लिए पैसा था नहीं। बचत करना तो उसने कभी सीखा ही नहीं। तीन प्राणियों का गुजारा भी नहीं कर पाया। हाथ–पैर मारकर अन्त में मेरे पास आया। उसकी रामकथा सुनकर मैं द्रवित हो गया। बैंक में मेरे पास केवल बीस हजार ही जमा थे। सारा पैसा तो पत्नी की बीमारी में ही लग गया। मैंने बैंक की राशि के साथ ही अपनी जमीन गिरवी रखकर कुल एक लाख रुपये की व्यवस्था बना कर दी। इससे मोटर पार्ट्स की दुकान अच्छी चल निकली। आमदनी ठीक थी। व्यवसाय बढ़ाकर अपना निजी मकान भी उसी शहर में बना लिया। अब चौपहिया वाहन की सुविधा भी हो गयी। कीर्तन अंग्रेजी माध्यम की स्कूल में पढ़ रहा था। उसे स्कूल लाने–लेजाने के लिए कार की सुविधा थी।

मैं भी थक–हार गया। सहारा किसी का था नहीं। कमर झुक गयी,

आँखें जवाब दे गयीं, कम सुनायी देने लगा, आये दिन हारी बीमारी से ग्रसित रहता, यह तो भला हो पड़ोसी रामनाथ का, जो दुख–दर्द में मेरी सहायता करता रहता। अब जीने की चाह भी जाती रही। क्यों नहीं, अपने बेटे अखिलेश के शहरवाले वृद्धाश्रम में ही शरण ली जाये। यह सोच ही रहा था कि मेरा लंगोटिया दोस्त रामावतार वर्षों बाद घर आया। रेलवे में अच्छी नौकरी थी। सेवा निवृत्ति के बाद पहली बार देखा उसे। उससे मिलते ही बचपन की स्मृतियाँ हृदय पटल पर लौटने लगीं। मुझे अब भी याद हैं जब अखिलेश घुटनों के बल चलता था, मैं उसका घोड़ा बनकर उसे पीठ पर सवारी कराता और खुले दालान में घुमाता, कभी कन्धों पर बिठाकर झूलाता। तब रामावतार कहता ''कभी कन्धे से सिर पर मत बिठा लेना, अन्यथा ये भी बुढ़ापे में सिर पर बैठेगा''। बुढ़ापे में सब दूरियाँ बना लेते हैं, कोई बिरला ही बुढ़ापे की लकड़ी पकड़ पाते हैं। बाकी सब तो हम दो हमारे दो की मानसिकता से अकेला छोड़ जाते हैं ''क्यों ?ठीक हैं कि नहीं?''यदि विश्वास नहीं हो तो चलो मेरे साथ शिवाजी पार्क में, वहाँ तुम देखोगे कि बूढ़ा अकेला अपने आपसे बतियाते हुए चक्कर काट रहा होगा। अथवा बूढ़ा बूढ़े से आपबीती सुना रहा होगा। रामावतार से रहा नहीं गया और कमलकान्त को हाथ पकड़कर ले गया शिवाजी पार्क में। वहाँ उसने बताया–देखो, ये काली टोपीवाले लालाजी, जो खम्भे के पास खड़े हैं न?शहर के जाने–माने रईस थे। इनका व्यापार में सब कुछ चला गया, खाली हो गये तो सभी दूर होते गये और इन्हें अपने हाल पर छोड़ दिया। बेचारे पुराने दिन याद कर दुखी होते रहते हैं। अब ये समाज के कार्य–कलापों में सहयोग कर अपना गम भुला रहे हैं। उधर जो पुराना काला कोट पहने साहब दीख रहे हैं, ये इस शहर के जाने–माने वकील हैं। दूसरों को न्याय दिलानेवाले स्वयं अन्याय के शिकार है। अपने परिजनों के अब जरूरतमन्द लोगों को मुफ्त सलाह देने में व्यस्त रहते हैं। उधर सूनी बेंच पर जो महाशय बैठे हैं, लम्बे समय से सरकारी स्कूलों में ज्ञान–गंगा बहाते, ये मास्टरजी चार बेटों के बाप हैं। सब अलग रहने लग गये तो इन्हें किश्तों में रहना पड़ रहा है, अपने ही बेटों की शरण में। इनकी जिन्दगी ठहर–सी गयी है। अब ये एक स्कूल चला रहे हैं, जहाँ गरीब बच्चों को मुफ्त शिक्षा दे रहे हैं।

मेरे दोस्त! मुश्किलें हारती हैं, यदि संकल्पों में शक्ति हो। धैर्य रखो, सन्तुलन बनाकर जीना सीखो; जो गये, उनकी याद में आँसू मत बहाओ। वर्तमान में जीना सीखो, आराम मिलेगा। तनाव और कुण्ठाओं से मुक्त रहकर लगे रहो किसी भी सेवा कार्य में तो मुश्किल समय भी आसान हो जायेगा। अपेक्षाओं को तिलांजलि दे दो। छोड़ो कल की बातें और जीना हैं तो अपने बलबूते पर जियो। अन्तिम समय में सुखी जीवन जीने की यही एकमात्र रामबाण दवा है कमल!

रामावतार चला गया। उसकी बातें बार–बार सीने पर चोट करने लगीं, मन में उचाट हो गयी तो कमल ने सोच लिया। जब शरीर ही साथ छोड़ने को मजबूर हो जाता है, तो फिर वृद्धाश्रम ही तो एकमात्र सहारा है थके–हारे आदमी का। यही सोचकर कमलकान्त वृद्धाश्रम की ओर चल पडा...।

आज वृद्धाश्रम के बाहर की चबूतरा पर बैठा, कातर दृष्टि से दुनियावालों को देख ही रहा था, तभी एक सफेद कार वृद्धाश्रम की ओर मुड़ी तो देखा अखिलेश कीर्तन को साथ लेकर आया हैं। खड़े खड़े ही बातें होती रहीं। कीर्तन अब बड़ा हो गया था। उसने पूछा–''दादाजी! क्या बूढ़ा हो जाने पर हर आदमी को यहाँ आना पड़ता है?कीर्तन की यह बात सुनकर अखिलेश मेरी नजर से नजर नहीं मिला सका, वह चला गया और मेरे नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। तभी मेरे वृद्धाश्रम के अस्सी वर्षीय सहवासी वृद्ध ने आँसू पोंछते हुए कहा–''हारिये न हिम्मत, बिसारिये न हरि नाम। जाही विधि राखे राम, ताही विधि रहिए।'' और उस बूढ़ी आत्मा से नहीं रहा गया, उसने कहा–मेरे दोस्त! ढलती साँझ में व्यक्ति नैराश्य नद में गोते लगाता है, अज्ञात असुरक्षाएँ सालती रहती हैं, कुंठा और तनाव की अवस्थाओं में जीना पडता है, भावी जीवन की दुश्चिन्ताएँ सालती हैं, परिजनों की नजदीकियाँ दूरियाँ बना लेती हैं। अपनों के अपनेपन के अभाव में आदमी बोझिल हो जाता है। अधूरापन, बिखराव, उत्पीड़न की खीझ से टूटने लगता है। चिन्तन कम और चिन्ताएँ अधिक घेरती हैं। आवाज की बुलन्दी को ग्रहण लग जाता है। भूत–भविष्य की विचारणाएँ अकेलेपन को बोझिल बना देती हैं। संवेदनाएँ दबी कुचली लगती हैं। अपेक्षाएँ आहत हो जाती हैं। उपेक्षाओं का अन्त हीन दबाव आलोड़ित करता है। भावनात्मक टूटन सिसकने लगती है।

कमलजी! आँसू कभी मत निकालना, धैर्य और साहस जीवन–नौका के वे पतवार हैं, जो उसे मंजिल तक ले जाते हैं। जब परिस्थितियाँ विपरीत हों तो सब कुछ ईश्वर पर छोड़ देना चाहिए। कठिनाई और विरोध की मिट्टी में ही तो धैर्य और आत्मविश्वास का विकास होता है। अतीत से सीखो, वर्तमान का सदुपयोग करो, भविष्य के प्रति आशावान रहो। बस!यही आधारस्तम्भ हैं अन्तिम पड़ाव के लिए।

आसमान के पश्चिमी छोर पर सूर्य डूबने लगा था। अँधेरा हो गया। आश्रम के मन्दिर की घंटियाँ बजने लगीं। आरती प्रारम्भ हो गयी। मैने देव दर्शन किए और आहत अरमानों को दबाए अपने शयन कक्ष की ओर चला आया।

लघुकथा

वाह री दुनिया

डॉ. नीना छिब्बर
चौपासिनी हाउसिंग बोड
जोधपुर

रधिया पुराने कपड़े लेकर नये बर्तन देने का काम करती थी। सारा दिन हाथ में कपड़ों की गठरी व सिर पर बर्तनों की टोकरी लिए कॉलोनी दर कॉलोनी घूमती थी। रधिया का व्यवहार अच्छा था, इसलिए ग्राहक बँधे–बँधाये थे। कुछ तो उसके बच्चों के लिए अलग से कपड़े देते थे। इस तरफ तो सब बेहतर था, पर दूसरी ओर सब धूसर। पति निकम्मा, मोहल्ला झगड़ालू, रिश्तेदार खून चूसनेवाले, सबसे अधिक बेटा राज, जिसे वह खूब पढ़ाना चाहती थी, पर पाँचवीं कक्षा के बाद घर बैठ गया। सारा दिन अभिनेताओं की तस्वीर देखता और काल्पनिक संसार में खोया रहता। अपने आपको राजकपूर, कुमार, खान, सिंह समयानुसार मानता।

अक्सर माँ को चिढ़ाता क्या पुराने चिथड़े लाती है। पर आज चमत्कार हो गया। रधिया के घर पहुँचते ही बोला–ला दिखा, कोई जिन्स है मेरे नाप की। माँ ने कहा–शान्ति रख, साँस खाने दे, फिर कुछ अच्छी पैंटे निकाल कर दीं। पर आज राज सलमान खान वाले मूढ में था। अल्टीमेटम वाले इस्टाइल में बोला–मैं खुद ढूँढ़ लूँगा, समझी क्या माँ....! दूसरी गठरी खोलने लगा, माँ ने लपड़ लगाया, दिमाग ना खा इसमें फटी जिन्स है। वही तो घुटनों से फटी, पौंहचे से फटी पैंट निकालकर अंदर जाकर फूलोंवाली टीशर्ट के साथ पहनकर मुस्कुराता बाहर आया।

माँ ने माथा पीट लिया। करम जले आ गया औकात पर। राज खान/सिंह ने रंगीन अखबार दिखाई अधिकतर अभिनेताओं व अभिनेत्रियों ने उतनी ही फटी जिन्स पहनी थी। रधिया की चीख और राज के अट्टहास से बहुत कुछ कहा। रधिया की एक आँख में हँसी व दूसरी में दुःख के आँसू अटक गये।

आलेख

अंग्रेजी मानसिकता से मुक्त हों

डॉ. आचार्य बलवन्त
बंगलोर
7337810240

मनुष्य अपने विचारों की अभिव्यक्ति किसी न किसी भाषा के माध्यम से ही करता है। भाषा के अभाव में किसी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय प्रगति की कल्पना नहीं की जा सकती। साहित्य, संगीत, कला, विज्ञान और इतिहास का आधार भाषा ही है। भाषा केवल विचारों के आदान–प्रदान का माध्यम ही नहीं, वह नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की संवाहिका भी होती है। प्रत्येक भाषा की अपनी प्रकृति होती है। उसके बाद परिवेश की आशाओं, आकांक्षाओं एवं आवश्यकताओं से संपृक्त होते हैं। भाषा की प्रकृति को पहचानकर ही उसके प्रवाह को अक्षुण्ण रखा जा सकता है।

मैकाले भाषा की प्रकृति एवं व्यक्तित्व निर्माण में उसकी भूमिका को भलीभाँति समझता था। इस तथ्य की पुष्टि 2 फरवरी सन् 1835 को ब्रिटिश संसद में दिए गए उसके व्याख्यान से हो जाती है, जिसमें उसने कहा था–''मैंने भारत के ओर–छोर का भ्रमण किया है और मैंने एक भी आदमी नहीं पाया, जो चोर हो। इस देश में मैंने ऐसी समृद्धि, ऐसे सक्षम व्यक्ति तथा ऐसी प्रतिभा देखी है कि मैं नहीं समझता कि इस देश को विजित कर लेंगे, जबतक कि हम इसके सांस्कृतिक एवं नैतिक मेरुदंड को तोड़ न दें। इसलिए मैं वह प्रस्तावित करता हूँ कि हम भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति एवं संस्कृति को बदल दें। क्योंकि यदि भारतवासी यह सोचने लगें कि जो विदेशी और अंग्रेजों में है, वह उनके आचार–विचार से अच्छा एवं बेहतर है, तो वे अपना आत्मसम्मान एवं संस्कृति खो देंगे तथा वे एक पराधीन कौम बन जायेंगे, जो हमारी चाहते है।'' मैकाले की शिक्षानीति भारतीयों को उनकी भाष से पृथक् कर वैचारिक रूप से उन्हें पंगु बनाने की थी, उनके आत्मविश्वास को कमजोर करना था, जिसे हम नहीं समझ सके।

देश के गणतंत्र बनने के बाद भाषा की अहमियत हमें समझाने की कोशिश सोवियत रूस ने भी की थी। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को दृढ़ करने के उद्देश्य से एक भारतीय राजनयिक को सोवियत रूस में भारत का राजदूत बनाकर भेजा गया, जहाँ उसने अपना कार्यभार ग्रहण पत्र अंग्रेजी में सौंपा। भारतीय भाषा में न होने के कारण वहाँ की सरकार ने उस पत्र को स्वीकार करने से मना कर दिया और याद दिलाया कि अंग्रेजी गुलाम भारत की भाषा थी, अंग्रेजी में पत्र प्रस्तुत करना उसी गुलामी का प्रतीक है। फिर किसी गुलाम देश के साथ अंतर्राष्ट्रीय संबंध स्थापित करने का कोई औचित्य ही नहीं बनता। भाषा के सवाल पर सोवियत रूस की यह फटकार भाषा के प्रति हमारी उदासीनता पर करारा प्रहार है।

भाषा के प्रति उसके निवासियों के गहरे लगाव को फ्रांस की एक घटना के माध्यम से भी समझा जा सकता है–प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान फ्रांस का कुछ भूभाग जर्मनी के अधीन हो गया था। जर्मनी की महारानी उस क्षेत्र के बीच एक स्कूल का दौरा करने गयीं। उन्होंने विद्यार्थियों से जर्मनी का राष्ट्रगान सुनाने को कहा। केवल एक बच्ची ही राष्ट्रगान सुना सकी। यह देखकर महारानी प्रसन्न हो गयीं और उस बच्ची से कुछ माँगने के लिए बोलीं। बच्ची के मुँह से अचानक ही ये शब्द निकल पड़े–''हमारी शिक्षा का माध्यम हमारी भाषा फ्रेंच बना दीजिए।'' इसे कहते हैं अपनी भाषा के प्रति अनुराग।

भाषा की अस्मिता का प्रश्न आज भी अनुत्तरित है। अंग्रेजी शिक्षानीति के चलते न केवल हिंदी, अपितु अन्य सभी भारतीय भाषाएँ हाशिए पर आ गई हैं। इन दिनों भारतीय जीवन में व्याप्त पाश्चात्य प्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, जो अंग्रेजी की देन है। खान–पान, रहन–सहन, पठन–पाठन एवं विचार–विमर्श ही नहीं, आज संबोधन एवं अभिवादन की भाषा भी अंग्रेजी हो गई है। बाजारवादी शक्तियाँ विज्ञापन के माध्यम से हमारे संस्कार को बिगाड़ने पर तुली हैं। किसी समाज के संस्कार को बिगाड़ने के तमाम कारणों में व्यक्ति की बोलचाल–व्यवहार की भाषा को बिगाड़ देना भी मुख्य है। आजकल के विद्यार्थियों के मन में अपनी भाषा के प्रति जो अनुराग होना चाहिए, उसका अभाव है। प्रायः देखने में यही आता है कि अध्यापक और अभिभावक भी हिंदी भाषा पर ध्यान कम ही देते हैं। आज के युवा कैरियर बिल्डिंग के नाम पर अपनी भाषा से विमुख होकर संस्कृति और सभ्यता से दूर होते जा रहे हैं।

हिंदी के प्रति नवयुवकों के मन में जो उदासीनता है, उसका एक कारण हिन्दी को रोजगार की भाषा न बनाया जाना भी है। हिन्दी को रोजगार से जोड़े बिना वर्तमान युवा पीढ़ी के मन में हिन्दी के प्रति वह भाव नहीं जाग्रत किया जा सकता, जिसकी हम आशा करते हैं।

भाषा के प्रश्न को गंभीरता से लेते हुए उच्चतम न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश एम.एन. वेंकटचलैया और न्यायमूर्ति एस.मोहन की खंडपीठ ने यह निर्णय दिया कि प्रारंभिक स्तर पर बच्चों को शिक्षा केवल मातृभाषा में ही दी जानी चाहिए। इसलिए कि मातृभाषा में शिक्षा के लिए पर्याप्त सुविधाएँ जुटाने का उत्तरदायित्व राज्यों तथा स्थानीय निकायों का है। कर्नाटक सरकार ने उच्चतम न्यायालय के आदेश को अस्वीकार कर एक साहसिक व सराहनीय कार्य किया, हालाँकि इसके क्रियान्वयन का अंग्रेजी मनासिकता के अभिभावकों ने जोरदार विरोध किया था, पर सरकार की दृढ़ इच्छा शक्ति के सामने उनकी चल न सकी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत यह महसूस किया गया था कि एक संविधान, एक राष्ट्रध्वज एवं एक राष्ट्रगान की ही भाँति देश की एक राष्ट्रभाषा का होना भी आवश्यक है; क्योंकि राष्ट्रभाषा के अभाव में राष्ट्र गूँगा होता है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा का स्थान दिलाने के लिए जिन राष्ट्रीय नेताओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, उनमें महात्मा गाँधी प्रमुख हैं। हिन्दी को संपूर्ण भारत की व्यावहारिक भाषा बनाने के अभियान में गाँधीजी का योगदान अद्वितीय है। राष्ट्रीय एकता के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रभाषा के प्रति अपने निश्चय को उन्होंने उन शब्दों में प्रकट किया–''मैं हमेशा यह मानता रहा हूँ कि हम किसी भी हालत में प्रांतीय भाषाओं को नुकसान पहुँचाना या मिटाना नहीं चाहते। हमारा मतलब सिर्फ यह है कि विभिन्न प्रांतों के पारस्परिक संबंधों के लिए हम हिन्दी सीखें। ऐसा करने से हिन्दी के प्रति हमारा कोई पक्षपात प्रकट नहीं होता। हिन्दी को हम राष्ट्रभाषा मानते हैं। वह राष्ट्रीय होने लायक है। वही भाषा राष्ट्रीय बन सकती है, जिसे अधिक संख्या में लोग जानते–बोलते हों और जो सीखने में सुगम हो।'' सन् 1910 में गाँधीजी ने कहा था–''हिन्दुस्तान को अगर सचमुच राष्ट्र बनाना है तो राष्ट्रभाषा हिन्दी ही हो सकती है।''

सन् 1916 में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में गाँधीजी ने हिन्दी में भाषण देते हुए घोषणा कर दी थी–''हिन्दी का प्रश्न मेरे लिए स्वराज्य के प्रश्न से कम महत्वपूर्ण नहीं है।'' एक भाषा– एक लिपि विषयक इसी अधिवेशन में सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पारित हुआ था कि हिन्दी भाषा और देवनागरी का प्रचार–प्रसार देश हित एवं राष्ट्रीय एकता की स्थापना हेतु होना चाहिए। इस प्रस्ताव का समर्थन तमिल भाषा के मूर्धन्य साहित्यकार रामास्वामी अय्यर ने किया था। राष्ट्रीय एकता एवं सांस्कृतिक समरसता को बनाए रखने में राष्ट्रभाषा की महत्ता को गाँधीजी ने अच्छी तरह से निरूपित किया है–''हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित करने में एक दिन भी खोना देश को भारी सांस्कृतिक नुकसान पहुँचाना हैं जिस प्रकार हमारी आजादी को जबरदस्ती छीननेवाले अंग्रेजों की सियासी हुकूमत को हमने सफलतापूर्वक इस देश से निकाल दिया,

उसी तरह हमारी संस्कृति को दबानेवाली अंग्रेजी भाषा को भी यहाँ से निकाल कर बाहर करना चाहिए। देवनागरी के समान सरल, जल्दी सीखनेयोग्य और तैयार लिपि दूसरी कोई नहीं ही है। उर्दू और रोमन में भी वैसी संपूर्णता और ध्वन्यात्मकता नहीं है, जैसी देवनागरी लिपि में।''

राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन राष्ट्रभाषा को राष्ट्रीयता का स्रोत मानते थे। उनका कहना था–''कोई विदेशी भाषा हमारे देश की रक्षा नहीं कर सकती। राष्ट्र के विकास के लिए स्वभाषा अनिवार्य है।'' उनके स्वभाषा का आशय हिन्दी से ही था। टंडनजी न केवल हिन्दी, अपितु अन्य सभी भारतीय भाषाओं के व्यावहारिक बनाए जाने के प्रबल पक्षधर थे। भाषा के साथ–साथ उनके सांस्कृतिक विकास पर भी उनका बल था। क्योंकि भाषा की संस्कृति ही उसे अपनी परंपराओं पर गर्व करना सिखाती है। भाषा का उनकी संस्कृति से गहरा संबंध है, संस्कृति शरीर है तो भाषा उनका प्राणतत्व।

इस बात को पुनः दोहराना चाहूँगा कि राष्ट्रीय एकता के लिए राष्ट्रभाषा की आवश्यकता का अनुभव स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही किया जाने लगा था। कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के प्रयासों से ही सितम्बर 1949 में संविधान सभा में राजभाषा के विषय पर विचार–विमर्श हुआ। 12, 13 एवं 14 सितम्बर, 1949 में संपन्न इस तीन दिवसीय सम्मेलन में उपस्थित 71 सदस्यों ने हिन्दी को राजभाषा बनाए जाने के प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया एवं शासकीय प्रयोग हेतु भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप को अपनाने की बात तय हो गयी। हिन्दी को राजभाषा बनाने का प्रस्ताव श्रीगोपाल स्वामी आयंगर ने रखा और उसका समर्थन श्री शंकर राव ने किया, जो अहिंदी भाषी थे।

26 जनवरी, 1950 को भारत का संविधान लागू हुआ। संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार संविधान लागू होने के दिन से 15 वर्षों तक हिन्दी के साथ अंग्रेजी को भी संघ की सह राजभाषा के रूप में जारी रखने और उसके बाद हिन्दी को पूरी तरह से राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की योजना थी, पर ऐसा हो नहीं सका। नेताओं की व्यक्तिगत स्वार्थपरता के चलते भाषा–प्रेमियों की हिन्दी को राष्ट्रभाषा के आसन पर बिठाने की चाहत भेदभाव की भेंट चढ़ गयी। मतों के गुणा–गणित के आधार पर अपनी महत्वाकांक्षाओं को साधने के लिए देश के तथाकथित कर्णधारों ने जातिवाद, धर्मवाद, संप्रदायवाद एवं क्षेत्रवाद की भाँति भाषा को भी वाद–विवाद का विषय बना दिया, जिसमें उलझकर हिन्दी को उसका गौरव दिलाने का चिर प्रतीक्षित स्वप्न, स्वप्न बनकर ही रह गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के उनहत्तर वर्ष बाद भी देश को एक राष्ट्रभाषा का न होना देश की अस्मिता एवं उसके आत्मगौरव के साथ खिलवाड़ नहीं तो और क्या है?

वह भाषा जो वन्देमातरम् एवं भारतमाता की जय के उद्घोष की उत्प्रेरिका रही हो, जिस भाषा ने भारतवासियों की सुप्त चेतना को झंकृत कर उनकी विलक्षणता का उन्हें बोध कराया हो, वह भाषा जो स्वतंत्रता सेनानियों के अधरों का क्रांति–गीत बनकर व्यवस्था के आमूलचूल परिवर्तन का आह्वान करती रही हो, वह भाषा जो देश के विभिन्न भाषा–भाषियों के बीच समन्वयात्मक समझ विकसित कर उन्हें वापस में जोड़कर रखने में समर्थ हो। जो भाषा देशवासियों के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का मूलाधार हो, जो भारत में ही नहीं, बल्कि विश्व के अनेक देशों में लिखी–पढ़ी, समझी एवं सराही जा रही हो, जो निकट भविष्य में विश्व की संपर्क भाषा बनने की ओर अग्रसर हो, उस हिन्दी का अपनी ही भूमि पर अंग्रेजी के अनुवाद की भाषा बनकर निर्वासन की जिंदगी जीना दुखद ही नहीं, चिंताजनक भी है। राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद का उद्गार दर्शनीय है–''राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र का बोध हो ही नहीं सकता। जहाँ राष्ट्र है, वहाँ राष्ट्रभाषा का होना लाजमी है। अगर संपूर्ण भारत को एक राष्ट्र बनाना है तो उसे एक भाषा का आधार लेना पड़ेगा।''

अंग्रेजों ने भारत को कई स्तरों पर कमजोर करने की साजिश रची थी। हिन्दी और उर्दू के सवाल को हवा देकर सांप्रदायिक वातावरण को बिगाड़ने की उनकी कूटनीतिक चाल सफल भी हुई। सन् 1948–49 में भारत की 14 भाषाओं में 'हिन्दुस्तानी' का प्रवेश उनकी कुटिल मंशा का ही प्रतिफल था। वह हिन्दुस्तानी समझौते की भाषा बनकर रह गई, जो बोलचाल के लिए उपयुक्त तो थी, पर उसमें साहित्यिक सामर्थ्य का अभाव था।

भारतीय संविधान लागू होने पर हिन्दी को राजभाषा के रूप में मात्र घोषित कर 15 वर्षों की अवधि तक अंग्रेजी को राजभाषा का मान देते रहना और आशा रखना कि एक न एक दिन हिन्दी राजभाषा का गौरव प्राप्त कर लेगी, कितना हास्यास्पद है। केन्द्रीय गृहमंत्रालय द्वारा बनाए गए राजभाषा अधिनियम की धारा 3/1 के अंतर्गत शासकीय प्रयोजनों में हिन्दी के साथ–साथ अंग्रेजों की सहभाषा के रूप में आगे भी जारी रखने का निर्णय लिया गया, फिर राजभाषा अधिनियम की धारा 3/2 के अंतर्गत यह व्यवस्था दे दी गई कि जबतक भारत के एक भी राज्य की सरकार हिन्दी को अपने राज्य की राजभाषा के रूप में स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होगी, तबतक हिन्दी संघ की राजभाषा के रूप में क्रियान्वित नहीं हो सकती। राजभाषा अधिनियम के इस सशर्त समझौते ने हिन्दी को संघ की सशक्त राजभाषा बनने के सारे रास्ते ही अवरुद्ध कर दिये। इसलिए कि दक्षिण भारत का एक राज्य तमिलनाडु हिन्दी का प्रबल विरोधी है ही और पूर्वोत्तर स्थित नागालैंड अंग्रेजी को ही अपनी राजभाषा के रूप में अपना चुका है।

मैकाले द्वारा अपने होम सेक्रटरी के लिखे गये पत्र की कुछ पंक्तियों को यहाँ उद्धृत करना प्रासंगिक होगा, जिसमें उसने कहा था–''मैं नहीं कह सकता कि भारत राजनीतिक रूप से आपके अधीन रह पायेगा, लेकिन इतना मैं अवश्य करके जा रहा हूँ कि यह देश राजनीतिक स्वतंत्रता पा लेने के बाद भी अंग्रेजी मानसिकता, अंग्रेजी सभ्यता और अंग्रेजी भाषा के प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाएगा।'' उसका कथन अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ। आजादी के इतने वर्षों बाद भी हम अंग्रेजी मानसिकता से मुक्त नहीं हो सके।

दुर्भाग्य की बात है कि हिन्दी को राजभाषा बनाए जाने के प्रश्न पर देश की अन्य प्रान्तीय भाषाओं को इसके समानान्तर खड़ा करने की धृष्टता बार–बार की जाती रही है। बार–बार यह झूठी दलील दी जाती रही है कि हिन्दी के राजभाषा बनने से देश की अन्य भाषाओं की अस्मिता खतरे में पड़ जाएगी, जबकि अस्मिता के संकट का खतरा देश की अन्य प्रांतीय भाषाओं को हिन्दी से नहीं, बल्कि हिन्दी और अन्य प्रांतीय भाषाओं व उनकी बोलियों को अंग्रेजी से है।

हिन्दी राष्ट्रीय स्वाभिमान की भाषा है। समय की माँग है कि हम अंग्रेजी की मानसिकता का परित्याग कर भारतीयता के आदर्शों को अपनाएँ तथा हिन्दी को भारतीय संस्कृति के विकास का संसाधन बनाएँ। भारत को उसका खोया हुआ गौरव तभी प्राप्त हो सकेगा, जब यहाँ का हर पढ़ा–लिखा व्यक्ति अपने कार्य, चिंतन–मनन व आपसी संवाद अपने ही देश की भाषा हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं में करे। अपना हस्ताक्षर तो वह अपनी भाषा में ही करे एवं हिन्दी को अपनी पहचान की भाषा बनाए। हिन्दी के प्रति हीन भावना से मुक्ति का मार्ग हिन्दी से निकलेगा। हिन्दी हमारे राष्ट्र के सर्वांगीण विकास के लिए वरदान सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। हिन्दी के माहात्म्य से संबंधित कवितओं की कुछ पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत हैं–

जन सामान्य की भाषा हिन्दी
जन–मन की जिज्ञासा हिन्दी
जन–जीवन में रची बसी
बन जीवन की अभिलाषा हिन्दी
सेवा भाव सिखाती हिन्दी
सबके मन को भाती हिन्दी
सबके दिल की बातें करती
सबका दिल बहलाती हिन्दी
स्नेह, शील, सद्भाव, समन्वय
संयम की परिभाषा हिन्दी। जय हिन्दी!

कहानी :

सत्तर साल पहले

डॉ.गिरिजाशंकर मोदी,
सिकन्दरपुर, मिरजानहाट,
भागलपुर, मो0–9934095639

संदीप, मेरा लंगोटिया दोस्त, वर्षों बाद मुझसे मिलने आया, देखते ही आँखें चमकीं कि संदीप ही है।उस ओर बढ़ा और आलिंगन में कस लिया–हरसिंगार की सारी डालियों के फूल एक साथ झड़ पड़े। गलबाँही में दोनों मित्र साथ–साथ बरामदे में बैठ गये; फिर संवाद का उतावलापना और हेमखेम, बीच–बीच में शून्य गहराता रहा। संदीप पर आँखें टिकीं तो देखा, उसकी आँखों में गहराये दर्द के साथ उसका मुरझाया चेहरा। अरे, यह क्या संदीप! क्या तुम किसी परेशानी में हो?ना दोस्त ना–हाँ, आदमी की नियति का दर्द गहरे समा गया है।–क्या बुझौवल बुझा रहे हो, बातें खोलो, तुम्हारे परदे में रहने की आदत अभी तक नहीं गयी है।

फिर संदीप आँखों में आसमान के सारे शून्य समेटे अपने होंठों और आँखों से जो कहा, वह मुझे विचलित कर दिया। उसने कहा–अभी मैं अपनी अनेक पुरानी सँजोयी बातों को ढोये, लगभग बीस वर्षों के अंतराल के बाद, अपने पुस्तैनी घर के दायें बाजू के पड़ोसी नुनू बाबू के घर का हालचाल जानने गया था। अनेक रुकी जिज्ञासाएँ बाँध तोड़े उछलें मार रहीं थीं। पुरानी बातें स्मृतिपटल पर लिखी जा रही थी।–पर यह क्या?घर के सामने पहुँचते ही सन्न हो अवाक् रह गया, धरती पैरों तले से सरकने लगी– नूनू बाबू की जमींदारी हवेली का भग्नावशेष, उसपर उग आये पीपल, पाकड़ व नीम के पेड़, झाड़ियों के जंगल, सब कुछ भयावह और सूना–सूना।–एक विशालकाय लहलहाता बरगद अपने स्तंभ मूलों के साथ हठात् सूख गया था।उनकी सूखी डालियों से सारे घोंसले तिनकों में बिखर उड़–फुड़ गये थे, अब कोई चिड़िया उस डाली पर चहकने को न थी। सूखी पछिया हवा निस्संकोच बिना रुके गुजर रही थी। –मैं इस भग्नावशेष को, हताशा में, डूबता–उतराता निर्निमेष देखते हुए भी न देख पा रहा था, सब कुछ भावातिरेक में ओझल हो जाता था और दिखने लगता था, पुरानी जमींदारी ठाठवाली हवेली। –मैं हवेली के सामने निःशब्द सूखा–सूखा खड़ा था ही कि मेरे बायें बाजू के पड़ोसी धन्नू चाचा ने पहचाना और अपने दरवाजे ला, जो बातें आहों में भर कही, उसने मुझे भीतर तक झकझोर दिया। उन्होंने कहा–क्या बताऊँ, एक दिन गयी रात, नुनू बाबू का मुँहलगा नौकर लछमनिया उनकी नौकरानी तिरपतिया को लेकर भाग गया। नतीजा यह हुआ कि दोनों बूढ़ा–बूढ़ी बेसहारा हो चिंता में अपने सूने जीवन को भोगता बीमार रहने लगा। कोई देखने–सुननेवाला नहीं रहा। संबंध के अपने भी कुछ लोग थे उनके, पर कोई भी खोज–खबर लेने न आता था। नौकर–नौकरानी के भागे साल भर भी न बीत पाये थे कि एक दिन दोनों साथ–साथ मृत पाये गये।रामनाम सत्य हो गया।क्या बताऊँ, दोनों बीमार थे, तो कोई संबंधी कभी देखने तक न आये, मरने के बाद संबंधियों की भीड़ लग गई, मुखाग्नि देने का विवाद खड़ा हो गया और अब देखिये सम्पत्ति की लड़ाई में हवेली की दुर्दशा, मकान मुकदमें की फाँस में तहस–नहस हो, अब भूतबंगला है।कुछ दिन देखभाल के लिए एक आदमी रखा गया था, पर वह भी डर से यह कहते भाग गया कि बाप रे बाप रोज रात में मालिक और मालकिन आंगन में बैठे रहते हैं, मैंने अपनी आँखों से देखा है।

कुछ क्षण मौन रहने के बाद संदीप पुरानी बातों में खोते हुए गंभीर हो कहने लगा–बातें लगभग सत्तर साल पुरानी है, मैं पाँच–छः साल का रहा होऊँगा।उस जमाने में तो हमउम्र के बच्चों को समझदारी और सोच का दायरा कम होता था।मैंने भी सब पुरानी घटित बातों को उम्र पाकर ही समझा।–मुझे संदीप के हलक सूखने का आभास हुआ।तुरत पत्नी को पुकार उनसे पानी लाने को कहा, फिर चाय की चुश्की हुई–फिर संदीप ने खोये मन से मुझपर नजर गड़ा बातें शुरू की।संवेदना के ज्वार दोनों में उमड़े थे।लहरें उठती और गिरती रहीं।परदा उठता और गिरता रहा, मन का नैपथ्य मंच पर गूँजता रहा।–संदीप फिर आहों के गलियारे से होता हुआ बोला–क्या बताऊँ, ग्रीष्म की चिलचिलाती धूप की दोपहरी थी, सड़क पर जोर का हंगामा होते हुए सुना तो उत्सुकतावश दौड़ता हुआ सड़क पर आया, देखा नुनू बाबू के घर के आगे खासी भीड़ जमा थी, मैं भी उसमें शुमार हो गया।उन दिनों बैठारू लोगों की कमी नहीं रहती थी। अतः कुछ भी कहीं घटित हो तमाशबीन की भीड़ लग जाती थी। मर्द ही नहीं, औरतें भी अपने–अपने दरवाजे घूँघट में आ ताक–झाँक करती थी।

भीड़ के बीच कोई दस–बारह साल का लड़का, जो अर्ध नग्न था और मात्र हड्डी का ढाँचा बचा था, गमछे के छोर में बँधे ताम्बे के पैसे से नुनू बाबू के नौकर लछमनिया द्वारा बुरी तरह पीटा जा रहा था। वह बेचारा मार खाता घुलटता–पलटता आर्तनाद कर रहा था, अब छोड़ दो बाबू मर जायेंगे। पर लछमनिया अपने मालिक की ओर देख–देख प्रोत्साहित हो पीटता जा रहा था। मार खाते उसा बेचारे के हाथ की दो रोटियाँ और नमक के पुड़िये छूटकर धूल पर बिखरे पड़े थे। फिर भी भूख की कातर निगाहों से मार खाते घुलटते उस लड़के की नजर रोटियों से न हट पा रही थी।नुनू बाबू रोटियों पर उस लड़के की नजर भाँपते ही रोटियों को पैर से मसल दिया और नौकर को आदेश दिया और पीटो हरामजादे दुसाध को, नरक के कीड़े को, इन सालों की छाया से तो हाड़ तक छुआ जाती है।यह हमारे दरवाजे पर चढ़ने और उसपर बैठ उसे जूठा करने की हिम्मत कैसे कर पाया।मनुवाद का ध्वज फहर मानवता को शर्मसार कर रहा था।लड़के की आरजू– मिन्नतें बचा लेने की गुहार और आर्तनाद से भीड़ में से कोई भी संवेदित न हुआ। धर्म के नाम पर मानवहन्ता घिनौनी मानसिकता करुणा को दफना एक ठूठा सूखा वृक्ष हो श्मशानी टीले पर खड़ा था। भीड़ को धर्म के नाम इस अन्यास पूर्ण कृत्य को खुला समर्थन था।

लड़का अधमरा कराहता पड़ा था। नूनू बाबू और लछमनिया उसे छोड़ अपने बरामदे पर आ गया।बरामदे पर चार कुत्ते इतमिनान से पड़े थे, उसे नजरअंदाज करते दोनों मालिक नौकर फिर आँगन में आ गये। धर्म ने आदमी को कुत्ता से बदतर बना दिया था। धर्म के पिशाचों को उस जमाने में आदमी को कुचलने की खुली छूट थी।

भीड़ छटने के बाद वह लड़का कराहता मुश्किल से उठा और अपनी कुचली हुई रोटियों को समेट, गिरता, पड़ता जान बचाने के लिए तेजी से न जानें कहाँ भाग गया।

गोलमटोल अतिरिक्त मांस से लदे अनगढ़ दिखते नूनू बाबू इस वारदात के बाद रणक्षेत्र से लौटे विजयी सेनानायक की मुद्रा में अपनी पुश्तैनी आराम कुर्सी पर लदे थे और लछमनिया उनके पाँव के पास जमीन पर बैठ उनके पैर दबा रहा था।

नुनू बाबू जिनका नाम तो विजय बहादुर था, पर इकलौता पुत्र होने के कारण प्यार से लोग उन्हें नुनू बाबू के नाम से पुकारते थे। नुनू बाबू उसी जमींदारी कुर्सी पर लदे थे, जिसपर बैठ उनके पूर्वज कई मानवहन्ता अध्याय लिखे थे। उस कुर्सी पर नूनू बाबू ज्यों ही बैठने थे, उनमें भी उसी रक्त का

दोगलापन उछाल मारने लगता था।

नुनू बाबू–क्या रे लछमनिया! उस दुसाध के बच्चे को मन भर पीटा न?हाँ, मालिक! महीने भर अब वह क्या उठ सकेगा, फिर कान में फुसफुसा–कहीं वह मर न जाय। मालिक–मरने दो नाले के उस तलछट को, वह सब धरती का भार है। लछमनिया यह सुन और चमकता हुआ, मालिक का पैर और जोर–जोर से दबाने लगा। फिर मालिक से फुसका–मालिक! आज फिर कुछ चटपटी खाने का मन करता है। मालिक एक रुपया निकालते हुए कहा–ले, जा खा लेना।

इसी बीच मालिक की पत्नी सन जैसी सफेदवालों वाली झुर्रियों से झंकार दिखती, जो नुनू बाबू से आठ साल बड़ी थी, माला फेरती, हरे राम हरे कृष्ण करती सामने आ गयी और आँखें चढ़ाती तेवर में बोली–अरे, लछमनिया! तुम कितना बड़ा पापी है रे और निखट्टू मेरा मर्द, पाप का किरदार सब कुछ सत्यानाश कर देगा। मेरा धर्म–कर्म सब मिट्टी में मिला देगा।

लछमनिया! तुमने दुसाध को पीटा है और बिना स्नान के तुमने मालिक को छू दिया। जाओ, दोनों स्नान कर गंगाजल छींटो और कुर्सी पर भी जल छींटते हुए शंख फूँक देना। हाँ, मालिकन! बड़ा पाप हो गया। सत्संग में पंडितजी ने भी शास्त्रों में लिखी बातें आपसे कही थीं, मैंने भी सुना था। हाँ, तो इस बात को कान में खोंस लो। मैंने एक बात तुमसे कही थी कि किस तरह हरिजन के गले में हाड़ी लटकी रहती थी और कमर में झाड़ू।

मालकिन–लछमनिया! एक बात ध्यान में है न, कल जो मझियान लकड़ी दे गई है, उसे धो, गंगाजल छींट रसोईघर में रख देना। हाँ लछमनिया! देख ना तिरपतिया कहाँ है?वह बड़ी बेशर्म और हरजाई होती जा रही है, लगता है नौकरानी नहीं, घर की मालकिन हो। ऐसी बदतमीज है कि कईदिनों से देख रही हूँ मालिक से मुँह लड़ाती है। मालिक की दुलारी बन रही है कमीनी।

नुनू बाबू आँगन में चुपचाप बैठा सब सुन और देख रहा था। ऐसी बातों में उनकी कोई प्रतिक्रिया न थी। ऐसी बातों का विरोध पालते हुए भी वह इसे अनसुनी कर बेबसी के बीच चुपचाप जीने की कला विकसित कर ली थी। सागर तट पर चढ़ लहरें बार–बार उसे भींगा जाती थी, पर तट था कि निर्बाध सब भोगता मौन पड़ा रहता था। मालकिन की धार्मिक मदान्धता का अंधा जीवन निर्बाध आगे बढ़ता जा रहा था। कोई इस राह का बाधक हो, उसे बर्दाश्त न था। उस बवण्डर से टकराने की हिम्मत किसी में न थी।

लछमनिया मालिक के पदतले बैठ मालिक से चिचौरी कर रहा था। मालिक की अनेक कमजोरियों के कारण नौकर उनके सिर चढ़ बोलने लगा था।

मालिक धीरे से लछमनिया को कहा–लगता है लछमनिया अब भिखारी कम आने लगा है। लछमनिया तपाक से बोल बैठा– कम क्या मालिक कुछ दिन के बाद एक भी नहीं आएगा। आपका फॉर्मूला शत–प्रतिशत काम कर गया। गोदाम से लकड़ी के सारे घुन बोरा भर ले आया हूँ और सड़ा मकई भी एक बोरा पीसा लाया हूँ। सत्तू के नाम पर मिलाकर भिखारी को दे देता हूँ। वाह रे लछमनिया! मैं अकबर तू बीरबल।–चटपटी खायेंगे मालिक।–ले चौवन्नी हारामखोर, खा आ।

शाम मानस का पाठ करती–करती मालकिन हठात् लछमनिया को पुकारी–'भिखारी अपने यहाँ से खाली तो नहीं जाता लछमनिया!' लछमनिया–नहीं मालकिन! नहीं, सबों को सत्तू देता हूँ। वह सत्तू पर खुशी–खुशी जाता है। मालकिन–'हाँ, देख, प्यासे को पानी और भूखे को अन्न देना परम धर्म है।' लछमनिया–हाँ, कल भी तो पंडितजी आपको यह कह रहे थे, दान से बड़ा धर्म नहीं है। मैं बैठा सुन रहा था।

बाहर दरवाजे से आवाज आई–लछमनिया, लछमनिया! मालकिन से कहो, पंडितजी विराजे हैं। पंडिततजी की आवाज सुन मालकिन झोंके से उठी और लछमनिया से बोली–पंडितजी से कहो, दरवाजे पर रहे, मैं आ रही हूँ। ताम्र लोटे में पानी भर मालकिन दरवाजे पर आ पंडितजी के धूल धूसरित विवाई फटे पैर पखार उसे आँचल से पोंछ, उन्हें आँगन में ला आसन दे बैठाई, फिर खुद सामने बैठ गई। आध घंटे उपदेश बाँच पंडितजी दान– दक्षिणा ले यजमाइन को आशीर्वाद दे चले गये। पंडितजी को विदा कर मालकिन गुनगुनाई–पूज्यो विप्र शील गुन हीना। और फिर आगे वाली पंक्ति गुनगुनाती पलंग पर लेट गई, फिर नींद में खो सपने देखने लगी कि वह स्वर्ग में देवीं–देवताओं के बीच बैठी है। विष्णु भगवान् उनके सिर पर हाथ रख आशीर्वाद दे रहे हैं, उन्हें रहने को स्वर्णनिर्मित महल मिला है, साथ ही सेवा को अनेक दासियाँ और मनोरंजन को अनेक परियाँ। फिर वह खुशी से उछली की नींद टूट गई। झटके से उठ पूजा घर चली गई, फिर देवी देवताओं की मूर्ति के सामने झुक प्रणाम करती मानस का पाठ करने लगी और रुक–रुककर विचारों में निमग्न हो स्वर्ग की बात सोचती और बुदबुदाती, मुझे तो स्वर्ग मिलना ही है। फिर सोचती मेरे इस पापी मर्द का क्या होगा, हे भगवान्! अगर इन्हें नर्क मिला तो अपने स्वर्ग से जब इन्हें नर्क में देखूँगी तो मुझे कैसा लगेगा! मेरी तो किस्मत ही फूटी थी, जो ऐसे मर्द से शादी हुई। हे भगवान्! मेरा ही आधा पुण्य इन्हें दे देना। फिर लछमनिया को पुकारती कही, कहाँ है तुम्हारा मालिक–भेज उसे। देखो मैं स्वर्ग देखकर लौट आयी हूँ।

नुनू बाबू की पत्नी मालकिन जिस परिवार में पैदा हुई थी, वह अमानवीय कर्मकांडों एवं धर्मान्धता को समर्पित था और उसी परिवेश में वह पली–बढ़ी थी, पर उनमें धार्मिक उन्माद का पागलपन सीढ़ियाँ चढ़ बोलता था। आज के चिकित्सकीय विज्ञान में वह मानसिक रूप से बीमार थी। ब्राह्मणवाद के बैठे ठाले के कल्पना लोक में गढ़े फितूर के मिथकीय संसार में वह डूबती–उतराती रहती थीं, उनकी हवेली में पोंगा–पंडितों के जमावड़े और भोजन भाव होता रहता था और इन पंडितों के मानसिक दिवालियापन की उपजी बातें, मालकिन के जेहन में गहरे पैठ उनके सिर चढ़ बोलती थीं।

दूसरी ओर मालिक नुनू बाबू के वंशज ऐयासी, शराब और सुंदरी का जीवन जीते थे। परिणामस्वरूप दोनों परिवार दो विपरीत ध्रुव के थे। फिर भी दोनों परिवारों का यह बेमेल रिश्ता सिर्फ अपनी शान और ऊँचाई की सोच को बरकरार रखने को हुआ था। उस जमाने में राजे–रजवाड़े, जमींदार और सामन्त के घर औरतें अन्या हो रहती थी। पति–पत्नी के सामंजस्यपूर्ण जीवन की बात को महत्त्व दे रिश्ते नहीं होते थे। यहाँ तो नुनू बाबू की पत्नी उनसे आठ साल की बड़ी भी थी। शान की सरपट दौड़ में यह रिश्ता हुआ था। परिणामस्वरूप दो आत्माएँ साथ–साथ एक दूसरे के प्रति घोर नकारात्मक सोच में जीती थीं। फलतः परिवार दो उपजी विकृतियों के साथ अलग–अलग राह पर थे। जीवन असंतुष्टि के बीच आलोचनाओं के ऊफान पर टकराती रहती थी।

मालकिन की अंधनिष्ठा का दुराग्रहपूर्ण जीवन, उन्हें जिस्मानी जीवन और चाह से दूर कर दिया था। जिस्मानी जुड़ाव को वह घिन्न दृष्टि से देखती हुई, पाप समझ बैठी थी। नुनू बाबू के किसी रोमानी आग्रह पर वह लाल–पीली हो, मीरा के पद गाने लगती–'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई, साधु संग बैठ–बैठ लोक लाज खोई।'

उक्त पीड़क परिस्थितियों में नुनू बाबू जिस्मानी भूख की दुराग्रहपूर्ण असहज जीवन में था। अपनी रसूखवाली जिंदगी और सामाजिक प्रतिष्ठा में कोई आँच भी न होने देना चाहते थे। अतः बाहर कोठे के दरवाजे की ओर उनकी राह न मुड़ती थी। इधर घर के अंदर नौकरानी तिरपुतिया का जवान होता गहराया वदन वह चोरी छिपे देखने लगता था। फिर उनमें यौन के पागलपन का

दौर इस कदर उछाल मारने लगा कि अपनी सारी मर्यादाओं को दर किनार करते हुए उन्होंने अपने नौकर लछमनिया से अपनी इच्छा पूर्ति के गुफ्तगू करने लगा। बात तिरपतिया और लकड़ी बचनेवाली मझियान पर टिकी। लछमनिया अपनी बुद्धि लगाने को तैयार हो गया। तुरत मालिक ने इनामस्वरूप दस रुपये उसके हाथ पर रख दिये। लछमनिया मालिक से निकटता और इनाम पाने के लालच में प्रयास शुरू कर दिया और फिर सफलता हाथ लग गई।

पहले तो तिरपतिया पुरुष पाशविकता के घिनौनेपन को बर्दाश्त न कर पाती थी। मालिक की जोर–जबर्दस्ती पर विरोध के बाद वह आँख फाड़े फैले हुए सवालों के बीच शान्त शिथिल पड़ी रह जाती। ये बेचैनी भरे दिन तिरपतिया के कुछ ही दिन रहे। उसके बाद मन में उपजी घृणा टिक न पाई। तिरपतिया जो अब जवान थी खुद यौन विकृतियों की ढलान पर फिसलती गई और सब कुछ फिर आपसी सहमति के परवान पर था। नारी की नियति में तिरपतिया भी लता हो पुरुष स्तंभ में लिपट आकाश चूमने की ख्वाइश में जीने लगी। यों मालिक ने अपने यौन सुख को पाने न जाने कितनी बार तिरपतिया के पैर पकड़े थे और वादों की फुलझरियों के बीच अपने जिस्मानी जोश को ठंढा किया था।

अब दोनों एक दूसरे को मीठी–मीठी नजरों से शर्म ओढ़े मुस्कुराहट से आते–जाते देखते रहते। मालिक अब तिरपतिया की खूबसूरती और नाजुकी के कायल थे और तिरपतिया मालिक के रसूखदार व्यक्तित्व के रोबिलेपन में अपने जीवन की ऊँचाई खोजने लगी थी।

पर तिरपतिया जब कभी एकांत जीवन में रहती तो एक अपराध बोध से अंदर तक काँप जाती, साथ ही मालकिन का भय भी उसे बुरी तरह सताता रहता था। पर दूसरे ही क्षण यौन सुख पाते वह अनियंत्रित हो जाती। इसी द्वंद्वमें वह मालकिन की खूब सेवा शुश्रूषा करने लगी। देर रात तक वह मालकिन की मालिश करती, गप लड़ाती और फिर जब इतमिनान हो जाती कि मालकिन अब घोर निन्द्रा में है, चुपके दबे पाँव मालिक के कमरे में चली जाती।

लछमनिया भड़ुआ की भूमिका में जीने लगा था, तिरपतिया को वह तिरछी निगाह से देख मुस्कुरा देता था, फिर मौका पा छेड़खानी भी करता। तिरपतिया अपनी आँखों में दुधिया चमक भरती कह देती धत् हठ और आ जाती वह मालकिन के रौब में। तिरपतिया अब मालिक के साथ अपनी जिंदगी लपेटे चल रही थी। पर मालिक की अनियंत्रित पाशविक भूख, चोरी छिपे की बात पर तिरपतिया से रास नहीं आ रही थी। वे अब अपनी यौन लिप्सा का सुस्वादी भोजन ही नहीं, उसके प्रकार भी खोजने लगे, इसके लिए माध्यम लछमनिया को ही बनाया, लछमनिया की कमाई और ऊँचाई दोनों बढ़ रही थी।

घोर मुफलिसी का जीवन जीनेवाली मझियान के हाथ जब पाँच रुपये पड़े तो उसे अपने बच्चे के नंगे बदन, धँसी आँखें और खुद पानी पीकर सोने की अनेक रातों की बातें कौंध गईं। लछमनिया को उसने कहा–कहाँ है मालिक चल। अब लछमनिया की आँखें चमकी और वह मालिक के लिये रुपये हाथ पर रख मझियान को पटाने लगा।

शोषितों और वंचितों की दुनिया उस जमाने में दुस्सह दुखदायक थी। जीने के लिए शरीर बेचना मजबूरी थी। इसलिए उस जमाने में रखैल आम बात थी। पत्नी भी अपने पति से उसके रखैल की बातें सहज रूप में किया करती थीं। उस जमाने में पितृसत्तात्मक समाज की मजबूत सत्ता में आँखें अन्या होती हुई एक वस्तु मात्र थी। इस्तेमाल करो और फेंको की बात सहजता से चलती थी।

मालिक लछमनिया और तिरपतिया तीनों एक त्रिकोणात्मक संबंध में चालाकी और धूर्तता के बीच साथ–साथ जी रहे थे। एक दिन तीनों की पिछवाड़े में बैठकी चल रही थी, तभी मालकिन की आवाज गूँजी–रे लछमनिया! मर गया क्या, कहाँ है रे?लछमनिया मालकिन के पास तेजी से दौड़ता आ कहा–हाँ मालकिन! –तुम्हें पता है कि आज कौन दिन है। हाँ, मालकिन आज रविवार, कल सोमवार, परसों मंगलवार। सोमवार को आप जल में ताजा गोबर डाल स्नान करेगी और मंगलवार फलाहारी। ठीक है जा, तिरपतिया कहाँ है?भेज दूँ मालकिन! छोड़ दो सोयी होगी, बेचारी आधी रात तक मेरा मालिश करती रही थी, थक गई होगी।

लछमनिया रहस्यमयी मुस्कुराहट के साथ फिर बैठकी में शामिल हो गया। तिरपतिया ने सिर झुकाते हुए कहा–मेरे दो माह चढ़ गये हैं। लछमनिया ने मालिक की ओर देखा और मालिक ने लछमनिया की ओर। दोनों ने एक दूसरे से मौन प्रश्न किया। मालिक के ललाट पर चिंता की रेखाएँ उभर आयीं और वे ठंढ में भी पसीने–पसीने हो गये। लछमनिया पर कोई प्रतिक्रिया न हुई, उसने मुस्कुराते हुए कहा–क्यों घबड़ाते हैं, मालिक! मैंने लक्ष्मी नर्स से बात भी कर ली है, सब ठीक हो जाएगा। दो सौ रुपये की जरूरत है। मालिक ने सौ रुपये के नोट तत्काल लछमनिया के हाथ रख इत्मिनान की साँसें लीं। इसी बीच मालकिन, जय श्रीराम, जय श्रीराम कहती और माला फेरती बगान में आई, तीनों को एक साथ बैठा देख, अनेक शंकाओं से घिरती हुई पूछ बैठी क्या बात है, तिरपतिया स्याह चेहरा लिये हठात् खड़ी हो गई। मालिक नुनूबाबू अपनी पत्नी को एकटक देखता रहा। पर हाजिरजवाबी लछमनिया ने तपाक से कहा कि मालिक कह रहे थे कि इस घर में शान्ति और समृद्धि आप मालकिन के धर्म–कर्म और पुण्य प्रताप से ही है। मालकिन उलटे पाँव मुस्कुराती चल दी। फिर मालिक तिरपतिया की ओर मुखातिब होते हुए कहा–इस बुढ़िया पागल चुड़ैल के कारण ही मेरी यह गति है, अगर तुम न रहती तो क्या मैं जी पाता।

कुछ देर बाद पुश्तैनी कुर्सी पर माला फेरना छोड़, गंभीर सोच में बैठी मालकिन ने पुकारा–तिरपतिया–तिरपतिया! तेजी से आई, हाँ मालकिन! देख तिरपतिया अब तुम जवान हो गई हो, कोई बच्ची नहीं हो, मैंने तुम्हें कितनी बार समझाया है, जवान लड़कियों को मर्द से दूरी बनाकर रहना चाहिए, पर तुम्हारे भेजे में बातें समाती नहीं। देखो, मर्द की नीयत बड़ी खोटी होती है, उनमें चील, गिद्ध और भेड़िये वास करते हैं। –मालिक मेरे पति हैं, तो क्या हुआ, मर्द तो मर्द ही होता है और अगर वह बूढ़ा है तो और भी खतरनाक। हम ही हैं जो अपने पति पर लगाम लगाये रहते हैं, न तो हमारा धर्म–कर्म सभी नाश था और हम नर्क के भागी हो जाते। तिरपतिया मौन सिर झुकाए, एक अपराधी की मुद्रा में, पैर के अंगूठे से मिट्टी खोदती खड़ी रही। फिर जिंदगी के उहापोह में झूलती, अपनी कोठरी में आ, पेट पर हाथ रख आँसू टपकाती रही। लछमनिया स्थिति को भाँपते हुए, दबे पाँव चुपचाप आ उसके कान में फुसफसाया–डरो मत तिरपतिया! सब ठीक हो जाएगा। तुम कल सुबह छाती में भयानक दर्द का बहाना बना छटपटाना। मैं लक्ष्मी नर्स को बुला लाऊँगा, वह अस्पताल के बहाने तुम्हें अपने घर ले जाएगी, दो दिन अपने घर में रख सब ठीक कर देगी, बस इतनी–सी ही तो बात है।

तिरपतिया को अब जहाँ मालिक की पाशविक करतूतों से ऊबाई आ रही थी, वहीं वह मालकिन को लाख गालियाँ बक रही थी। स्वर्ग जाने की मंशा वाली इसी पापिन बुढ़िया के पागलपन के कारण मैं दुर्दशा के इस कगार पर हूँ। हे भगवान्! मेरा क्या होगा?

घुप्प अँधेरे के एकांत में मौन बैठी तिरपतिया मन के शांत तालाब में कंकड़ियाँ फेंक–फेंक, छप–छप की आवाज में जीवन को पिरोये आहों के जंगल में खोई थी।

लछमनिया भी अपनी करतूतों से निराश पछतावे की अग्नि में जहाँ जलना रहता, वहीं अपने भविष्य की दुनिया की चिंता में गल रहा था।

लछमनिया और तिरपतिया दोनों की अंतरात्मा घर के अंदर होते ऐसे अनैतिक कुकृत्यों को अपने एकांत सोच में कबूल न कर पा रहा था। इस घर के माहौल से दोनों ऊब चुका था। अब दोनों को अपने भविष्य की चिंता सता रही थी। दोनों सोचने लगा था–यह बूढ़ा और बूढ़ी जब दुनिया से विदा हो जाएगा, फिर उमर गुजर जाने पर हमलोगों का क्या होगा?अपने परिवार का सपना रखा का रखा रह जाएगा। इन बातों के साथ दोनों की निकटता बढ़ती गयी।

तिरपतिया अब मालिक की यौन विकृति के खूनी चंगुल से छूटने के लिए अथक प्रयास में रहने लगी थी, मझियान की बात जानने पर तो वह विरोध में और भी हिंसक हो गयी थी। इस भेड़िया मन से अपना पिंड छुड़ाने तिरपतिया रात में मालकिन की मालिश देर रात तक करती, वहीं जमीन पर सो जाती। लछमनिया भी अपनी भडुवागिरी से तोवा कर लिया था। मालिक हठात् उपजे इस माहौल से पागल–सा बर्ताव करने लगा था।

तिरपतिया और लछमनिया समान आग में जलता अपने अदम्य सपनों को पाने, निकट आ प्यार के इजहार में खोने लगा था। परिवार और बच्चों की आकांक्षाओं में दोनों कोई एक जुट निर्णय लेने को जूझ रहा था। दोनों की रातों की नींद हराम थी।

सपनों के घोंसले से दो चिड़ियाँ रात के घिरते अँधेरे में साथ–साथ सिमट बैठी रहती थीं। एक दिन दोनों रात के अँधेरे में फूर्र हो क्षितिज तल के रास्ते दूर देश चली गयी, सपनों की दुनिया में अरमानों के घरौंदे गढ़ने।

नुनू बाबू सुबह उठते ही सब कुछ भाँय–भाँय सूना देख, चिल्लाया–कहाँ गई तिरपतिया, कहाँ गया लछमनिया?आवाजें शून्य में गूँजती रहीं, कोई प्रत्युत्तर नहीं था। चिड़िया तो पिंजड़े से फुर्र थी। सुबह–सुबह नुनू बाबू के माथा धुनने व चिल्लाने की आवाज पर और मालकिन के हायराम पर महल्लेवालों की भीड़ लगी थी।जितने लोग, उतनी बातें हो रही थीं।

आलेख

बिना मुखौटे का आदमी

डॉ0 शरद नारायण खरे
विभागाध्यक्ष, इतिहास शासकीय
जे.एम.सी. महिला महाविद्यालय, मंडला (म.प्र.)
6261218245

वर्तमान में विसंगतियों, विद्रूपताओं, नकारात्मकताओं, प्रतिकूलताओं, विडम्बनाओं व व्याप्त रुग्णताओं पर सशक्त प्रहार करने में जिस विधा का सार्थक प्रयोग किया जाता है, वह विधा 'लघुकथा' के नाम से जानी जाती है। प्रभावी, सटीक व अचूक प्रहार, शब्द सीमित, पर मारक–क्षमता असीमित। वस्तुतः अल्प शब्दों में गहन व सारगर्भित संदेश देने की सामर्थ्य केवल लघुकथा के पास ही है, जो वर्तमान में स्वतंत्र विधा का रूप ले चुकी है। इसे छोटी कहानी समझना त्रुटिपूर्ण ही होगा, क्योंकि कथ्य, शब्द–संयोजन व प्रस्तुति की दृष्टि से लघुकथा का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है, जिसमें तीक्ष्णता भी होती है, सामयिकता भी और एक अनुशासन भी। सरसता व हृदय–ग्राह्यता तो निश्चित रूप से होती है। जब हम आज के सशक्त लघुकथाकार राजकुमार धर द्विवेदी जी की लघुकथाओं का अध्ययन करते हैं तो हमें लघुकथा की समग्रता के दर्शन होते हैं। पैनापन, तीखापन, व्यंग्यशैली, सुसंस्कृतता, सहजता, करारापन व आवेश, आक्रोश उद्विग्नता, सौम्यता, संतुलन सभी कुछ हमें 'बिना मुखौटे का आदमी' की लघुकथाओं में दृष्टिगोचर होता है। आज का आदमी मुखौटे लगाए हुए हैं। हर चेहरे पर हाथी–दाँत लगे हैं, जो 'खाने के और व दिखाने के और' की उक्ति को चरितार्थ करते हैं। आदमी का चरित्र व चाल–चलन प्याज की परतों की भाँति रहस्य के घेरे में है। ऐसे में 'बिना मुखौटे का आदमी' आखिर मिलेगा कहाँ?और अगर मिलेगा भी तो उसका भी वही हश्र होगा, जो इस संग्रह के शीर्षक के नायक 'गरम' का हुआ।

यह यथार्थ है कि राजकुमार धर द्विवेदी जी यद्यपि वय में युवा ही हैं, पर अनुभव व लेखन में परिपक्व हैं। उनकी लेखनी में पैनापन है। वे उत्कृष्ट हैं और विशिष्ट भी। आत्मानुशासित, सुसंस्कृति व दिव्य–द्रष्टा द्विवेदी जी बिना लाग–लपेट के सच्चा व खरा लिखने के लिए जाने जाते हैं। वे एक फक्कड़ पत्रकार व साहित्यकार हैं। न तो मुँहदेखी कर पाते हैं, न ही मुख पर मुखौटा लगा पाते हैं। वे सच्चे साधु हैं। वस्त्रों से नहीं, आंतरिक शुचिता, निष्कपटता व त्यागशीलता से। इसीलिए इस संग्रह की समस्त 51 लघुकथाओं में हमें एक पावनता दृष्टिगोचर होती है, एक सात्विकता दिखती है।

द्विवेदीजी की वास्तविकता 'साफगोई' व मुँहफटता हमें उनकी लघुकथाओं सहित उनकी समस्त रचनाओं में भी दृष्टिगोचर होती है। सरल, सहज शब्द, सीधी प्रस्तुति, न शब्दाडम्बर, न लाग लपेट, न ही पांडित्य–प्रदर्शन करने की चेष्टा, सब कुछ सादगी, शालीनता व सच्चाई के साथ। जो हैं, वही खुद को समझते हैं, वही प्रस्तुत करते हैं और वही नजर आते हैं। यही उनकी खूबी है और वास्तविकता भी।

लघुकथाओं में विषय व्यापकता है, वैविध्यता है और स्तरीयता भी। एक अनूठी मौलिकता के साथ सृजित ये लघुकथाएँ पाठक के चिंतन पर करती है, उसे उद्वेलित करती हैं और उसकी अंतरात्मा को झकझोर कर रख देती हैं। 'घड़ियाली आँसू' के प्रारंभ लघुकथाओं का क्रम 'मूर्ख', 'झूठी शान', 'पढ़े–लिखे', 'पड़ोसी–धर्म', 'पिता का फैसला', 'स्पर्श', 'भूलन काका', 'गुरुदेव का सपना', 'नामी साहित्यकार', 'मूरख', 'जीत की जुगत', 'भिखारिन', 'गंदी सोच', 'साधु', 'नन्हा बैल','तुम कौन', 'कवि सम्मेलन', 'समीक्षक', 'कवि गोष्ठी' से गुजरता हुआ 'जहर' तक जा पहुँचता है। समस्त लघुकथाएँ प्रभावी हैं। यह वास्तविकता है कि लघुकथाकार का गहरा व पैना होना आवश्यक है, अन्यथा लघुकथाएँ उथली ही रह जाती हैं। पर द्विवेदीजी ने खूब डूबकर लिखा है। वे सुसंस्कृत हैं, पर दुर्बल कदापि नहीं। वे संवेदनशील अवश्य हैं, पर भीरु बिल्कुल नहीं। वे शालीन हैं, लेकिन ऊर्जाहीन कदापि नहीं।

हर लघुकथा यथार्थ के धरातल पर आकर रची–गढ़ी है। लघुकथाएँ विसंगतियों पर 'पिन–पॉइंट' करती हैं। लघुकथाओं की 'संवाद–शैली' उन्हें पुख्ता बनाती है। अन्यथा इस समय प्रायः सपाटबयानी, वक्तव्यता, संस्करण, हास्य–प्रसंग की प्रकृति में लिखी जा रही हैं, जिनके कारण लघुकथा का प्रभाव घटता जा रहा है। पर 'बिना मुखौटे का आदमी' हकीकत से जुड़ा है, प्रभावी शिल्प से जुड़ा है, प्रभावी प्रस्तुति से जुड़ा है। वह अनुशासन में बँधकर अवश्य लिखता है, पर सच्चाई के साथ कदापि समझौता नहीं करता है। वह राजनीति, प्रशासन, साहित्य, शिक्षा, व्यापार, खेल, परिवार, रिश्तों–नातों सभी में व्याप्त ढोंग–पाखंड की धज्जियाँ उड़ा देता है। वह हर चेहरे से नकाब उतार कर अपनी लघुकथाओं के माध्यम से संभ्रांतों के असली चेहरे दिखाता है। मैं ऐसे खरे आदमी का अभिनंदन करता है और इस कृति की व्यापक लोकप्रियता की कामना करता हूँ।

कहानी

अंतिम स्तंभ

शुभदा मिश्र
1 4 पटेल वार्ड डोंगरगढ़ (छ. ग.)
मोबाईल 8269594598

तू यह बात किसी को मत बताना...वह मेरे हाथों को अपने हाथ में लेकर चिरौरी सी कर रही थी...मेरी इतनी बात मान लेना।

मेरा मुँह उतर गया क्या रे तू तो मेरा दिमाग ही खराब कर रही हैं। मैं तो तेरी दी ये साड़ी पहनकर दुनिया भर में मटकती फिरती कि देखो–देखो सब लोग...। मेरी प्यारी सहेली ने कितनी सुंदर साड़ी दी है। और तू कह रही है कि किसी को मत बताना।

तू मेरा नाम मत बताना बस।

वाह, ये तो कोई भी पूछेगा, इतनी सुंदर साड़ी किस सहेली ने दी। किस खुशी में दी!

तू तो जानती है रे कितनी मुसीबत हो जायगी मेरी।

जनम भर मुसीबत ही रही तेरी तो...

मेरा मन सच में खराब हो गया। असल में मुझे याद आ गया...पैंतीस बरस पहले भी इसने मुझे साड़ी दी थी। ऐसे ही छुपाकर। ऐसे ही कहा था...किसी को मत बतानां। अवसर था इसकी पहली संतान, "पुत्र" के जन्म का। सास–ससुर, जेठ–जेठानी, देवर देवरानी, ढेर सारे रिश्तेदारों अतिथियों से भरा घर। पूरे घर में आनंदोत्सव की धूम। वह मुझे अपने कमरे के एकांत में खींचकर ले गई थी। अपनी अलमारी खोल एक साड़ी निकालकर मुझे पकड़ाते हुए बोली थी... जल्दी से इसे अपने पर्स के भीतर डाल ले। अपने पैसे से खरीद कर लाई हूँ। गुलाबी रंग तुझ पर बहुत खिलता है। जरूर पहनना इसे।

तेरे पास पैसा ही कितना बचता है। सारी तनखा तो तू अपनी सासू माँ को धरा देती है। अगर साड़ी देने का इतना ही मन था तो आज तो तोहफे में तुझे ढेरों साड़ियाँ मिली हैं। उन्ही में से कोई मुझे दे देती।

वे सब साड़ियाँ, तोहफे तो सासू माँ को मिले हैं।

बेटा तेरा हुआ है। लोगों ने तोहफे तुझे दिये हैं।

यह तो शिष्टाचार है। घर सासू माँ का है। इतने लोगों का मानदान उन्हें ही निपटाना है।

और आज!

आज गृहप्रवेश का शुभ अवसर है। उसी बेटे ने बनवाया है शानदार मकान। मकान क्या है, शानदार शाही बंगला है। जाने कहाँ–कहाँ से ढूँढ–ढूँढकर लाया है एक से एक बेशकीमती साजो सामान। भीतर से बाहर, हर ओर जगमगाते टाइल्सवाले फर्श। दमकती दीवारें। सामने हाते में रंग–बिरंगे फूलों से महकता बगीचा। पोर्टिको में खड़ी नई नवेली चमचमाती कार। बाजू में दो दमदार दुपहिया वाहन। दोनों पति–पत्नी के। रौबदार अलसेसियन कुत्ता। वैभव ही वैभव।

और मुझे याद आ रहा है, उसका वह छोटा–सा घर। ससुराल का संयुक्त परिवारवाला घर छूटने के बाद पति की नौकरी में जब वह घर बसाने आई थी, तो उसे यही घर मिला था। दो छोटे–छोटे कमरे, एक किचन, छोटा–सा बरामदा, उसी से लगा निहायत छोटा–सा बाथरूम टॉयलेट। बर्तन माँजने की जगह नहीं। न ही कपड़े सुखाने की। वे दिन हम सभी सहेलियों के बड़ी भाग दौड़ भरी जिंदगी के दिन थे। अपनी गृहस्थी से किसी तरह समय निकालकर दो चार बार गई थी मैं उसके घर। एकदम अकबका जाती थी। इतने बड़े घर की लड़की, कैसे रहती है इस दड़बे जैसे छोटे–से फ्लैट में! मगर वह खुश नजर आती। तड़के सुबह से रात गए, उसे तो फुरसत ही नहीं। मुँहअँधरे ही अपने नित्यकर्म से निपट परम श्रद्धा से अपनी छोटी–सी पूजा समाप्त करती। फिर नाश्ता तैयार करना, चाय बनाना, बच्चों को स्कूल के लिये तैयार करना। पति की तैयारी में मदद करना; रूमाल, पेन, डायरी धराना, सबके बैग में टिफिन रखना। सबसे अंत में अपने पर्स में टिफिन बॉक्स डाल मामूली–सी साड़ी लपेट चप्पल फटकारती स्कूल भागना। शाम ढेर सारी कापियों एवं सब्जी भाजी के थैलों से लदी–फँदी जल्दी–जल्दी घर लौटना। पति बच्चे सब उसका ही इंतजार करते बार–बार दरवाजे पर आ रहे हैं। बाहर निकलकर ताक रहे हैं। उसकी छाती खुशी से भर जाती। बच्चों को छाती से लगा चट से काम में जुट जाती। चाय–नाश्ता खाना। बीच–बीच में बर्तन साफ करना। पोंछा लगाते जाना। तिस पर सबकी अलग अलग फर्माइशें। किसी को पकौड़े चाहिए, किसी को गुलगुले। सबकी फर्माइशें पूरी करती सुख सागर में मगन। ऐसे में कभी कोई सहेली, कोई रिश्तेदार, अतिथि आ जायें तो क्या पूछना! पति उसके भारी मजाकिया। छका डालते अपने मजाकों से सबको। नहले पर दहले भी पड़ते उन पर। वह देख–देखकर विभोर होती। गृहस्थी का स्वर्गिक सुख। सुखों से भरे दिन बीतते गए। बच्चे बड़े होते गए। स्कूल–कॉलेज, नौकरी–चाकरी, काम–धंधे, शादी–ब्याह निपटते गए। नाती–पोते भी आते गए। व्यस्तताओं के इस दौर में हमारा संपर्क लंबे अरसे तक नहीं हो पाया। बरसों बाद उसे अपने ही शहर में, अपने ही दरवाजे में देखकर मेरी तो चीख निकल गई। भरपूर गले मिलकर हम रो लिये। आँसू पोंछकर मैं पूछने लगी...कैसे आ गई तू अचानक यहाँ?

मैं तो पिछले कई महीनों से यहाँ हूँ। तेरा घर नहीं ढूँढ पा रही थी।

मेरा घर नहीं ढूँढ पा रही थी! तेरा तो बचपन ही इन्हीं गलियों में बीता है। इसी सामनेवाले घर में तो रहते थे तुमलोग।

वह घर तो मेरे नानाजी का था न। शुरू में हमलोग नानाजी के घर में ही रहते थे। बाद में पिताजी की नौकरी के साथ जगह बदलते रहे। नानाजी की मृत्यु के बाद यह घर बेच दिया गया। हमारा यहाँ आना भी छूट गया। एक–दो बार तुम्हारे ही घर के शादी–ब्याह के कार्यक्रम में आये थे, तो तुम्हारे ही घर ठहरे थे। अब तो पूरी गली बदल गई है। बिल्डिंगें ही बिल्डिंगें नजर आती हैं। पूरा शहर ही बदल गया है। मुझे तो अपनी गली ही पकड़ में नहीं आ रही थी। एक बुजुर्ग सज्जन से तेरे पिताजी का नाम लेकर पूछा तो वे बेचारे तो तेरे दरवाजे तक पहुँचा गये। यह भी बता गये कि यह घर तो एक अरसे से सूना पड़ा था, अब उनकी लड़की आकर रहने लगी है। अच्छा किया, जो पति का साथ छूटने के बाद यहाँ आ गई। पिता के उजाड़ सूने घर में दिया जला दिया तूने तो। मगर यहाँ पुरानी यादें तो सताती होंगी।

खूब। मगर तू बता रही थी कि तू पिछले कई महीने से यहाँ है। कहाँ ठहरी है?

खैरागढ़ रोड में। एक फ्लैट किराये पर लिया है मेरा लड़का। अब उसी तरफ मकान भी बनवा रहा है।

मकान बनवा रहा है इस शहर में। क्यों?

बहू यहीं शिक्षाकर्मी हो गई है।

और बेटा?

बेटे का काम तो भागमभाग का है। बहू यहीं रहेगी। मैं तो आता जाता रहूँगा, सोचकर यहीं मकान बनवा रहा है।

करता क्या है लड़का?

कंप्यूटर से संबंधित कुछ काम करता है। मैं आजकल के ये कामधंधे ठीक से समझती नहीं। महीने में पचीस दिन तो दौरे में रहता है। कभी कोलकता, कभी लखनऊ, कभी धनबाद। जाने कहाँ–कहाँ। घर आता है, तो इतना थका रहता है कि मुझसे तो दो बोल भी नहीं बतिया पाता। अब मकान बनाने में भिड़ गया है तो और दम मारने की फुरसत नहीं।

फिर वह मेरे घर अक्सर ही आने लगी। हम बातें करते रहते। बचपन की, कॉलेज के दिनों की, अपनी–अपनी गृहस्थी की। उसके पति अवकाश प्राप्ति के बाद ही सिधार गए थे। बताने लगी...कह गए थे कि उनके भविष्य निधि वगैरह का पैसा दोनों बेटियों में बाँट दिया जाय। मगर लड़के ने उन पैसों से मकान के लिये प्लॉट खरीद लिया। कह दिया...बहनों को बाद में कमाकर दे देगा सारा पैसा। युद्ध स्तर पर चल रहा है मकान का काम। सारा पैसा उसी में झोंक रहा है। मुझसे स्पष्ट कह दिया, घर का खर्च तो अभी तुम्हें ही चलाना है माँ। वह नहीं कहता, तो भी मैं करती ही थी। अपनी खुशी से। महीने भर का राशन, शाक–सब्जियाँ, बच्चों की फरमाइशें। अभी तो पूरी पेंशन इसी सबमें जा रही है।

और बहू का पैसा?

बाप रे...मैं उन पैसों के बारे में मुँह नहीं खोल सकती। जाने क्या सोचकर बेटे ने जमीन का प्लॉट भी उसी के नाम लिया है। सोचा होगा कुछ।

और मैं गृहप्रवेश पर उसके घर गई तो दंग रह गई। यह तो राजा महाराजाओं का शाही बंगला लगता है। आखिर इतना पैसा इसके पास आया कहाँ से!

मगर वह गद्‌गद थी...बच्चा मेरा जन्म भर छोटे से दड़बे में रहा है न। सो अपने सपनों का महल बनाया है। मेरे लिये इससे बड़ी खुशी की बात और क्या हो सकती है। आज मेरा बहुत मन हो रहा है कि तुझे तेरी पसंद की साड़ी पहनाऊँ।

मैंने फिर वही बात कही...तेरा इतना ही मन है तो जो इतनी साड़ियाँ तोहफे में आई हैं, मैं उन्हीं में से एक पसंद कर लेती हूँ।

वह सब तो बहू को तोहफे में मिली हैं। घर बहू का है। मैं तुझे अपनी तरफ से देना चाहती हूँ। अपने पैसों से।

अगली शाम वह मुझे जिद कर दुकान ले गई। उसका मन रखने के लिये मैंने एक साड़ी पसंद कर ली। अब वह कहने लगी...किसी को बताना मत।

उसकी इस बात से मेरा मन खराब हो गया। इधर जबसे वह यहाँ आई थी, उसकी स्थिति देखकर मेरा मन खराब ही हो जाता था। उसका घर मेरे घर से काफी दूर था। उस तरफ रिक्शा या कोई सवारी मिलती ही न थी। घर में दो दुपहिया वाहन और एक नई नवेली कार थी। मगर वह मेरे घर पैदल ही आती। पोते–पोती और बहू के स्कूल से लौटने के बाद। उसकी "ओपन हार्ट सर्जरी" हो चुकी थी। बुढ़ापे पर पहुँचा जर्जर शरीर। मेरे घर पहुँचते ही पस्त पड़ जाती। मेरे घर में बैठे–बैठे घंटों हो जाते, न कोई उसे लेने आता न खोज खबर लेता। बेटा घर में हो तब भी नहीं। उल्टे माँ को व्यंग करता...तुम ही दौड़–दौड़कर सहेली के घर जाती हो। तुम्हारी सहेली तो कभी दर्शन ही नहीं देती।

मुझे सच में उसके घर जाना सुखद न लगता। मेरे जाते ही पोते–पोती अपना वी.डी.ओ. गेम छोड़कर आकर जम जाते दादी के कमरे में। कान लगाये सुनते रहते हमारी बातें। बच्चों की आँखों में कहीं बाल सुलभ मासूम भाव नहीं। अजीब उपेक्षा और हिकारत भरा भाव होता। दादी के कंधे पर चढ़ रहे हैं...दादी! चलो हमको होमवर्क कराओ। दादी की हिम्मत नहीं कि झिड़क सके...जाओ बाहर खेलो। उनके शातिरपने का किस्सा भी सुन चुकी हूँ मैं।

कुछ दिन पहले सहेली की छोटी बेटी को लड़की हुई थी। मेरे घर आई तो बोली.. .बच्ची की छट्ठी में जाना है। छोटी–सी सोने की चेन देने का मन है। किसी अच्छे ज्वेलर की दुकान से दिलवा दे। मैं उसे अपने परिचित ज्वेलर की दुकान में ले गई। उसने एक चेन पसंद की। मगर जैसा लॉकेट वह चाहती थी, वैसा दुकान में था नहीं। दुकानदार ने कहा–चार दिन में वह वैसा लॉकेट बनवा देगा।

चार दिन बाद वह दुकान में गई। अकेले ही। लॉकेट लिया। घर लौटी। बेटा–बहू बच्चे सामने हाते में ही कुर्सियाँ डाले बैठे थे। बेटा बोला–कहाँ गई थी माँ?

उसने मेरा नाम बता दिया।

दस वर्षीय पोता आँखें तरेरकर बोला–इतना झूठ क्यों बोलती हो दादी! तुम तो ज्वेलर की दुकान से लॉकेट लेकर आ रही हो।

सहेली का चेहरा फक् पड़ गया–कैसे कह रहा है तू ये?

मैं गया था न तुम्हारे पीछे–पीछे। जब तुम लॉकेट पसंद कर रही थी, मैं तुम्हारे ही तो पीछे बैठा था सोफे पर।

सारा किस्सा सुनकर मैं अवाक् रह गई...उस लड़के को यह कैसे पता चला कि तू ज्वेलर की दुकान जा रही है?

मैं मोबाईल में ज्वेलर से पूछ रही थी, क्या लॉकेट बनकर आ गया। लड़के ने सुन लिया होगा। उसने माँ को बताया होगा। माँ ने बेटे को मेरे पीछे लगा दिया।

यह मोबाईल का किस्सा भी अजीब है। वह अपने जमाने की अच्छी पढ़ी–लिखी अध्यापिका, मगर अब जैसे एकदम पिछड़ी हुई, मूर्ख गँवार। मोबाईल में फोन करना तक नहीं आता था उसे। जब मैं उससे कहूँ–तू इतनी दूर से मेरे घर आती है पैदल, तो मुझे फोन कर दिया कर, ताकि मैं घर पर ही रहूँ। तो बोली–मुझे तो फोन करना ही नहीं आता। बड़ी बेटी अपना पुराना मोबाईल छोड़ गई है, जिससे मैं किसी का फोन आये तो बात कर लेती हूँ, बस।

फोन करना उसे किसी ने नहीं सिखाया, न बेटे ने, न बेटी ने। न उन नाती–पोतों ने, जिनकी मोबाईल पर महारत देख–देखकर वह चमत्कृत होती रहती है।

मैंने उसे फोन करना, रिचार्ज करना सब सिखा दिया। वह गद्‌गद होने लगी, तूने मुझपर बड़ी कृपा की। अब मैं खुद भी अपनी बेटियों से बात कर सकती हूँ।

अब वह जब भी फोन करे पोता–पोती कहीं भी हों आकर डट जाय। उसके पोता–पोती के सामने तो बात करना भी मुश्किल, सो मैं ऐसे समय उसके घर जाती, जब बच्चे–बहू सब स्कूल में हों। शहर से दूर उस एकान्त शाही बंगले में वह अकेली और उनका भयानक कुत्ता। फाटक पर मुझे देखते ही उनका भयानक कुत्ता भौंकना शुरू कर दे। वह पगली–सी फाटक पर आये और मुझे अंक में भरकर भीतर ले जाये। मैं कहती शांति से बैठकर गपशप कर, मगर वह पगलाई–सी जल्दी–जल्दी नाश्ता बनाने लगती– हलवा, पकौड़े, चीले, जो सूझता वही। फिर निहोरा करने लगती– खा न रे गरम गरम! देख मैं नाश्ता बनाना भूली तो नहीं हूँ। चाय–नाश्ता खत्म होते ही फौरन सारे बर्तन माँज धोकर किचन में पूर्ववत् सजाकर अपार संतुष्टि से बैठ जाती। मेरा मन और खराब होने लगता। याद आ जाता। ठीक ऐसा ही वह तब भी करती थी, जब अपनी सासू माँ के साथ रहती थी। हम उससे मिलने गये और अगर सासू माँ घर में न हों तो उसकी चपलता देखते ही बनती थी। फटाफट नाश्ता तैयार कर लेती। जल्दी–जल्दी खाने के लिये चिरौरी करने लगती। खाना खत्म होते ही बर्तन माँज धोकर सजा कर रख देती। तब सासू माँ का आतंक था, अब बहू का। तब ननद–देवर की जासूसी, अब पोते–पोती की। आतंक से भीतर ही भीतर आक्रांत। मगर उन्हीं लोगों की सेवा में तत्पर, मगन।

अजब समानता दिखती मुझे पैंतीस साल पहले देखी उस सास में और शानदार पोशाक में सजी, काला चश्मा लगाये खुले केश उड़ाती धड़ल्ले से बाईक दौड़ाती इस आधुनिक बहू में। सास का चेहरा हमेशा चढ़ा ही दिखता, यह हमेशा मिमियाती ही दिखती। अब बहू का चेहरा हमेशा चढ़ा ही दिखता। यह मिमियाती ही दिखती।

सब कुछ जानते समझते हुये भी इधर शायद मुझसे ही कुछ बेवकूफी हो गई।

हुआ यह कि मेरे घर अचानक हमारी कुछ पुरानी सहेलियाँ आ गईं। मैंने उसे फोन किया कि तू मिलने आ सकती है क्या! वह एकदम तड़प गई, घर में कोई है नहीं। बहू और बच्चे स्कूल में। बेटा दौरे पर। घर सूना छोड़कर कैसे आऊँ! मैं सहेलियों को लेकर उसके घर ही पहुँच गई। हमें देखते ही वह मारे खुशी के

बेहाल। खूब गले मिलना रोना–धोना हुआ। सबको अपने कमरे में बैठा वह दौड़ी किचन की ओर। सहेलियाँ चिल्लाई, बैठ न रे! बोल बतिया। नाश्ता बनाने में समय बर्बाद मत कर। कितनी मुश्किल से तो हम लोग आ पाये हैं। वह बैठ गई। ढाई बजते बजते बच्चे आ गए। वह बच्चों को खाना देने किचन दौड़ी। हम आपस में बतियाने लगे। काफी देर हो गई। हारकर मैं किचन में गई। देखा, उसने बच्चों के लिये ताजा भात बनाया था और अब रोटियाँ सेंक रही थी। नवाब बच्चे डिब्बे में रखी सुबह की रोटी नहीं खा सकते थे। सहेलियों को देखकर और चढ़ गये–दादी ये कैसी रोटियाँ दे रही हो। फूली– फूली दो। मेरे मुँह से निकल गया–ताजी रोटियाँ हैं, चुपचाप खाओ। उसने फौरन मेरे मुँह पर हाथ रख दिया और बच्चों को पुचकारने लगी–लो, आज दादी को माफ कर दो। कर दोगे न!

बच्चों को खिलाकर जैसे ही उसने चाय का पानी चूल्हे पर चढ़ाया, मैंने मना कर दिया। सहेलियाँ जल्दी मचा रही हैं, अब चाय बनाने में समय बर्बाद मत कर। मन मारकर वह सहेलियों के बीच आकर बैठ गई। बातचीत में अब वह रस नहीं आ रहा था। मन–ही–मन सबको कुछ कचोट रहा था। सहेलियों को उसकी स्थिति और उसे सहेलियों का ठीक से स्वागत न कर पाने की विवशता। तिसपर दोनों शातिर जासूस हमारे ही बीच आकर खड़े हो गये...दादी मेरा रैकेट कहाँ है?मेरा कलर बॉक्स कहाँ है?तभी बहू भी आ गई। तीखी नजरों से सास के कमरे को देखती बाथरूम की ओर चली गई। वहाँ से लौटी तो उसके ट्यूशनवाले लड़के आ गये। ट्यूशन पढ़ाना यानी पैसे बनाना। सो लड़कों को देखते ही वह सामने बैठक में ही पढ़ाने बैठ गई। सहेली की स्थिति अतिथियों के बीच अत्यंत दयनीय। आती हूँ, कहकर गई और शायद बहू से चिरौरी की कि मेरी कुछ सहेलियाँ आ गई हैं, कुछ चाय–नाश्ता बना दो। बहू तमतमाई हुई किचन की ओर जाती दिखी। काफी देर हो गई। मगर न चाय आई, न नाश्ता। वह इतनी देर से सहेलियों को चाय–नाश्ते के लिये रोकी हुई थी। हारकर किचन की ओर गई। उसके पीछे मैं भी। बहू ने एक भारी भरकम भगौने में कनस्तर का सारा बेसन उड़ेलकर घोल बना लिया था और तेवर में तनी धड़ाधड़ पकौड़े छाने जा रही थी। बड़ी–सी परात में पकौड़ों का पहाड़ लगा हुआ था।

दुख और क्षोभ में भरी सहेली कुछ पल हतवाक् खड़ी देखती खड़ी रही। आँखों में पानी उतर आया। आँखें पोंछकर प्लेटों में पकौड़े डाले। चटनी निकाली। ले जाकर सहेलियों को परोसा और हाथ जोड़कर आग्रह किया....यही स्वागत कर पा रही हूँ तुमलोगों का। फिर किचन में जाकर हाथ जोड़कर प्रार्थना की... कृपा करके अब बनाना बंद करो। माफी चाहती हूँ। मैंने तुम्हें डिस्टर्व किया।

सहेलियाँ तो दुखी मन से उसकी चर्चा करते शाम की ट्रेन से चली गई अपने–अपने शहर। पर मैं परेशान ही रही। क्या फोन करके पूछूँ उसकी हालत। मगर अगली शाम को वह खुद आ गई मेरे घर। वैसे ही जर्जर शरीर ढोते। हँफरते–हँफरते बोली–बच्चे स्कूल से आ गये, बहू भी, तब आ पाई हूँ। चाय पिला।

मैंने जल्दी से चाय बनाई। नाश्ता बनाने के लिये चूल्हे पर कढ़ाई चढ़ाई कि वह बोली...बनाना छोड़। घर में कुछ हो तो वही दे दे।

मुझे संकोच हो आया। बोली–सबेरे मेथी के पराठे बनाई थी। जल्दी काम निपटाने के चक्कर में आखिरी लोइयों को मसलकर दो मोटे–मोटे पराठे बना दी थी। वही हैं। तू दो मिनट रुक न। मैं बढ़िया से कुछ बनाती हूँ।

एकदम अधीर–सी वह कहने लगी–मुझे मेथी के मोटे पराठे ही अच्छे लगते हैं। तू दे तो सही।

उसकी बेताबी देख मैंने वही मोटे–मोटे पराठे परोस दिये। चटनी भी। वह धड़ल्ले से खाने लगी। खाकर चाय पीने लगी, तो मैंने पूछा–तू भूखी थी क्या?

उसकी आँख में पानी उतर आया। बोली–हाँ।

हो क्या गया?

उसका गला भर आया। कुछ रुककर बोली–कांड ही हो गया था। मेरे हाथ जोड़कर माफी माँगने के बाद बहू अपने कमरे में जाकर मुँह लपेटकर औंधे मुँह पलंग पर पड़ गई। मैंने जाकर चौका समेटा। बचे हुए ढेर सारे घोल में से कुछ फ्रिज में रखा। बाकी कामवाली बाई को दे दिया। पकौड़ों में से भी कुछ रखा, बाकी कामवाली बाई को दे दिया। रात का खाना बनाकर बच्चों को खिलाया। उसे खाने के लिये निहोरा करने गई, तो एकदम भड़क गई...मुझे चैन से जीने देना है कि नहीं। नम्रता का आवरण ओढ़े मुझे टार्चर करती रहती है धूर्त बुढ़िया। मैं भी पगला गई...तुम चाहती हो कि मैं मर जाऊँ। मौत आयेगी, तभी न मरूँगी। अपनी दयनीय विवशता पर मैं रोती जाऊँ और लड़ती जाऊँ। वह भी रोती जाये और लड़ती जाये। उसका मुख्य आरोप था कि मैं पाखंडी हूँ। अपने को श्रेष्ठ समझती हूँ और उसे हमेशा नीचा दिखाने के चक्कर में रहती हूँ। दुख से मेरा कलेजा फटा जा रहा था। मैं भी अपने कमरे में जाकर बिस्तर में रोती पड़ी रही। रातभर नींद नहीं आई। मुझसे कहाँ गलती होती है, यही समझ में न आये। आधी रात के करीब बेटा आया। सीधे अपने कमरे में गया। मैं सहमी सटकी आहट लेती रही...क्या खाना परोसने जाऊँ! मगर कुछ देर बाद बेटा खुद कमरे में आ गया। बोला–माँ! तुमलोग मुझे जीने दोगी कि नहीं! मैं तुम्हे कितनी बार कह चुका हूँ, उसमें सहनशक्ति नहीं है। उसे डिस्टर्व मत किया करो। वह भूखी प्यासी स्कूल से आई कि लड़के चले आये। किसी तरह लड़कों को पढ़ा रही थी कि तुमने अपनी सहेलियों के लिये नाश्ता बनाने का फर्मान सुना दिया। माँ! आखिर तुम चाहती क्या हो! तुम हमको छोड़कर तो रह नहीं सकती। तुम खुद जानती हो। तुम समय से पिछड़ चुकी हो। तुम्हें तो ए.टी.एम. से पैसा निकालना तक नहीं आता।

तुझे ए.टी.एम.से पैसा निकालना नहीं आता–मैं हैरान हो गई।

मैं कभी गई ही नहीं। तेरे जीजाजी के बाद से बैंक वैगरह के सारे कागजात बेटे के पास ही रहते हैं। मुझसे सिर्फ दस्तखत लेता रहा हैं। ए.टी.एम.से पैसा निकालकर वही देता रहा है। वह न हो तो बहू ला देती है।

तुझे पता है वे कितना निकालते हैं। तुझे कितनी पेंशन मिलती है।

वे मेरे हाथ में वही रकम थमा देते हैं, जो मुझे शुरू में मिली थी।

मैं सिर पकड़कर बैठ गई। बोली–वह सब मैं तुझे सिखा दूँ। मगर यह बता, क्या तू इनको छोड़कर कहीं अलग सच में नहीं रह सकती।

फायदा क्या है। यहाँ मैं बेटे की सूरत तो देख सकती हूँ। पोते–पोती से बोल–बतिया तो लेती हूँ। मैं जानती हूँ। ये लोग मुझे मूर्ख, गँवार और अवांछित प्राणी समझकर अपमानित करते रहते हैं। कुत्ता भी इनका अपना है, दुलारा है, मगर मैं नहीं। मगर मैं क्या करूँ! मुझे इनके लिये ही प्रेम उमड़ता है। फिर बीच–बीच में बेटियाँ आ जाती हैं। दामाद और बच्चे भी। मेरी छाती भर आती है। बेहद सुख लगता है। कभी देवर, जेठ, भतीजे, भतीजी वैगरह भी आ जाते हैं। मेरे पाँव–पाँव से नहीं लगते। दौड़–दौड़कर सबकी आवभगत करती हूँ। पास के पैसे खतम हों तो चुपचाप दुकान से उधार ले आती हूँ। बहू अपने मायकेवालों के अतिरिक्त किसी का आना पसंद नहीं करती। कई बार अपने कमरे से बाहर भी नहीं निकलती। मगर ये लोग बहुत समझदार हैं। उसके कमरे में जाकर खुद बोल बतिया लेते हैं। बेटियाँ तो अक्सर भाभी के लिये तोहफे लेकर आती हैं। भरे पूरे मायके में आने से उनका भी तो ससुराल में मान बढ़ता है। इन्हीं सबसे इस परिवार की प्रतिष्ठा बनी हुई है। बहू को तो परिवार की प्रतिष्ठा की समझ ही नहीं है। शायद आजकल की अधिकतर युवतियों को ही नहीं है। अपना पति, अपने बच्चे, अपनी शान–शौकत से भरी जिंदगी, अपना अधिकार, अपनी सत्ता। इन सबके लिये चाहिये पैसा। जैसे बटोर सको, बटोरो। इसी में चौंधयाई

हुई हैं। प्रतिष्ठा की फिक्र तो हम जैसों को होती है। सच तो यह है, मुझे जितना प्रेम अपने बेटे–बेटी, नाती–पोते से है, उतना ही परिवार की प्रतिष्ठा से है। बल्कि कुछ ज्यादा ही। अपने जीतेजी तो मैं इस प्रतिष्ठा को बचाये ही रखूँगी।

उसकी आँखों में पानी छलछला आया था...जाने मेरी मौत के बाद इस परिवार की प्रतिष्ठा का क्या होगा।

परिवार की प्रतिष्ठा! अच्छे से जानती हूँ, यह तो उसकी घुट्टी में रही है। याद आया, कॉलेज के दूसरे साल में थी कि पड़ोस के एक लड़के से प्रेम कर बैठी थी। लड़का एम. ए. का छात्र था। यह कुछ–कुछ पूछने उसके पास जाती थी। भीतर–ही–भीतर प्रेम का सागर हिल्लौरें ले रहा था, मगर बातें हो पाती सिर्फ पढ़ाई की। मुझसे चिरौरी करने लगी...तू उससे पूछ न, क्या वह मुझे चाहता है। लड़का पहले ही मुझे अपने जजबात बता चुका था। बोली–अगर वह "हाँ" में जवाब दे, तो क्या तू उससे शादी कर सकेगी! वह एकदम खामोश हो गई। फिर बोली–मैं ऐसा नहीं कर सकती। वह दूसरी बिरादरी का है। बाबूजी को बहुत दुख होगा। समाज में हमारे परिवार की बदनामी होगी। उसकी आँखें छलछलाने लगी थीं...मैं इस दारुण दुख को चुपचाप पी लूँगी रे, मगर परिवार की प्रतिष्ठा कलंकित नहीं कर सकती।

और आज!

आज भी उसकी आँखों में पानी छलछला आया था...जाने मेरी मौत के बाद इस परिवार की प्रतिष्ठा का क्या होगा!

विगलित नेत्रों से देखती रह गई मैं, परिवार की प्रतिष्ठा का दुर्भर बोझ उठाये उस जर्जर अंतिम स्तंभ को।

समीक्षा |

उजली अभिलाषाओं के विहान की कविता

डॉ0 देवकीनन्दन शर्मा,
पूर्व असोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष,
हिन्दी अध्ययन एवं शोध–विभाग,
गुलावठी (बुलन्दशहर) उ0प्र0,
मो0नं0–09837573250

कविता एक बौद्धिक व्यायाम अथवा एक भावनात्मक अभ्यास मात्र नहीं है और न शब्दों में व्यक्त एक काल्पनिक अभिव्यक्ति मात्र है। वस्तुतः कविता कुछ और अधिक है। यह कवि की चेतना के भीतर प्रेरणा का अवरोहण है। युवा कवि मुकेश निर्विकार का प्रथम कविता–संग्रह 'हत्यारी सदी में जीवन की खोज' एक ऐसा ही सारस्वत उपक्रम है, जिसमें कविता कवि की अन्तः प्रेरणा का अवरोहण स्पष्टतः दृष्टिगोचर हुआ है। 'मैं हैरान हूँ' कविता की पंक्तियाँ, ''आखिर, यह बेरंग मिट्टी भी/न जाने कैसे उगा देती है/अपने अन्दर से/पादपों की हरीतिमा और/पुष्पों के चटख रंग?''(पृ0 1 1 3) कवि की अन्तःप्रेरणा का ही अनुभव कराती है। इतना ही नहीं, परिवेश में सूक्ष्म को देखने की कवि की अन्तर्दृष्टि चुनिन्दे शब्दों में प्रवाहमान होते हुए पाठक को ऐसे विशिष्ट लोक में ले जाती है, जहाँ वह कथ्य को जीवन्त अनुभव करता है। 'जीने की प्रत्याशा में' कविता में यही सम्मूर्त हुआ है, ''सुख–चैन वर्तमान का/चढ़ जाता है/भविष्य की किसी सलीब पर/लटका दिया जाता है/मेरे मन का ईसा/कील–कील ठोक कर''(पृ0 59–60)

'हत्यारी सदी में जीवन की खोज' संग्रह सच्चे अर्थों में समकालीन जीवन–दर्शन का दर्पण है। कवि की मनःस्थिति देश और समाज की घटनाओं की जानकारी देते हुए समय, नैतिकता, मनुष्यता, दायित्व आदि का साक्षात्कार कराती है। यदि 'जीवन–यात्रा में वापसी नहीं होती', 'शांति–पान', 'असीम– ससीम', 'अनन्त' आदि कविताओं में दार्शनिक सरोकार साकार हुए हैं, तो 'रोटी का प्रश्न', 'फेरीवाला', 'जमाने के हाई–वे पर', 'मेल–बेमेल', 'तख्ती पर सिद्धान्त', 'युग–यथार्थ', 'काश! आदमी सिर्फ आदमी होता', 'आखिर क्यों' आदि कविताओं में सामाजिक विमर्शों की तटस्थ पड़ताल हुई है।

कवि भली प्रकार जानता है कि आज स्वत्व का संकट सबसे विकट है। व्यक्ति अपनी पहचान के लिए छटपटा रहा है। अनेक वर्जनाओं और दमघोंटू वातावरण में भी वह जीने की आशा नहीं छोड़ता है। 'तय है' कविता में कवि दुःखी मन से कहता है, ''निर्विकार' तुम्हारा तो तय है/भूखों मरना/और दुःखी रहना भी/तुमने इस कलिकाल में/ उसूलों को निभाने की बेहूदी कसम जो खायी है''(पृ.–97) मगर 'मेरी गर्दन गिलोटिन पर टिकी है' कविता में वह 'नाउम्मीद होना नहीं चाहता है''(पृ0–25) यद्यपि उसकी गर्दन गिलोटिन पर टिकी है।

कविता आत्मविश्वास के धरातल पर स्वांतः सुखाय लिखी जाये तो अन्तर से टपकता आत्मरस उसे उसी भाव में विभोर किये रहता है। यह स्थिति श्रेयस्कर भी है; क्योंकि कविता और जीवन का तादात्म्य ही काव्य–साधना का मार्ग है, सृजनशीलता का स्रोत है। इस धरातल पर आलोच्य कविता–संग्रह सौ प्रतिशत खरा उतरता है; क्योंकि युवा कवि मुकेश निर्विकार ने अपने कथ्य को सर्वत्र आत्मरस में डूबोकर ही प्रस्तुत किया है। उन्होंने यथार्थ की अँधेरी वीथियों में विचरण करते हुए जिस निष्ठा से अपनी अनुभूतियों को पुष्ट किया है, वह निश्चय ही आश्वस्तकारी है। 'मालियों पर कब किसी ने लिखे लेखे' नामक कविता का यह अंश कवि की आत्मा का अमृत ही है–''जड़ें जब छोड़ती हैं साथ तो/विलुप्त हो जाता है सारा सौन्दर्य चमन का''(पृ0 34)

युवा कवि निर्विकार ने अपनी माटी से जुड़कर एक नयी भाषा का मुहावरा गढ़ा है। उन्होंने सहज एवं साफ–सुथरी भाषा में मौलिक बिम्बों का सृजन करते हुए ऐसी इन्द्रधनुषी भाव–छवियों को प्रस्तुत किया है, जो पाठक को आनन्दित करने के साथ–साथ आन्दोलित भी करती है। 'जीवन–यात्रा में वापसी नहीं होती' कविता का यह अंश द्रष्टव्य है, ''समय अनन्त है, किन्तु अंत में/यही पड़ेगा कम/रीत जायेंगी अवसरों की तमाम हांड़ियाँ/भरा करेंगे उन्हें हम नाहक टप–टप–टप–टप../प्रायश्चित के आँसूओं से../पल–पल देखते–देखते मरने की राह।'' (पृ0 11) ''जीवन वृत्ति कसाईगिरी है।'' (मेल–बेमेल पृ0–52), ''बहुत सुखद् होता है/किसी अलभ्य सुख की आस में/जीवनभर कलपते रहना!''('सुख' पृ0–63) ''स्वर्ग का नाला खुदवाइए तो जरा! माँओं के कंकाल/कुलबुला रहे हैं/उनमें!'' (स्वर्ग का नाला, पृ0–88)–जैसे काव्यांश कवि की सशक्त लेखनी की बदौलत ही प्रस्तुत हुए हैं। कहने को तो यह कवि का प्रथम कविता–संग्रह है, परन्तु इसके कवित्व और सरोकारों का फलक बहुत व्यापक है, जिसमें वैश्विक उत्तरदायित्वों के सफल निर्वहन की उजली अभिलाषाओं के विहान का प्रकाश

कविता :

डॉ. अशोक सिंह
दुमका
7050782728

बिचौलिये

बीच के रास्ते की तरह होते हैं
जब कहीं किसी काम में
नहीं दिखता कोई रास्ता
वे निकाल देते हैं
बीच का रास्ता
बना देते हैं कठिन से कठिन काम आसान !
गजब की खासियत है उनमें
वे बिगड़े हुए काम बना सकते हैं
और बिगाड़ सकते हैं बना हुआ काम भी

अगर आप उदार हैं उनके प्रति
तो वे पुल बन सकते हैं आपके लिए
अगर विरोधी
तो आपके रास्ते की खायी बनते भी
देर नहीं लगेगी उनको

बहुत लम्बे होते हैं उनके हाथ
दूर–दूर तक फैली होती हैं उनकी पहुँच की जड़ें
नेता अफसर हो या मंत्री संतरी
सब पर मजबूत पकड़ होती है उनकी

वे जानते हैं असंभव को संभव
और संभव को असंभव बनाने की तकनीक
उनकी जेब में मौजूद हैं
सभी बंद मस्तिष्क जुड़े
छोटे–बड़े तालों की चाभियाँ

वे बनवा सकते हैं पुल वहाँ भी
जहाँ पुल की जरूरत नहीं है
और तो और
बनी हुई सड़क पर सड़क
और खुदे हुए तालाब में भी
खुदवा सकते हैं तालाब
मरे हुए आदमी के नाम पर
दिलवा सकते हैं वृद्धा–पेंशन
और बिन बच्चेवाली माँ को भी मातृत्व अनुदान
सुहागन को विधवा–पेंशन
और विधवा को सुहागन बनाकर
मुख्यमंत्री कन्यादान योजना का
लाभ दिलवाने की कला भी जानते हैं वे
पक्के मकानवालों को इंदिरा आवास
और मोटर साइकिल उड़ानेवाले को
लाल–कार्ड दिलवाना तो
बायें हाथ का खेल है उनके लिए!

वे जिन्दा लोगों के नाम
हटवा सकते हैं मतदाता सूची से
और दिलवा सकते हैं
मरे हुए आदमी के नाम पर भी वोट
अनचाही मदद
और बिन मांगी सलाह देने के आदी रहे हैं वे
उनकी कहीं कोई दुकान नहीं होती
बल्कि वे होते हैं खुद एक चलती–फिरती दुकान
कोर्ट कचहरी बैंक हो या प्रखण्ड कार्यालय
सभी जगह मौजूद होते हैं वे
लोगों की मदद के लिए तत्पर

आप भले ही कह लें उन्हें बिचौलिये
पर वे स्वघोषित सामाजिक कार्यकर्ता हैं
मुर्गी सूअर बकरी पालने की इच्छा रखनेवालों को
गाय–भैंस दिलवाकर
और गाय–भैंस पालने की इच्छा रखनेवालों को
सूअर–बकरी दिलवाकर
सबको सरकारी योजनाओं से जोड़ रहे हैं वे

कुछ दबे–कुचले पिछड़े कमजोर लोगों का मानना है
चाहे जो भी हो जैसा भी हो
बिचौलिये होते हैं लिए बहुत महत्त्वपूर्ण

यहाँ तक कि कुछ बड़े और ताकतवर लोग भी आज
उनकी महत्ता से इनकार नहीं करते
हाँ यह अलग बात है कि
वैसे लोग पीठ पीछे उनकी आलोचना करते
लोगों को उनसे सावधान रहने की सलाह देते हैं !

और तो और
सबसे अजीबोगरीब बात तो यह
बिचौलिये सबसे ज्यादा सक्रिय देखे जाते हैं वहीं
जहाँ की दीवारों पर उनके विरुद्ध
उनसे सावधान रहने की
तख्ती टँगी होती है!

सब कुछ तय कर लिया जायेगा
तय करने से पहले
यह तय है कि
सब कुछ तय कर लिया जायेगा
तय करने से पहले

तय कर लिया जायेगा
क्या करवाना है तय
कैसे और किसके पक्ष में

यह भी तय रहेगा
कि कौन रखेगा प्रस्ताव
और कौन करेगा समर्थन

लिखेगा कौन सभा की कार्यवाही
कौन लिखावयेगा,
क्या लिखवायेगा
सब कुछ तय रहेगा
तय करने से पहले

सब कुछ पहले से तय रहेगा
और तयशुदा ढंग से
करवा लिया जायेगा सब कुछ तय

तय किया रहेगा यह भी
कि कौन बोलेगा सभा में सबसे पहले
और कौन सबसे अंत में
किसे, कितना और कब बोलने दिया जायेगा
इतना तक भी तय रहेगा

इतना तक भी रहेगा तय
कि कितना सच बोलना है
मिलाना है उसमें कितना झूठ

सब कुछ तय रहेगा
कि कौन किस पर नजर रखेगा
और कौन कब–कब
कहाँ से बैठकर बजायेगा तालियाँ

इस तरह जबकि तय है
कि सब कुछ तय किया रहेगा
हम सबसे तय करने से पहले
और उन्हीं का तय किया हुआ होगा
अंतिम रूप से तय और मान्य

तो क्षमा करना दोस्तो !
इस तयशुदा ढंग से प्रायोजित सभा में
शामिल नहीं हो सकता मैं तुम्हारे साथ
तुम्हें जाना है तो जाओ! तुम्हें जाना है तो जाओ !!

कविताएँ

डॉ0 रूपचन्द शास्त्री 'मयंक'
अमाऊँ
उधमसिंह नगर, उत्तराखण्ड
9997996437

सबके प्यारे बन जाओगे

मैं तुमको गुरगल कहता हूँ
लेकिन तुम हो मैना जैसी
तुम गाती हो कर्कश सुर में
क्या मैना होती है ऐसी

सुन्दर तन पाया है तुमने
लेकिन बहुत घमंडी हो
नहीं जानती प्रीत–रीत को
तुम चिड़िया उदण्डी हो

जल्दी जल्दी कदम बढ़ाकर
तुम आगे को बढ़ती हो
अपनी सखी सहेली से तुम
सौतन जैसी लड़ती हो

भोली–भाली चिड़ियों को तुम
लड़कर मार भगाती हो
प्यारे–प्यारे कबूतरों को भी
तुम बहुत सताती हो

मीठी बोली से ही तो
मन का उपवन खिलता है
अच्छे–अच्छे कामों से ही
जग में यश मिलता है

बैर भाव को तजकर ही तो
अच्छे तुम कहलाओगे
मधुर वचन बोलोगे तो
सबके प्यारे बन जाओगे

छोटी–छोटी–सी बात

याद है मुझे बरसों पहले
अवगुंठित वधू वेश में
सकुचाई आई थी इस घर में
अँधेरी बीती रात में
घर ने हँसकर मुझे
भर लिया था बाँहों में
लेकिन चीजों से परिचय
नहीं हो पाया था–यह याद है मुझे
अँधेरा जो था, सब अधजागे
अधसोये से थे लोग, चीजें भी
आकृतियों की पहचान अँधेरा
लील जो लेता है
भोर की अँखुआई किरण के आने के
पहले ही आदतन मैं जागी थी
सबसे पहले...
उन भिनसारे में, घर के भीतर दबे पैरों
दाखिल होती धूप की फैलती उजास में
मेरी जान–पहचान की शुरुआत हुई थी
घर के लोगों से और न जाने कितनी चीजों से
यह बरसों पहले की बात है
बरामदे की रेलिंग से घर के बीच
चौकोर आँगन दिखा और
कुछ और भी देखा मैंने कि बस
चिहुँक सी गई चक्की (जाँता)
शहर के घर में इसका क्या काम
किससे पूछती, नया माहौल और
अनजाने लोगों का संकोच
धीरे–धीरे तो जान ही गई कि
बड़ी अम्माँ अपने दोनों पैरों के बीच
जाँते के दबाये
अरहर, चना, मसूर, चावल को
सूप से फटकती, भर–भर मुट्ठी दाल
जाँते में डालती जाती और शुरू हो जाती
उनकी घर, परिवार, गाँव, मोहल्ले की
चटपटी, खट्टी–मीठी और कभी कभार
तीख–कड़वी, छोटी–बड़ी कहानियाँ
और किस्से, सब याद हैं मुझे जबकि यह
बरसों पहले की बात है
कभी–कभी तो दिन–दिन भर हम
उनसे किस्से, कहानियों के सम्मोहन में बँधे
जान भी नहीं पाते कि
कब शाम का अँधेरा चोर की तरह
उस छोटे कमरे में घुस जाता और उधर
शाम उतरने के साथ ही बड़ी अम्माँ के
बिन रुके, घूमते हाथों की लय के साथ–साथ
जाँते में गिरती अरहर, मसूर और चना
कब दालों की शक्त अख्तियार कर लेते
हम कैसे जान पाते?हम बड़ी अम्माँ के
किस्सों में मशगूल थे–बहुत बरस हो गये
इस बात को, लेकिन मुझे याद है
चना सत्तू की शक्ल में बदल, बेसन की
सोंधी महक में डूब, जब हमारे सामने
जमीन पर बिखर जाते ढेरियों में
तब टूटता तिलिस्म बड़ी अम्माँ के किस्सों का
तब हमपर जाहिर होती बड़ी अम्माँ और
जाँते की मिली–जुली साजिश, जो चूल्हे पर चढ़ी
देगची से सौंधी–सौंधी महक उड़ाती थी

वसंत के आते ही

निःसंग, निर्विकार, निर्लिप्त
फूल–पात विहीन सेमल गाछों ने
उतार फेंके बदरंग वैराग्य के चोले
प्रेम–अनुराग, आसक्ति के रक्ताभ
फूलों के झुमके कानों में धार
बन बये रसिया–रंगीले
घर के पिछवाड़े मैदान में
यह सेमल गाछ खड़ा है आजतक
वैराग्य भाव से भरा–भरा
निर्लिप्तता में रचा बसा
बसंत से भी उचटा–अनमना
सूखी काली टहनियाँ में लटके
गोल–गोल काले ही फूलों के गुच्छे
आसक्ति के रक्तिम लाल रंग में
रंग नहीं पाते क्यों
ओ समेल गाछ! ऐसे रूखे–रूखे
तुम क्यों भला इस वसंत में.....

पुस्तक–समीक्षाएँ

समीक्षक
दयानन्द जायसवाल
प्रधान सम्पादक
सुसंभाव्य

1. 'कर्ण' डॉ. अमरेन्द्र (भागलपुर, बिहार) का बरसों के खालीपन को पूरा करनेवाला आधुनिक भारतीय महाकाव्य– काव्यसाहित्य का एक अद्‌भुत चमत्कार है। अबतक की प्रकाशित कृतियों में 'कर्ण' इनकी साहित्यिक साधना का श्रेष्ठांश है। तेईस पर्वों एवं सर्गों में विभक्त इसक 'कर्ण' महाकाव्य में 'महाभारत' में दर्शाये गये कर्ण के व्यक्तित्व और 'रश्मिरथी' में दिनकर के दर्शाए गए वीर योद्ध के स्वरूप से बहुत आगे कर्ण के व्यक्तित्व में आए कई अनछूए पहलुओं को इन्होंने उजागर किया है।

इस महाकाव्य के लिखते समय डॉ. अमरेन्द्र अपनी कवित्व की सारी कोमलता को अंग की संस्कृति से जोड़कर कर्ण से एक गुहार लगा ही दिए, जो आजतक किसी कवि या लेखक नहीं कर पाए–

''अंग के तुम भूप होगे, यह तो निश्चित
पर भूलना तुम नहीं ये बात किंचित्
अंग के अनुकूल सारे आचरण हो
इस धरा पर स्वर्ग का फिर संचरण हो।''

कर्ण का अधिरथ के घर बड़ा होना और कोकिला का कौओं के नीड़ में बड़ा होना, क्या यह दोनों किसी प्रकार से जुड़े हुए नहीं हैं?कर्ण का यह मानना है कि भले ही कोकिला कौओं के घोंसले में ही क्यों न पली बढ़ी हो, समय आने पर वह अपनी कूक से पूरे जगत को यह बता देती है कि वह कौन है, क्या यह अनेक पूरे जीवन भर के संघर्ष का ही सार नहीं है?कर्ण ने अपना पूरा जीवन अपनी पहचान ढूँढ़ने में लगा दिया और जब उनको अपने कुल का ज्ञान हुआ भी, उन्होंने हँसते–हँसते उसका त्याग कर न केवल उच्च कोटि का स्थान प्राप्त किया, बल्कि दानवीरता के रूप में आजतक ध्रुव तारे के समान भारतीय विचारधारा को सुसज्जित कर रहे हैं। महाभारत का एक बहुत बड़ा कारण कर्ण था। सुयोधन चाहे कितने ही शकुनी ले आता, यदि पूरे विश्व को झुकाने का सामर्थ्य था तो केवल कर्ण में। कुंती को दिए गए वचन के अनुरूप कर्ण ने कितनी ही बार युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव को युद्ध में जीवन दान दिया। यदि वह चाहता तो युधिष्ठिर को परास्त कर युद्ध समाप्त कर सकता था (क्योंकि युधिष्ठिर के पतन के साथ अर्जुन भी युद्ध छोड़ देता), परन्तु माता को दिए गए वचन को वह संग्राम की गर्मी में भी नहीं भूला। ऐसा दान केवल ज्येष्ठ कौन्तेय कर्ण ही कर सकता था। यदि युद्ध और योद्ध धर्म के दायरों में महाभारत हुई होती तो निश्चय ही कर्ण मृत्युंजय था।

कर्ण न सिर्फ बलवान थे, बल्कि बहुत ही दयावान व्यक्ति थे। किसी की मदद करने के लिए कर्ण सदैव तत्पर रहते थे। पिता सूर्य द्वारा दिये कवच और कुंडल को युद्ध से पहले इंद्र ने दान में माँगा और कर्ण ने सब कुछ जानते हुए भी इंद्र को इन्हें दे भी दिया। श्रीकृष्ण ने जब कर्ण को कहा कि वे दुर्योधन को छोड़ पांडवों की ओर से युद्ध करें और इसके लिए उन्हें पूरा राज्य मिल जाएगा। लेकिन कर्ण ने ऐसा नहीं किया; क्योंकि वे दुर्योधन को धोखा नहीं दे सकते थे। महाकवि अमरेन्द्र के शब्दों में कर्ण ने खुद कहा–

''दे दिया है दान जीवन कौरवों को
अब कहाँ इसपर मेरा अधिकार कुछ भी
मैं सुयोधन के लिए रण को समर्पित और सारे लोभ सुख के बंद, वर्जित।''

इनके 'कर्ण' से हमें सीख मिलती है कि विनम्रता और दया कैसे किसी इंसान को साधारण से महान बना सकते हैं और वचनबद्धता कैसे किसी पुरुष को महापुरुष बना सकती है।

कर्ण के अंतिम क्षण भी अत्यन्त मार्मिक है। इक्कीसवें सर्ग में भीमपुत्र घटोत्कच सारी कौरव सेना का संहार कर देगा तो दुर्योधन ने कर्ण से यह निवेदन किया कि वह किसी भी प्रकार से इस समस्या से छुटकारा दिलाए। कर्ण को विवश होकर शक्ति अस्त्र घटोत्कच पर चलाना पड़ा। यह अस्त्र देवराज इन्द्र द्वारा कर्ण को उसकी दानपरायणता के सम्मान स्वरूप दिया गया था, लेकिन कर्ण इस अस्त्र का प्रयोग केवल एक ही बार कर सकता था, जिसके बाद यह अस्त्र इन्द्र के पास लौट जाएगा। इस प्रकार शक्ति अस्त्र का प्रयोग घटोत्कच पर करने के बाद वह अर्जुन पर कोई अमोघ प्रहार नहीं कर सका और सब बाईसवें सर्ग में एक ऐसा क्षण आया, जब कर्ण का रथ रक्त–कीचड़ में फँसा देख कृष्ण ने अर्जुन से कहा–

''पार्थ उठाओ धनुष, कीच में रथ है, यही समय है
एक तीर जो चला कर्ण पर, पल में पास विजय है
कुछ कुछ सुना, नहीं सुन पाया, लेकिन भेद खुला था
देख गगन पर गगनस्वामी का झुका हुआ सा माथा।''

संकट में घिरे कर्ण जरा भी विचलित नहीं होते हुए कृष्ण से कहा–

''देख रहा हूँ धर्म–कर्म को, जिसको चला निभाता
वही आज इस संकट में मुझसे संबंध छुड़ाता
कौन करेगा ऐसे में विश्वास धर्म पर कल से
भक्तों के ही प्राण छले, संकट में आकर छल से।''

कर्ण के विराट व्यक्तित्व और उनकी जीवनगाथा को आधार बनाकर लिखा गया यह शोधात्मक 'कर्ण' महाकाव्य पहली बार पाठकों से रू–ब–रू हुआ है, जिसमें कवि अमरेन्द्र ने अपनी पीड़ा, अपना दंश, अपना आक्रोश, अपने मन का उल्लास, चरित्र की सूक्ष्म पकड़ एवं मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति अभिव्यक्त की है।

महाकाव्य में कर्ण का जन्म, लालन–पालन, प्रशिक्षण, विविध श्राप, श्रापों का प्रभाव, चरित्र, क्रीड़ा, सैन्य अभियान, कृष्ण और कर्ण, कुंती और कर्ण, कवच–कुंडल रहस्य, सुयोधन और कर्ण, परशुराम और कर्ण, अर्जुन और कर्ण, महायोद्धा कर्ण की छवि, यथार्थ की अनिवार्यता, रस–छंद–अलंकार से सुसज्जित, भाषा शैली एवं बिम्ब विधान में कोमलता, कठोरता, करुणा, क्रोध, मधुरता, प्रचंडता, आर्द्रता, मनोहरता, ममता आदि गुणों के तालमेल की उपादेयता, काव्यकला की पूरी रमणीयता, सर्जनात्मक कल्पना, बिम्ब सृजन में विशिष्ट भूमिका, रूप–रंग, गंध, स्वर, स्वाद, स्पर्श और संवेदनाओं की अनुभूति, मूर्त या अमूर्त प्रतीक की प्रस्तुति, तार्किकता, अलौकिकता, मानव जीवन की प्रासंगिकता, पात्र आधारित मूल्यों का संप्रेषण आदि सुसज्जित एवं सुसंस्कृत विवरण रचनाकार की कुशलता का कौशल इस महाकाव्य में देखते ही बनता है।

शास्त्रीय काव्यात्मकता, साहित्यिक व्यापकता, नैतिकता, मनोवैज्ञानिकता का दुर्लभ मेल इस 'कर्ण' महाकाव्य को जाग्रत चेतना का अभूतपूर्व आख्यान कहा जा सकता है। पुस्तक पठनीय व संग्रहणीय है। सफलता के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ!

2. 'शिशिर की धूप' डॉ. आभा पूर्वे (भागलपुर, बिहार) की यह अनुपम कृति गीत, ग़ज़ल, कविता और हाइकुओं का संग्रह परिस्थितियों, संदर्भों, वातावरण, संयोग, वियोग, परिवार, समाज, देश, काल एवं पात्र आधारित अनुभूति की सरस अभिव्यक्ति है। इस संग्रह के गीतों को जैसे–जैसे पढ़ते जायेंगे, वैसे–वैसे गीतों का फलक विस्तार लेना शुरू कर देता है। इसमें कवयित्री जीवन दर्शन, गीतों का सौंदर्य, अलौकिक प्रेम, बौद्धिक सौंदर्य आदि का संतुलित समावेश कर सारभौमिक तत्व को उजागर करना चाहती हैं तथा संघर्ष और शांति से जीवन में आए संत्रास को खत्म करना चाहती है।

मानव मूल्यों पर आधारित इनके इस काव्य से इकतालिस गीतें, चार कविताएँ, आठ ग़ज़लें और एक सौ हाइकू का आनंद हम पा सकते हैं कवयित्री डॉ. आभा अपने गीतों में संवेदन की गहराइयों को परत दर परत उकेरने का काम की हैं–

''आँसू, पीर, अभावों का
यह वर्तमान भी क्या है
माँगो सुख तो
दुख आ ढलके
मेरी खुशी
वहीं आ लपके
सबके हिस्से में वसन्त है
मेरे हिस्से में है पावस
जग जिससे परहेज करेगा
मेरे लिए बने हैं पावन
कोई न कुछ समझेगा
मन का यह विज्ञान भी क्या है...''

इनके पास अनुभूति की सघनता जितनी गहरी और प्रशांत है, अभिव्यक्ति उतनी ही तीव्रतर और नव्यतर है। गीतों में अंतर्व्यथा की ऐसी झनकार झंकृत होती है, जिसमें वेदना व्यक्तिगत न होकर समष्टि मूलक है। गीत के सार में विचारों तथा मनोजगत के भावों व अनुभवों की खूब चहलकदमियाँ हैं। गीत वैचारिक रूप में जितना सचेत है, उतनी ही कलात्मक सरोकार के प्रति तथा अपने शिल्प के प्रति भी बेहद सचेत है–

''ओ घटाओ! आज बरसो
फिर बरसने को न तरसो
यह धरा भी बहुत प्यासी
ढो रही है बदहवासी
शांत हो ले आग में की
इस कदर तुम आज परसो....।''

अगर कहीं व्याकरण या अनावश्यक विस्तार को अनदेखा भी किया गया है, तो बिम्बात्मकता, सुगढ़ता, लयात्मकता, निरंतरता और रसात्मकता को ध्यान में रखा गया है। गीत में रिश्ते को खूबसूरती से एक खुशगवार रिश्ता की तरह बुनी है। कहीं भी पुरुष विरोधी सोच नहीं है, सही और गलत की निर्णायक सोच अच्छी है। न कोई अनुबंध और न कोई सामाजिक दबाव है, बल्कि रिश्तों को बिना बोझ बनाये सम्मान और प्रेम की भावना पूर्ण समर्पण भाव से अभिप्रेत अनुभूति इनके गीतों में है–

''सावन बनकर तो आये तुम
पर सावन के जाते–जाते
आग लगी तन–मन में
देखी कभी नहीं थी ज्वाला
ऊपर उठते घन में

उमड़ा था आकाश
अनल की बूँदें बरसती थीं
एक बूँद जल की ही खातिर
धरती तरसी थी
रोया था मन विलख–विलखकर
आँसू नहीं नयन में....।

इनकी भाषा बहुत सहज, सरल और ग्राह्य है। इस संग्रह में आनेवाली हिन्दी ग़ज़लें जिस भाव और कथ्य को लेकर आगे बढ़ी है, वह आत्ममुग्धता दम्भरहित विभिन्न भावभूमि के तथ्यों एवं कथ्यों से गांभीर्य है। जीवन और आधुनिकता के बीच अंकित रेखाचित्र उसके अस्तित्व की तलाश में है–

''जब भी दिल को खोला है
दुनिया बन गई शोला है
सबको साधु संत समझता
वह भी कितना भोला है
दिल को खाली–खाली पाया
जिसको जब भी तोला है
आँसू आहें कदम–कदम पर
जीवन नहीं फफोला...।''

ग़ज़लों में सौंदर्यबोध और उसकी कलात्मकता को आहत भावनाओं के प्रेमबिन्दु पर लाकर खड़ा कर दी है। कहीं–कहीं ख्वाब के मंजर ने कल्पनाशीलता के नये–नये रंग बिखेरे हैं–

''इस दुख का कुछ पार नहीं है
घर है पर परिवार नहीं है
सौ–सौ खून किये बैठे हैं
कातिल का व्यवहार नहीं
मिलती हों जब उनसे नजरें
मिलना भी दुश्वार नहीं है....।''

शेरों को ढालने का हुनर जो ग़ज़लकारा के पास है वह निखरा, परिपक्व तथा यथार्थमूलक है। अगर कहीं उर्दू के शब्द की शुद्धता पर ध्यान दिया जाता तो ग़ज़ल और भी स्तरीय होती। फिर भी अभिव्यक्ति समान रूप से प्रभावी है। संतुलन और प्रबंधन में भी खूबसूरती है। संवेदना के उत्स का व्यापक संस्पर्श को शिखर तक ले जाता है। सोच, शब्द, शिल्प और अंदाज ए बयां में अहसास का मंजर दिखाई देता है।

इसके अलावे इस संग्रह में सर्वाधिक व चर्चित लघु कविता हाइकु भी गहन अनुभूति की सरल–सहज, लय, ध्वनि, लक्ष्यार्थ, बिम्ब आदि से अधिक प्रभावपूर्ण है। वह जीवन्तता का संदेश देते हैं, जिसमें व्यंजना का सुंदर निर्वाह हुआ है। स्मृति के मनोरम दृश्य, कल्पना के द्वारा बिम्बों का सजीव चित्रण, दर्शन, मानवीय परिप्रेक्ष्य में प्रकृति चित्रण एवं जीवन और जगत् के बारे में संतुलित व व्यापक दृष्टि है।

3. 'हथेली भर धूप' कवयित्री मंजूला उपाध्याय 'मंजुल' (पूर्णियाँ, बिहार) का यह कविता संकलन सामाजिक सीमाओं और मर्यादाओं का प्रतीक, अमल और स्मिता का अस्तित्व, मानवीय रिश्तों में विश्वास और आत्मीयता की संवेदना तथा विकासशील संस्कृति की परिकल्पना है। इस संकलन में सामाजिक बदलाव की स्पंदनशील कविताएँ, जिसमें खलबलाहट है और बेचैनी भी।

साहित्य की किसी भी विधा में यह अपेक्षा हमेशा रहती आयी है कि वह मनुष्य के संस्कारों को परिष्कृत करें, उसमें मानव मूल्यों की चिंता हो, जीवन शैलियाँ हों, जिसका निर्वाह इन्होंने अपनी कविताओं में की है। इनकी कविताओं में रिश्ते की पहचान है, कविता पहचान की गवाही है, जिंदगी के नैतिक फैसलों, न्याय और अन्याय की संघर्षभूमि है। सौंदर्यों को बटोरे हुए रंगों और गंधों की रासलीला है। सर्जनात्मक आत्मदृष्टि है–

''जिंदगी है एक झंझावात
तुम पतवार होते
नाव होते
और तट भी
तुम्हीं पावसी मँझधार होते
मगर, मेरे माँगने से क्या मिला?''

सजने लगी
साहित्यांगन में
छप्पन भोग की तरह
शाश्वत कविताएँ
तब अचानक भिनभिनाती हुई
मँड़राने लगी
कुछ खोजी जीवों की
बदबूदार प्रदूषण फैलती
प्रवृत्तियाँ।''

इनकी पुस्तक कविता संग्रह में कुल अठहत्तर कविताओं का संकलन है, जिसके अंदर विभिन्न सौंदर्य है। जहाँ आनंद उपक्षित हो गया है और रोटियाँ मनुष्यों की दोनों आँखों के अत्यन्त समीप आकर खड़ी हो गयी हैं। इतना समीप कि उससे आगे मनुष्य को कुछ दिखाई नहीं पड़ती। ऐसे में भी कवयित्री की कविताएँ धूल–धूसरित मुस्कान हैं मुस्कानों का रसास्वादन है। हाय–हाय करते, पीड़ा में जीते, संवेदनाओं में पलते आंचलिकता की जीवनधारा में ठहराव की उत्कृष्टता है–

''बाजरे की रोटी के संग
सरसों के साग का
सूखी आँतड़ियों में
उतर जाना
पीयर माटी में
लीपे आँगन में
खर्राटे भरना
मुझे अच्छा लगता है।''

इनकी कविताएँ नैतिक उद्देश्य की आराधना है, शब्द सौंदर्य से अभिप्रेत निर्मल आनंद की धारा है तथा प्रेरणाभरी दृष्टि है, पग–पग पर छोटी–बड़ी तमन्नाएँ हैं, विलक्षणता का स्पर्श, चिंतन प्रधान है। सरल और सरस भाषा में अभिव्यक्त यह पठनीय हमें पुस्तक उद्भावना प्रकाशन से प्रकाशित है।

4. अशोक सिंह ऊर्फ मिजाज (सागर, मध्यप्रदेश) का ग़ज़ल संग्रह 'अशोक मिजाज की चुनिंदा ग़ज़लें' खुद गुफ्तगू करती बेतरतीव ख्वाबों की तरह वजूद की रेतीली जमीन पर रेत–रेत लहू बनकर उतरती अपना निशान छोड़ जाती है, जिसमें नैसर्गिकता की तमाम ऊँचाइयाँ, गहराइयाँ और मदहोशियाँ शामिल हैं। कहीं न कहीं कोई याद, कोई झलक, कोई तड़प, कोई कसक, कोई छुअन, कोई महक बिखरी हुई हैं।

अपनी ग़ज़लों में मिजाल साहब यथार्थता–सम्प्रेषण के साथ–साथ कल्पना और सौंदर्य का भी प्रमुखता से विवेचन किया है। ग़ज़ल की परंपरा में यही एकउपलब्धि है। सुंदर, सुगठित शब्द संयोजन, हृदय की गहराई की रसात्मक अनुभूति, मार्मिक चित्र शैली, शिल्प, भावपद्धति और जीवन दृष्टि इनकी ग़ज़ल की धड़कनें हैं।

प्रतिपाद्य की दृष्टि से ग़ज़ल का प्रत्येक शेर एक स्वतंत्र इकाई है, जिसका मतला दिल की गहराई से बात करता है। मानव की पीड़ा तथा उसके संयम के बीच संघर्ष को प्रकट करता है। आज के दौर में परिवर्तनों को नवीन विशिष्टताओं से जोड़ते हुए कहते हैं–

''खुले जमाने से घुँघट की आस छोड़ो भी
नई ग़ज़ल का पुराना लिबास छोड़ो भी।''

इनकी ग़ज़ल ने जीवन के एकांगी रूप को टटोलने की अपेक्षा जीवन की प्रत्येक पर्त को उखाड़कर देखा है। जीवन की छोटी–से–छोटी घटना को हर कोण से जाँचा व परखा है। जीवन जगत की समसामयिक परिस्थितियों में और अधिक सुंदर बनाने का उद्देश्य प्रस्तुत किया है। सतही भावुकता को त्यागकर, युग की विडम्बनाओं से संपृक्त कर संघर्ष और आशावाद का स्वर मुखरित किया है–

''हमारे मुल्क का कानून भी दयालू है
सजा–ए–मौत सुनाकर भी छोड़ देता है।
मैं दोस्ती के लिए हाथ जब बढ़ाता हूँ
वो मेरे हाथ को पंजा मरोड़ देता है।

और एक वो है, जो सरहद पे आज है तैनात
वो अपनी जान की परवाह छोड़ देता है।''

जीवन और जगत्, देश और समाज की दिशा और दुर्दशा का सुंदर व कलात्मक चित्रण चिंतन, संस्कृति और सामाजिकता को ध्यान में रखकर इन्होंने किया है–

''माना ये आग सियासत ने लगाई है मगर,
मुन्हसिर हम पे है इस आग का ठंढा होना।''

''नफरत की ठोकरों से मोहब्बत को तोड़ना,
ये तो किसी किताब ने तुमसे कहा न था।''

''आफतें तो सर उठाए, उनको पैरों से कुचल दो,
नफरतों की इस सदी को, प्यार की कोई ग़ज़ल दो।''

पुस्तक की फेहरिस्त बताती है कि इस संग्रह में एक सौ पाँच ग़ज़लें हैं, जिनमें दर्द–ओ–गम मा मजमूआ बताते हुए अदाम से भी गुफ्तगू करते हैं–

''हम अपने जकड़े हुए जह्नों को करें आजाद
वतन ने आज नया इन्किलाब माँगा है।''

इनकी ग़ज़लों की अनुभूति में रुमानियत प्रतिध्वनित तो है ही साथ में प्रेम, विरह, मिलन, संयोग, वियोग के सघन ''संवेदना के गहरे ताप का सृजन भी है–

झपक जाएँ न पलकें आपका दीदार करने में
मिली है जो नसीबों से वो मोहलत कम न हो।''

''बिना तुम्हारे मैं जिंदा रहा भला कैसे
कभी वो राज बता दूँ तो चौंक जाओगे।''

इस ग़ज़ल संग्रह से गुजरते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि ग़ज़लें मन और प्राण से लिखी गयी है तथा इसमें भावों की गहाराई, भाषा की सादगी एवं ग़ज़ल का 'मिजाज' मौजूद है। अभिव्यक्ति में न ऊबाऊ है, न उलझाऊ, बल्कि मानवीय सरोकार से संबंध हिंदी और उर्दू दोनों भाषाओं में मिलती है, जिसमें दर्शन की आकृति है।

5. 'ढूँढ़कर लाओ जिंदगी' नीरजा हेमेन्द्र (न्यू हैदराबाद, लखनऊ, उ.प्र.) का कविता–संग्रह सपनों को साकार करने में अरमानों के लगे पंख हमारे संबंधों की दहलीज को, सनातन संस्कृति को, भारत की पहचान को, पारिवारिक जिंदगी जीने की नजरिया को तथा संवेदनशीलता को कोसों दूर छोड़नेवालों का दर्पण है।

मनुष्य अपना विकास तो कर ही रहा है, मगर मानवीय मूल्यों का निरंतर ह्रास दिखाई दे रहा है एवं जैसे–जैसे वर्तमान शताब्दी, अपनी युवा अवस्था की ओर बढ़ रही है, वैसे–वैसे मानवता के सम्मुख कुछ नवीन चुनौतियाँ आ खड़ी होती हैं, जिसे कवयित्री पुस्तक का प्रतिपाद्य विषय बनाई जाती है। आज अपनी व्यस्ततम जीवन के भाग–दौड़ में हम भले ही इस परिवर्तन की गहराई को न भाँप सकें, परन्तु जिस तेजी के साथ, ये परिस्थितियाँ हमारी आँखों के सामने बदलती जा रही है, उस दिशा में आनेवाला कल मानवता से सम्मुख कुछ अभिनव समस्याओं को लेकर आ खड़ा होगा। इसलिए इन भयावह समस्याओं का समाधान भी ढूँढ़ना हमारा सामाजिक दायित्व होता है, की भी चर्चाएँ इन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास 'ढूँढ़ लाओ जिंदगी' कविता से की है।

''रेशमा की देह मात्र खेलने
और भोगने की वस्तु तो नहीं थी
माँ की दहलीज पर वापस
पटक दी गई वह क्यों
अब दुनिया की दृष्टि में वो हो गई थी
व्यर्थ....जूठी.....अयोग्य।''

काव्यकार नीरजा अपनी सामाजिक दायित्व का निर्वाह कर आगे रेशमा से कहती हैं–

''तुम दुर्बल नहीं थी रेशमा
तुम्हारे पास भी स्त्रीत्व....मातृत्व की
असीमित शक्ति
तुम जलकर क्यों मर गई रेशमा!
मैं तुमसे कहती हूँ
ढूँढ़कर लाती जिंदगी....अपना भी
और उस नवांकुर की भी।

मानवीयता और मार्मिकता का सामना करती इनकी एक सौ एक कविताओं का संग्रह इस पुस्तक में अपनी कलात्मक अंतर्दृष्टि से अपने पाठकों को विभिन्न सी सच्चाइयों और संवेदनाओं से भेंट कराती है तथा मानवीय संबंधों की सकारात्मक आत्मीय छवियों को सामाजिक संरचना के परिप्रेक्ष्य में देखने की जरूरत की अनुभूति कराती है।

''धागों की उलझती गाँठें सुलझाकर
बुनती है एक चादर समय की
जिसकी नर्म गरमाहट में पलते हैं
रिश्ते संवेदनाओं के
चादर की झीनी परतों में
कभी–कभी ये रिश्ते
विलुप्त हो जाते हैं
इनके होने से अनुभूति
देर तक.....दूर तक
हमारे साथ रहती है।''

संपूर्ण कविताओं में लोक जागरण की छाप है, अपनी संस्कृति निधि की रक्षा तथा उसे समझने–समझाने की कला है। नारी शोषण, उत्पीड़न वृद्धों की दुर्दशा, दलितों के साथ अन्याय, अशिक्षा, बेटा–बेटी में भेदभाव, भ्रूणहत्या आदि आदि घटनाओं की यथार्थता को, मनुष्य–जीवन के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करके मनुष्यता के वास्तविक लक्ष्य को अनुभव करा सकनेवाली इनकी दृष्टि सराहनीय है। पुस्तक पठनीय एवं संग्रहनीय है।

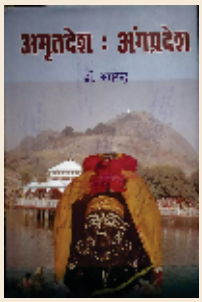

6. 'अमृत देश : अंग प्रदेश' डॉ. अमरेन्द्र (भागलपुर, बिहार) की रचना अंगमहाजनपद की एक समृद्धशाली, गौरवमयी गाथा है, जो हमारी वैदिक, पौराणिक, ऐतिहासिक वैभवशाली संस्कृति की धरोहर है। यह कभी 'अमृतमंथन' रूप के नाम से आकाशवाणी प्रसारण में धारावाहिकता से धूम मचाया था, आज वही अंगमहाजनपद का इतिहास बनकर हमारी सभ्यताओं, संस्कृतियों, साहित्यों, विचारों, मूल्यों, मर्यादाओं, लोकजीवन की रीति–रिवाजों को रेखांकित किया है। डॉ. अमरेन्द्र का अंग–इतिहास ऐतिहासिक शृंखला की एक स्मृति है, एक लेखा–जोखा है, अस्मिता की अनुभूति है, पूर्वजों की विरासत है, संवाद का संदर्भ है, पृष्ठभूमि का विश्लेषण और विमर्श है, एक समीक्षा है, अपनी जड़ों तक पहुँचने का सर्वेक्षण है तथा पर्यावरण और मूल्यांकन भी है। इन्होंने अंगप्रदेश का शोध विस्मृति के गर्भ में जाकर किया और पाया कि – ''धरती पर जीव अपने अस्तित्व के लिए बेचैन हो रहा था, तब अंगप्रदेश की रक्त मृत्तिका ने ही अपनी शरण दी थी। इस रक्त मृत्तिका का यह प्रदेश पुराणों में अंगद्वीप के नाम से प्रसिद्ध समुद्र मंथन को भोगा है।''

जो कुछ हुआ, कैसे हुआ, क्यों हुआ और कहाँ हुआ, इसमें किसकी भूमिका क्या थी, कितना स्मृति शेष रहा, कितना लुप्त, विलुप्त और अशेष हो गया, कितना विस्मृति के गर्भ में समा गया, इन सबों की यथार्थता से हम पाठकों को अपनी रचना के द्वारा रु–ब–रु कराए तथा यह हमारी जो साक्षात् संपदा है, उन तथ्यों एवं तत्वों के धागों से बुनी हुई चादर पर हमेशा अंगवासियों को बैठाने का प्रयास इनका अक्षुण्ण है। इस पुस्तक के विषय–वस्तु को तेरह खंडों में विभक्त किया गया है–''अग्नि पिंड के ऊपर उठता महाद्वीप, असुरों का ऐश्वर्य और देवताओं की दीप्ति, राजा रोमपाद का राज्य : पृथ्वी पर पुण्यलोक की पृष्ठभूमि, महासंग्राम का महाबली कर्ण, तीर्थंकर के धाम में बुद्धं शरणं गच्छामि, कायो बेध अमृत झरै, स्थापत्य की आत्मा, अंगप्रदेश का कृष्ण विवर: अंगिका लोकगाथा, स्वतंत्रता संग्राम का पांचजन्य : तिलकामांझी, सागर के ऊपर आजादी का स्वप्न, अंगप्रदेश का रुद्रावतार, नदियों की लीलाभूमि का प्रदेश ओर जाग मछँदर गोरख आया।''

जिसमें तर्क, विवेकसंगत दर्शन,पुराणों, वेदों की ऋचाओं और वैज्ञानिकता के आधार पर यह सम्पुष्ट है–अंगिरा, अंगिरस ऋषिकुल के नाम से ही अंग देश का नाम वेदकाल में स्थापित हो गया था। हर्यक के बाद ऐसा कोई अंगपति नहीं हुआ, जो ऐतिहासिक दृष्टि से उल्लेखनीय कहा जा सके। मगध के राजा बृहद्रथ ने अंग की सीमा को काटकर छोटा कर दिया था, किन्तु अग के नये नरेश के रूप में कर्ण ने अपने मित्र दुर्योधन के लिए अंग की प्रतिष्ठा पूरी

धरती पर पुनः स्थापित की, इसमें कलिंग, पौण्ड, बंग, मिथिला और मगध सभी शामिल थे। लेकिन महाबली कर्ण–शासन के सूर्यास्त होते ही एक अनिश्चितता के धुंधलके के बीच पड़ गया। अजातशत्रु ने भी अंग का इतना शोषण किया कि प्रजा क्षुब्ध रहने लगे। क्रमशः बिहार पुनर्गठन अधिनियम के अंतर्गत अंगप्रदेश को और भी निर्ममता से विभाजित कर दिया गया। गिरिडीह से लेकर मुंगेर के जमुई तक एवं मिदनापुर के कर्णगढ़ तक में सिमट गया।''

इस प्रकार शोध–संधान की दृष्टि से डॉ. अमरेन्द्र के इस सृजन में इतिहास के संदर्भों की जो गहराई है, वह आज भी हमारे साहित्य में इतिहास और मनोरम की थाती के रूप में यह 'अमृत देश : अंगप्रदेश' बेजोड़ है। रचनाकार के अनुसंधान, सोच, कल्पना और संदर्भित प्रमाण का फलक इतना विशाल है कि उनकी मुख्य धारा में इतनी अगम्य धाराएँ मिलती हैं कि कथ्य एवं घटनाओं में अकल्पनीय वैविध्य समाया है। कालक्रम की दृष्टि से हमारा अतीत चाहे व्यतीत हो चुका हो, किन्तु उसका एक नैरन्तर्य भी है, जो वर्तमान में भी प्रवाहमान है। सर्जक अमरेन्द्र की सोच है कि हम पुराने पुरातन प्राचीन को समझें, खोजें और गर्व करें। अतएव इनका चिंतन, दर्शन एवं समन्वित तत्वदर्शी साहित्यिक विमर्श श्लाघनीय और हर बुद्धिजीवी के लिए पठनीय हैं काव्यात्मक लय, भाषा, शिल्प एवं बिम्ब विधान भी प्रतिष्ठित है। पुस्तक पठनीय और संग्रहणीय है।

7. 'साहित्य विमर्श' प्रेम प्रभाकर, सादा जीवन उच्च विचार के प्रतीक, प्रो0 स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, ति.मां.वि.वि. की श्रेष्ठतम रचना है। पुस्तक में इन्होंने भाषा, साहित्य, संस्कृति, हिन्दी पर राजनीतिकरण, वर्तमान स्थिति, प्रासंगिकता, अतीत और वर्तमान की भूमिका, अंग और अंगिका की मूल्यबोधि विधा आदि पर विशद विमर्श करते हुए, हिन्दी भाषा की उपादेयता को आधार बनाकर विषमतावादी बुद्धिजीवियों तथा भाषा विवाद के उलझणों से बचाने का प्रयास किया है। इस साहित्यिक भूमिका से संदर्भित चिंतन में अनेक दार्शनिक, विचारक एवं साहित्यकारों के तार्किक विचारों को भी सामने रखा है।

दूसरे पक्ष में कुछेक साहित्यकारों एवं कथाकारों का समीक्षात्मक स्वरूप भी सामने लाये हैं। जिनकी कहानियों में सामाजिक, सांस्कृति, प्रशासनिक एवं राजनीतिक विद्रूपताओं की गूंज ही सुनाई नहीं पड़ती, वरन् मानवीय पक्ष के साथ समाधान भी रहते हैं।

किसी भी साहित्यकार की रचना–प्रक्रिया उसकी चेतना–प्रक्रिया से होकर गुजरती है। उसकी चेतना समकालीन सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों से निर्धारित होती है। इसलिए उसे समझने के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं होता, बल्कि उसके भीतर से भी गुजरना पड़ता है। अपितु सशक्त विश्लेषण, निष्कर्षण एवं प्रशंसनीय उद्देश्य से समायोजित पुस्तक पठनीय है, उम्दा है।

8. 'सवाल सिर्फ शब्द नहीं' शैलेन्द्र अस्थाना (सिवान, बिहार) की प्रेरक रचनाएँ, जो पैंतालीस कविताओं का संग्रह है वो एक साफ सुथरे दर्पण के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत है, उसमें मनुष्य के भाव, उनकी उत्तमता, अनुत्तमता का स्वरूप, मनोवेगों का प्रवाह, उसका क्रोध, करुणा, दया, प्रेम तथा उसके अंतःकरण के सौंदर्य को हम देख पाते हैं। इनकी कविताओं में कविता का प्रयोजन, प्रयोजनीय वस्तु का इतिहास, वैज्ञानिकता, दर्शन अमानवीय बर्ताव, मानवीय चेतना, माधुर्यता, दीन–दुखिया की पीड़ा, आनंद, क्लेश एवं मानव जीवन पर परिस्थितिजन्य प्रभाव की यथार्थता, सुंदरता, कोमलता आदि की मनोहारिणी छाया है।

काव्यकार अस्थानाजी के हृदय की दृढ़ता, सत्यप्रियता, कोमलता, स्नेहशीलता एवं सजीवता के अतिरिक्त भावों का प्रतिबिम्ब की झलक इनकी कविताओं में देखने मिलती है–

मैं चाहता हूँ
उस लड़की के लिए
एक गीत बनाना जो सामने के होटल में
नाचने आती है/जलती बुझती–चमकती
झिलमिलाती रोशनी के बीच
सैकड़ों आँखें उसकी ओर
दुनालियों की तरह
सध जाती हैं/थम जाती हैं
छुरी–कांटे–चम्मच की खटखटाहट
भूल जाते हैं ओठ
मदिरा के प्याले
थोड़ी देर के लिए

फिर तो कपड़े के साथ उसके सपने उतर जाते हैं, आस्था, विश्वास और मनुष्यता नोच ली जाती है।

मुझे/बदशक्ल उजालों ने/ठगा है
भटकाया है
राजपथों ने/चौराहे
भूल–भुलैया की तरह
करते हैं भ्रमित....

आज मानवता के बार–बार छले जाने के कारण कवि मानव की अदम्य पीड़ा, उसकी बिखरती लालसाएँ एवं खुद के अस्तित्व का संघर्ष देखकर समाज को बदलने की जिजीविषा पाले अपनी अंतर्व्यथा को कविता के द्वारा प्रस्तुत कर रहे हैं।

दोस्त
सवालों से कतराओ नहीं
टकराओ/सवाल समय के अक्स होते हैं
पहचानो/ विवेक को झकझोरो
सवाल झरेंगे
सवालों को चुनो
सवालों को गुनो...।

इनकी सबसे बड़ी विशेषता है कि इन्होंने युग की चेतना को नये रूप में अभिव्यक्त किया है, काव्य को सामाजिक सरोकार से जोड़ने की, आक्रोश के क्षणों में बिम्बात्मक स्वाभाविक पीड़ा उजागर करने की तथा सिमटे–सकुचाए व्यक्ति के हृदय को झकझोरने की कोशिश की है। कविता उदार और निःस्वार्थ हृदय की उपज है। राजा और रंक को मनुष्य के सिवा और कुछ नहीं देखते हैं। व्यक्त किया हुआ भाव हृदयतल पर अच्छी तरह अंकित होता है। कवि नाद–सौंदर्य के पीछे न पड़कर श्रुति–सुखदा की स्वाभाविकता के अनुकूल ओजस्वी और स्थायित्व पुस्तक पठनीय और संग्रहनीय है।

9. 'सवालों के घेरे में' डॉ. आशिक हरगानवी (भागलपुर, बिहार) की यह पुस्तक मानवीय संवेदना और साहित्य चिंतन में लगे रहनेवाले डॉ. अमरेन्द्र और लेखक की भेंटवार्ता है। इसमें डॉ. अमरेन्द्र की विलक्षण दार्शनिकता, भावप्रवणता, उदार चरित्र, कोमल स्वभाव और सहिष्णु प्रकृति लक्षित होती है। इनके जीवन में घटित होनेवाली घटनाएँ एवं उनसे सम्बद्ध चरित्र आदि महत्व को मूल प्रवृत्तियों का सार्वभौम सार्वकालिक मनोभावों अथवा व्यक्ति–विशेष के

स्वाभावगत वैशिष्ट्य को दर्शाया गया है तथा इनकी रचनाओं की संवेदनशीलता, जीवन के गहन परिपक्व अनुभवों का विवेचन, लेखनी की कला–कौशलता की मनोवैज्ञानिक पड़ताल है।

हालाँकि इस विधा के अस्तित्व को लेकर कभी–कभी सवाल भी उठते हैं, कभी उपयोगिता को लेकर, कभी गुणवत्ता को लेकर, तो कभी गैर जरूरी बताकर इसे सिरे से खारिज करने की कोशिश भी की जाती रही है। लेकिन ऐतिहासिक क्रम में जिस तरह इस विधा की चर्चा होती रही है, उससे यही प्रतीत होता है कि यह विधा कभी मरी नहीं है और न कभी मरेगी; क्योंकि जब भी इसे कमजोर कहकर खारिज करने की कोशिश की गई है, यह अपने आपमें पहले से ज्यादा सशक्त होते चली गई है। यहाँ हरगानवी साहब इस विधा की सर्जनात्मकता व अस्तित्व को न केवल प्रासंगिकता दी है, बल्कि सर्जक के चरित्र को व्याख्यायित करने की कोशिश भी पूरी की है एवं समाज को किसी अच्छे साहित्यकार की जानकारी भी दी है, जिनकी कृतियाँ, विशेषताओं एवं भेंटवार्ता के द्वारा उनके गुण–अवगुण से लोग को परिचित करा उनकी चिंतन परिधि को विस्तार और नया आयाम भी दिये हैं। रचना का मूल्यांकन उसकी गहराई, विषय–वस्तु, मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति, कौशल, भाषा–शैली, सृजन–क्षमता तद्विषयक पृष्ठभूमि की सजगता के आलोक में सकारात्मक है, जिससे उसकी सर्जनात्मक विधाएँ उत्कृष्टता को प्राप्त करती हैं।

इसे पढ़ने से लगा कि अमरेन्द्रजी के व्यक्तित्व और लेखन को किसी विमर्श की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता। इनकी विविधता, सृजनात्मकता, विस्तार, गहराई, साहसी और स्पष्टवादी व्यक्तित्व एवं साहित्यिक मर्यादा साहित्यिक मर्यादा साहित्यकारों के बीच भी चर्चित है। इस प्रकार चतुर्दिक वार्ता चर्चा के साये में गहन आत्मविश्लेषण भी दृष्टिगोचर होता है। लेखक ने डॉ. अमरेन्द्र के दर्शन और चिंतन सुरभि से सुवासित मनोदर्शन को मूल प्रतिपाद्य बनाया है। यह कालजयी रचना पाठकों को अमरेन्द्रजी का स्मरण कराती रहेगी। पुस्तक उत्तम और पठनीय है। मैं इनके प्रति हार्दिक शुभकामनाएँ व्यक्त करता हूँ।

10. 'ओ रंगरेज' अनुराधा चंदेल 'ओस' (मिर्जापुर, उ.प्र.) की रचना कविता संग्रह विचार कल्पना, भाव, विषयवस्तु एवं यथार्थ की अभिव्यक्ति है, जो प्रयोगवादी तथा विद्रोहात्मक स्वर को समेटे न्याय, समता, सामाजिक प्रतिबद्धता, सहृदयता, मौलिकता, संवेदनशीलता, नये चिंतन, आस्था और जीवन दर्शन है, जिसमें आधुनिक परिस्थितियों का दबाव एवं बदलाव है, समयानुकूल समायोजन विखंडन एवं प्रेरणा और सौंदर्य से पराभूत सकारात्मक स्वरूप है।

पुस्तक में 105 कविताओं का संग्रह, जो छः खंडों में विभाजित, सांस्कृतिक चेतना से अभिभूत नामित–'एक उदास झोंपड़ी', 'एक स्त्री', 'सुनो कान्हा', 'साँझ की चौखट पर', 'चांदनी के फूल', एवं 'शामियाने काँच के' कविताओं की इस यात्रा में डॉ. ओस का यह एक गौरवशाली कदम है। इनकी कविताएँ आरंभ में तो गंभीर मनोवैज्ञानिक विषयों पर, कविताओं की सूक्ष्मता पर, मानव जीवन की जटिलता पर, लेखनीयता की अवमूल्यता पर आधारित है–'कविता लहूलुहान है आज', 'खंडहरों में बस्ती नहीं बसती आज', 'सुनो पांचाली', 'रात की बची रोटी', 'जिंदगी यूँ जिया करो'।

सामाजिक सरोकार के सथ नारी मन की पीड़ा, संस्कृति, संवेदना तथा जीवन की संपूर्णता का दर्शन और फिर धीरे–धीरे जनता के हित–अनहित, समाज में फैले अत्याचार का विरोध एवं इसे जड़–मूल से उखाड़ने का पक्ष, समाज में मनुष्य और मनुष्य के बीच इंसानी रिश्ते, अपसंस्कृति के हाहाकार, शोषित व उपेक्षित जन की विक्षुब्धता आदि के प्रति इनकी सहानुभूति भलीभाँति दिखती है।

दीया एक जलाकर साथी
अँधेरे पथ पे रखती हूँ
किसी भटके मुसाफिर के
शायद काम आ जाए
साँझ की चौखट पर
दीया जलाकर रख दती हूँ
शायद ये उजाले
किसी के काम आ जाए
मैंने देखा है/लोगों को
एक टुकड़ा आसमान को तरसते
शीत की रात में ठिठुरते
लोगों को भूख से रोते
चिथड़े में बदन लिपटे
मानवता को शर्मसार करते
इंसानियत क धज्जियाँ उड़ाते।

उद्देश्यपूर्ण कविता लिखने की संभावना उसी रचनाकार में होती है, जिसमें सत्य, वास्तविकता अथवा जीवन के प्रति दायित्व का अनुभव रहता है 'ओस' की कोई भी कविता ऐसी नहीं है, जिसके बारे में कहा जा सके कि वह वास्तविकता को ध्यान में रखकर नहीं रची गई हो अथवा उसके भीतर दूर पर भी कहीं कोई उद्देश्य नहीं है। इनकी हर कविता में संदेश, भाव और कवित्व दिखता है। कवयित्री अपनी प्रतिभा के विशाल दर्पण में समाज को उनके कुत्सित विचारों का अम्बार एक जगह एकत्र दिखाना चाहती हैं। उनकी चेतना को झकझोर कर यह बताना चाहती हैं कि तुम ऊपर से नीति और पवित्रता की जो बातें बोलते हो, उनमें कोई सार नहीं है। कविता के शब्दों में सनसनाहट है, खुशबू है, ध्वनि, रंग है, रीति–रिवाज है, शृंखला है, भाव और बिम्ब भी है। काव्य के भीतर चिंतन को प्रतिष्ठित किया गया है। सराहनीय। पुस्तक पठनीय है।

11. 'जी हाँ, मैं लेखिका हूँ' कहानी–संग्रह, नीरजा हमेन्द्र (लखनऊ, उ.प्र.) की रचना भारतीय महिला की सामाजिक मानसिकता को गहराई से समझनेवालों के लिए एक और विशिष्ट प्रकार की सोलह कहानियों में सजी–सँवरी बेदह महत्वपूर्ण पुस्तक है, जो स्त्री जीवन का एक संपूर्ण दस्तावेज है। कहानी संग्रह में जीवन का यथार्थ इतनी सहजता, आत्मीयता और बारीकी से चित्रित है कि हर पाठक को भीतर तक छू लेता है। समाज निर्माण पर आधारित स्त्रीवादी ज्ञानात्मक अंतर्विषयक की ओर अग्रसर सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पक्षों को उजागर कर जीवन की विडम्बनाओं से गुजरते हुए दग्ध हृदय की पीड़ा को श्रिष्ट भाषा में अनोखा व्यंग्य अपना चमत्कारी असर छोड़ता है।

लेखिका नीरजा जी नारी के बारे में एक संतुलित और व्यापक दृष्टि तथा आत्मीय भाव से भरा सामाजिक शक्लों में अपनी कहानियों को अनुभूतियों, संवेदनाओं और विडम्बनाओं के दायरे में उकेरी हैं। इनकी कहानियाँ कहती हैं कि आज की परिस्थिति में नर और नारी दोनों अपनी वास्तविक स्थिति और कर्तव्यों को भुला बैठे हैं, इसलिए दुःख तथा कठिनाइयों

में फँसकर अवनति के पाश में जकड़ते जा रहे हैं। पुरुषों की ऐसी धारणा बन गयी है है कि नारी का स्थान केवल घर के भीतर है और उसका काम पुरुष की कामुकता की भूख को शांत करना, संतान पालना, भोजन बनाना तथा अन्य घर की सेवा के कामों को करना है। समाज में स्त्री का धर्म ही यह बतलाते हैं कि सब प्रकार के सुख–दुःख, मान–अपमान तथा कष्टों को सहकर पति और परिवार की सेवा में पूर्णतया संलग्न रहे। दूसरा कि समाज शासक, पूँजीपति वर्ग मेहनतकश नारी समुदाय को अपनी नारकीय जीवन–स्थितियों के खिलाफ बगावत करने की अनुमति नहीं देता। लेखिका की निगाहें वहाँ तक चली गयी हैं, जहाँ मजदूर स्त्रियाँ भी पिछड़ेपन के चलते घरेलू गुलामी के साथ–साथ पूँजीपतियों के मनमाने अतिशोषण का शिकार होने के लिए तैयार हो जाती हैं, फलस्वरूप मानवीय मूल्य सिकुड़ते–बिखरते जा रहे हैं।

इनके कहानी कहने का अंदाज अत्यन्त सरल तथा सहज है, भाषा–व्यंजना में एक अलक्षित–सा छद्म आधुनिकता का उद्घाटन व भावबोध भी है, यांत्रिकता मनुष्य की यंत्र में तब्दील कर रही है, परंपरागत सामाजिक ढाँचा टूट रहा है, मान्यताएँ बदल रही हैं, कहीं–न–कहीं यह भी देखने को मिलता है कि शिक्षा और आर्थिक स्वातंत्र्य ने स्त्रियों की स्थिति में भारी परिवर्तन ला दिया है, जिसके चलते कहीं महिलाएँ भी अपनी परिधि से बाहर दहेज के नाम पर, अपसंस्कृति के नाम पर, मूल्यों और मर्यादाओं के नाम पर विध्वंसक हमला भी कर रही हैं, जिसमें लेखिका सामाजिक भूमिका निर्वाह करती हुई दृढ़ता से मोर्चे पर डटी हैं।

इस प्रकार व्यष्टि और समष्टि के द्वन्द्वात्मक भाव के साथ यथार्थ तथा आदर्श का सामंजस्य, आस्था तथा मानवीय कल्पना का समभावपूर्ण नैतिक मूल्यों का कहानियों में समावेश सांस्कृतिक तथा जीवन दर्शन लक्षित है।

12. 'अंगार की चोटी पर' वी.चिन्नास्वामी (कर्नाटक) रचित कन्नड़ कविताओं का हिन्दी अनुवाद कर धरणेन्द्र कुरकुरी (शिरसी, उत्तराखंड) जी ने हिन्दी भाषी पाठकों से भावनात्मक लगाव जोड़ दिया। कविता संग्रह में आदर्शवाद मानवतावाद से परिचालित दुखी–पीड़ित, सामान्यजन जीवन की जटिलताओं के प्रति आकर्षित हो उनकी कटुता को मिटाने का प्रयास, स्थितियों में चल रहे उतार–चढ़ाव, टूटती मान्यताओं, जिंदगी की ठोकरें, संघर्ष से उपजी अनुभूतियों, कठिनाइयों से दमन छुड़ाने की व्यग्रता आदि जिसे रचनाकार ने महसूस किया, उसे निष्कर्ष के रूप में कविताओं के माध्यम से पाठकों को रू–ब–रू किया।

मनोविश्लेषणात्मक जनसाधारण की समस्याएँ, आकांक्षाएँ, उलझनें, पारिवारिक गुत्थियाँ, ग्रामीण शोषण, धार्मिक आर्थिक वैषम्य, महाजनीय या अमानवीय सभ्यता को आत्मीयता से समेटे पाठकों से भावात्मक नाता जोड़ते हैं। कविता में विभिन्न प्रकार के भावों राग–द्वेष, दुख संघर्षों, रीति–रिवाजों, उत्सवों–त्योहारों एवं समस्याओं से द्वंद्वकी जुझारू प्रवृत्ति को सहानुभूतिपूर्ण सहेजा है। संग्रह में संवेदनाए किसी एक भाव बिन्दु पर केन्द्रित नहीं है, अपितु अनेक इकाइयों, घटनाओं एवं रस का जाल बुनती हुई कविता चलती है। कलात्मक रूप से निखरी हुई प्रवाहमयी भाषा–शैली में यह अर्थगर्भित व मर्मस्पर्शी है। खेत की मेड़ पर सोये आशान्वित किसान, कंधों पर जूआठों का बोझ, गले से लटका बच्चा, फटे–चिथड़े कपड़े पहने लोग, आँगन में बच्चियों के सिर से जूएँ चुनती नानी, शाम की लाली से होड़ लगाती बच्चों की टोली, दादाजी के खर्राटे, टप–टप चूता छप्पर, भाई की फेंकी हुई बीड़ी, सिगार के फुफकारते धुएँ, लालटेन में ठर्रा पीनेवालों की सुर्ख आँखें, मालिक की धूर्तता, मालकिन के दर्प, विपत्तियों से यथाशक्ति लोहा लेती थकती, टूटती, गिरती पुनः सामर्थ्य सँजोती महिलाओं की आवाज जो आज विस्मृति की शर्त में गुम हुई है कवि उसे भुला नहीं पाते, मानो उनका अंकन किसी निर्भीक कलम से चित्रित कर डाले हैं। कथ्य सजीव, रोचक, विकसित करने की प्रेरणा के साथ देशकाल, वातावरण को प्रभावी रूप से अंकित करने में कवि पूर्णतः सक्षम हुए हैं। विशुद्ध अनुभूतिमूलक सुगम, सुबोध भाषा में सशक्त प्रतिबिम्बित की प्रस्तुति है। यहाँ जीवन की गहराइयाँ, नैतिकताओं तथा मूल्यों को नापनेवाला सार्थक कलात्मक पंक्तियों में बिखरे पड़े संवेदनाओं का वैभव कविताओं को महिमा मंडित कर दिया है।

13. राम नगीना मौर्य (गोमती नगर, लखनऊ, यू.पी.) का कहानी–संग्रह 'आखिरी गेंद' इनकी महत्वपूर्ण उपलब्धि है, जिसमें स्मृति का रचनात्मक प्रयोग हुआ है। मानवीय संवेदनाओं के कुशल चित्रकार की चौदह कहानियों के इस संग्रह में सामाजिक संबंधों को विशेष महत्त्व दिया गया है। पुस्तक का समर्पण या उसका प्रतिपाद्य विषय संबंधशीलता, सामाजिक यथार्थता, मार्मिकता, कारुणिकता, विडम्बना, विसंगति की कुरूपता, सभ्यता और सांस्कृतिकता में ही लेखकीय–प्रतिबद्धता निहित है। इनकी चिंताएँ भी जायज हैं। लेखक समाज पर हुए मनोवैज्ञानिक प्रभावों को लेकर भी चिंतित है। आखिर हो भी क्यों नहीं कम से कम इतना तो सभ्य समाज को करना ही चाहिए कि किसी भी मनुष्य को अमानवीय जीवन न जीना पड़े। उनकी इस सोच में लोकजीवन की अनुभूतियाँ एवं लोक प्रचलित विश्वास भी शामिल है। फलस्वरूप इन कहानियों में अद्भुत रोचकता पैदा होने के साथ–साथ अन्याय के प्रतिकार का नया ढंग भी विकसित होता दिखाई देता है। कथा चरित्र अपने–अपने ढंग से सामन्ती–पूँजीवादी व्यवस्था का प्रतीकात्मक विरोध करते हैं। आज समाज से मूल्य, विचारधारा, नैतिकता एवं आदर्श तिरोहित होते जा रहे हैं और अवसरवादी, अस्तित्वहीन अंधविश्वासी लोग प्रतिष्ठित हो रहे हैं। अराजकता समाज का स्थायी अंग बनती जा रही है। इस प्रकार इनकी बहुरंगी संवेदनशील कहानियों में अनेक परते हैं, जिनमें दलितों, आदिवासियों, महिलाओं आदि के दुख–दर्द राग–द्वेष, स्वप्न, आकांक्षाएँ, निम्नवर्ग के शोषण, पीड़ित जनता के आँसू, नई अर्थव्यवस्था के शिकार लोगों की तकलीफें और मानव विरोधी शक्तियों के विरुद्ध जनतांत्रिकता की सूक्ष्मता उभरी है। जिसे सहज सरल भाषा में जिंदगी की जटिलताओं की गुत्थियों को इनकी रचनाओं में सुलझाने की कोशिश भी है। कहानियों में काव्यात्मक लय, शिल्प एवं बिम्ब विधान की चतुराई भी है। कहानी के माध्यम से पाठकों को कहना चाहते हैं कि मनुष्य अचेतन मन को खोलें और उन्हें तलाशें, जो आँखों से ओझल है, जिससे मानवीय मूल्य स्थापित हो सके। उत्कृष्टता के इन नये सोपानों का स्पर्श प्रशंसनीय है।

14. ग़ज़लकार सुभाषचन्द्र झा, पूर्व संयुक्त आयुक्त सह सचिव (भागलपुर प्रमंडल) एवं राज्य सरकार के विशेष सचिव ग़ज़लसंग्रह 'तुम ही तो हो' में दिल की तमाम ख्वाहिशें ग़ज़लों, नज्मों और रुबाइयों के माध्यम से शब्दों को जबान और खूबसूरत जिस्म देकर ऐसा बना दिया है कि लोगों से गुफ्तगू कर सके तथा उनके दर्दों–गम कम कर सके। इनकी तमाम ग़ज़लें आम आदमी के दिल को छती हुई दिल में सीधे उतर जाने का हौसला भी रखती है। इतिहास उन्हें याद रखता है, जो अपनी जिंदगी में जहाँ को कुछ दे जाते हैं। इस ग़ज़ल संग्रह में जाने कितनी ऐसी ग़ज़लें हैं, जिन्हें बार–बार पढ़ने को मन करता है, जिन्हें

पढ़कर इंसान अपने अतीत में खो जाता है, ऐसी नज्में हैं, जो नजर के रास्ते दिल में उतर जाती हैं। इन्होंने बड़ी अदब से उर्दू को भी जगह देकर ग़ज़लों को लोगों के दिल तक पहुँचायी है। इसलिए इनकी ग़ज़लें खूबसूरती और तगज्जुल से लबरेज अपने लहजे में, अपना रंग व रवानगी में अपनी जमीन पर थिरकती हैं।

ऐसी मान्यता है कि ग़ज़ल का जन्म मोहब्बत तथा जुदाई की कोख से होता है। इसलिए ग़ज़ल काव्य का एक अत्यन्त लोकप्रिय, मधुर, दिलकश और रसीला अंदाज है। बाँसुरी की वह तान, जो कहीं दूर सुनाई देती हो, गंध की तरह झकोर जो तलहट्टियों के पार से आती हो तथा प्रेम की वह पुकार जो सनातन विरह के हृदय से फूट रही हो, अब ऐसी अनुभूतियाँ ग़ज़ल की पूँजी बनती जा रही है।

यहाँ ग़ज़लकार के हृदय में जो हलचल और व्यग्रता है, वह हृदय की जाग्रत एवं चैतन्य करने का आमंत्रण है। इनकी रचना में जो स्वाभाविक प्रवाह है, वह इस बात का प्रमाण है कि ग़ज़लें, नज्में प्रेरणा से आयी हैं, वे मात्र कवि–कौशल का प्रमाण नहीं है। आज के अमानुषिक माहौल में मनुष्य को प्रकृति, समाज, संस्कृति, रिश्ते तथा प्रेम के संदेशों की जरूरत है। मन की गाँठों को खोलकर देखने की जरूरत है। लेकिन यहाँ तो रातोंरात लोकप्रियता के सर्वोच्च शिखर छू लेने की आपाधापी में ग़ज़ल रचना की बुनियादी आवश्यकताओं को नजरअंदाज करके केवल बाह्य ढाँचा को अपनाकर लिखने–पढ़ने की होड़–सी लग गयी है।

मानव स्वभाव के पारखी सुभाषचन्द्र झा प्रेम, सौंदर्य और भावनाओं के विविध छवियों एवं विकल्पों का चित्रण ग़ज़ल के कलात्मक ऊँचाई का द्योतक माना है, जिससे इनकी ग़ज़ल अत्यन्त गंभीर और समुन्नत हो उठी है। ग़ज़ल परंपरा में यह एक उपलब्धि है। सुंदर, सुगठित शब्दयोजन, हृदय की रसात्मक अनुभूति, मार्मिक चित्र, शैलियों, शिल्प, भाव–पद्धतियों और जीवन दृष्टि इनकी ग़ज़ल की धड़कन है। आत्मसात् करते समय इनके हर शब्दों से सौंदर्य झलकता है। अनुभूतियों की ऐसी अभिव्यक्तियाँ हैं, जहाँ जीवन के समग्र रूप मिलन–वियोग, दु:ख–दर्द, संवेदना– संघर्ष, प्रेम और सौहार्द से गुजरती है। व्यंजना की सही प्रस्तुति,छोटे तथा मध्य बाहरी नजाकत काबिले तारीफ है, काफिया की सजावट, मिसरा आर रदीफ की कसावट, मतला तथा अरकान में बुनावट ग़ज़ल को और तेबर में ला दिया है।

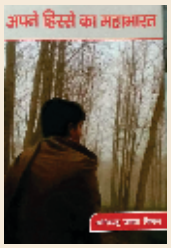

15. 'अपने हिस्से का महाभारत' अनिरुद्ध प्रसाद विमल, पुनसिया (बाँका, बिहार) की श्रेष्ठतम रचना कृति 'कहानी–संग्रह' जीवन के विभिन्न पहलुओं पर उदात्त भाव–संवेदना जगानेवाली प्रगतिशील तत्वों का एक समीचीन अध्ययन है, जो ग्रामीण जीवन से सम्बद्ध यह राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिदृश्य का संस्करण है, जिसमें फूल भी है, शूल भी है, धूल भी है, गुलाब भी है और कीचड़ भी है। लेखक किसी से भी दामन बचाकर निकल नहीं पाए। साहित्यकार सामाजिक दायित्व को भूलकर अगर आत्मा की अखंडता और स्वयं के लिए ब्रह्मानंद सहोदर दोहराता रहेगा तो वर्गहीन समाज के निर्माण में कौन सहायक हो सकेगा। अस्तु लेखक ने यहाँ गरीबी, भूखमरी, सामर्थ्य की आड़ में व्यभिचार, शोषण, बाह्य आडम्बरों, अंधविश्वासों एवं सामाजिक विषमताओं को प्रतिपाद्य विषय बनाया है। शिल्प की दृष्टि से घटनाएँ एक के बाद एक घटती है, विलीन भी होती है, पर यादें छोड़ जाती है। इसलिए कथाशिल्प के साथ–साथ भाषाशिल्प और शैलीशिल्प का विलक्षण सामंजस्य जितना सहज स्वाभाविक है, उतना ही प्रभावकारी और मोहक भी है। कथाकार विमलजी ने इन कहानियोंमें जनसाधारण की भावनाओं, परिस्थितियों और उनकी समस्याओं का ऐसा मार्मिक चित्रण किया है, जिससे उन जनसमूहों को गर्व होगा, जो साम्राज्यवाद, पूंजीवाद और सामन्तवाद के साथ संघर्ष में जुटे हैं।

साहित्य सापेक्षरूप से स्वाधीन होता है। अत: इन्होंने अतीत का गौरव राग नहीं गया, न ही भविष्य की हैरत–अंगेज कल्पना की, बल्कि ईमानदारी के साथ वर्तमानकाल की अवस्था का विश्लेषण करते हुए देखा कि ये बंधन भीतर का है, बाहर का नहीं, एक बार अगर ये गरीब, मजदूर, किसान अनुभव कर लें कि संसार की कोई भी शक्ति हमें दबा नहीं सकती है, तब जब अपने हिस्से का महाभारत की जिम्मेदारी स्वयं उठा ले, तो निश्चय अजेय हो जायेंगे।

इनकी हर कथाकृति इतने समर्पित भाव से रची गयी है कि हर पात्र जीवंत होकर पाठक के हृदय में धड़कनें लगते हैं। यदि पात्र व्यथित होते हैं, तो पाठक की पलक की कोर भी नम हो जाती है। मनोवैज्ञानिक प्रस्तुति इतनी प्रभावी है कि पाठक भी समाधान मिलने तक बेताबी का अनुभव करता है। उदात्त भावों के बिना उच्च कोटि के साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती। जीवन के वैषम्य पर क्षुब्ध, करुणार्द्र या घृणा से आप्लावित हुए बिना उदात्त भावानुभूति वर्गहीन समाज के निर्माण में हो ही नहीं सकती। इसलिए हमारी रसदृष्टि केवल रस गिनाने तक ही सीमित न हो। जहाँ जीवन की समस्याओं की प्रस्तुति हो, वहाँ जीवन की करुणा अभिप्रेत है और जहाँ समाज की बुराइयाँ, कुरीतियाँ, अत्याचार, अनाचार चित्रित हो, वहाँ घृणा या वीभत्स अभिप्रेत है। इसलिए भाव रस की अवहेलना नहीं की जा सकती है। इनकी इस कहानी संग्रह में एक से बढ़कर एक पन्द्रह कहानियाँ हैं, जिसमें आंचलिकता का संबंध आंचलिकता का संबंध शिल्प या बनावट से नहीं है, बल्कि सामाजिक संबंधों और ठोस भौतिक प्रसंगों से घिरे मनुष्य और उसकी संवेदना से है तथा उन जनपद के जनजीवन का समग्र चित्रण, उसकी प्राकृतिक, सांस्कृतिक एवं कलात्मक अभिव्यक्ति से है। अंचल विशेष के जीवन यथार्थ को निकटता एवं गहराइयों को समझकर व्यक्त किया गया है। देशकाल, वातावरण, परिवेश, प्रचलित उक्तियों एवं कलात्मक अभिरुचियों का भी समावेश है। कथाकार विमल ने कमजोर वर्ग की पीड़ा, नारी शिक्षा, कुरीति, अंधविश्वास के प्रति विद्रोह, परम्परा का खंडन, कुत्सित प्रवृत्तियों का विरोध, भ्रष्टाचार के विरुद्ध आक्रोश के नये आंदोलन की अवधारणा दर्शायी है। इस प्रकार इनकी व्यापक विचार धारा से प्रवाहित कहानियाँ सभी उत्तम हैं। पुस्तक पठनीय है।

16. 'समय कठिन है' के गीतकार रामचरण 'राग', अलवर (राजस्थान) का समकालीन गीत–संग्रह कल्पना के इन्द्रधनुषी रंगों के आकर्षण के साथ–साथ जीवन के ठोस धरातल पर प्राप्त अनुभवों का निचोड़ है। यह गीत भावों की शब्दबद्ध योजना का निदर्शन करता है, कोमल भावों की अभिव्यंजना का भी निरूपण करता है तथा गीत की पहली पंक्ति ही रमणीयता और कमनीयता के समावेश से पाठकों और श्रोताओं को रससिक्त करती है। इस गीत संग्रह में विविधवर्णी भाव चेतना को वैचारिक आयाम देने का सारस्वत प्रयास किया गया है। लोकधर्मी चेतना से 'रागजी' का तादात्म्य घनीभूत संवेदना के साथ सम्पृक्त है।

आज समसामयिक जीवन की तमाम जटिलताओं, सामाजिक अंतर्विरोधों, राजनीतिक विसंगतियों और सांस्कृतिक विडम्बनाओं को भी व्यक्त करने के कारण समकालीन गीत ने केवल अपने रूपों का आकार और संवेदना को ही नहीं बदला, अपितु अभिव्यक्ति के तरीके में भाषा, शिल्प, मुहावरे, लय, छंद आदि का गुणात्मक परिवर्तन भी करते चला गया। इन सबके बावजूद इनके गीतों में धूप है, तो छाँव भी है, जिसके साये में सुख–दु:ख के ताने–बाने में बनी दास्तानें भी हैं। यह दास्तानें कभी वियोग की वेदना, कभी जीवन–दर्शन, भ्रष्टाचार, मँहगाई, बेरोजगारी तो कभी इस सड़ी–गली समाज–व्यवस्था को बदलकर शोषणमुक्त और मानवीय समाज–व्यवस्था कायम करने की चाहत बयाँ करती हैं।

जीवन और साहित्य दोनों अन्योन्याश्रित है : इस दृष्टि से ख्यात

गीतकवि का यह संग्रह एक महत्वपूर्ण कृति मानी जा सकती है। इस कृति में साठ गीत–रचनाएँ हैं। इन गीतों के माध्यम से गीतकार जीवन में आए सत्रास को खत्म करना चाहता है। सौंदर्य न केवल वस्तु में होता है, बल्कि भाव की दृष्टि में भी होता है। भाषा, भाव, बिम्ब आदि उपादानों के विशेष प्रयोगों द्वारा सृजित यह काव्य समाज, घर–परिवेश और दैन्य जीवन के शब्दचित्रों से अभिभूत मार्मिक अनुभूति कराने में सक्षम है। समाज में दिशाबोध करानेवाला इस गीत संग्रह का साहित्य और विद्वत् समाज में भी सम्मान होगा। प्रबुद्ध पाठक इसमें समाहित जीवन–संदेश को आत्मसात् करेंगे। पुस्तक पठनीय एवं संग्रहनीय है।

17. 'यायावर' त्रिलोकेश्वर तरुण, मधुबनी (बिहार) की एक ऐसी काव्यात्मक रचना है, जिसमें जीवन के सत्य की कठोरता और सुस्पष्टता की खूबसूरत अनुभूति है। इसमें आत्मचैतन्यता मस्तिष्क का उत्थान है, सहज ज्ञान से देखी जानेवाली वास्तविकता का बोध है। कवि और योगी की मनोदशा एक होती है। अंतर सिर्फ इतना है आग को जो पचा डाला, वह साधक होता है, योगी होता है; किन्तु जिसने उसके ताप की कथा आरंभ की वो कवि होता है। दर्द को पीकर चुप रहना कवि त्रिलोकेश्वर तरुणजी से कबूल नहीं हो सकता। अभिव्यक्ति की बेचैनी सम्प्रेषणीयता की उमंग और जीवन में मिलनेवाला आनंद उन्हें बार–बार बोलने को लाचार कर 'मन' को 'यायावर' के रूप में नायक की तरह प्रस्तुत कर दिया और यह काव्य पंच सर्गों में निर्मित हो गया–'क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर।' अंततः रचना का उद्देश्य मनुष्य को बतलाना है कि वह छोटा और तुच्छ नहीं, प्रत्युत् एक परम विशाल सत्ता का अपना अंश है, इनके नायक 'यायावर' मन के स्वरूप में पीड़ा, संघर्ष, हताशा, कुंठा, अनाचार, अनास्था आदि में भ्रमित कभी विकृत तो कभी निष्कलुष होकर यायावरी वृत्ति में पंच तत्वों से सृजित जगत् की व्यापकता को ढूँढ़ने की चेष्टा में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध की अनुभूति करता है। समस्त जीव–जन्तु जीवन और प्रकृति का नियम है कि समस्त अस्तित्व, जो हम देखते–सुनते, सोचते–समझते और संकल्प–विकल्प करते हैं या जो कुछ हमारे ज्ञान की सीमा के भीतर है, वही सब कुछ ब्रह्मांड के भीतर चल रहा है। इनकी रचना में विलक्षणता का स्पर्श मिलता है, जिसे अपनी भाषा–शैली में वरदान स्वरूप, साधना के बाद प्राप्त कर जो पाठकों के सामने लाये हैं, वह मानवता के उत्तरोत्तर होनेवाले विकास का चित्रण है। पुस्तक पठनीय और संग्रहनीय है।

18. तुलसी देवी तिवारी, विलासपुर (छ.ग.) की रचना 'इंतजार एक औरत का' कहानी संग्रह अपने समय के सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को समाहित करके अपना वैशिष्ट्य ही नहीं निरूपति करती, बल्कि यह अगली पीढ़ी के लिए पगडंडी भी तैयार करती है। स्त्री या पुरुष अपनी छवि का आरोपण ठोस अस्मिता को अपदस्थ करने के लिए वर्चस्ववादी व्यवस्था के षड़यंत्र को इस कहानी का प्रतिपाद्य विषय बनाकर साहित्य को अपने समय के आंदोलन और मूल्यों से जोड़ा है। रचनाओं के सभी पात्र अपने–अपने तरीके से अपनी–अपनी मनःस्थिति से संघर्ष करते हैं। स्त्री–पुरुष संबंधों में पैदा होनेवाले तनावों और दबावों की भी यथार्थपरक अभिव्यक्ति है। कहीं–कहीं स्त्रियाँ असमंजस और द्वंद्वसे उपजे दबाव के साथ दर्द को भी झेलती हैं। मानवीय स्थितियों और अपने हक में अपनी लालसाओं को पोसनेवाले इनके स्त्री अथवा पुरुष पात्र अनुभूति के धरातल पर बहुत मूल्यवान हैं। किन्तु ऐतिहासिक वर्जनाओं और ऐतिहासिक ढाँचे से टकराकर लहुलुहान होती इनकी स्त्रियों में अपने अधिकार के प्रति ललक तो है, मगर अधिकार को छीनने के ढंग में एक चेतावनी और गुर्राहट नहीं है। परिवार और समाज में रहते हुए भी अकेली है। अनुभव के फलक पर त्रासभरी नियति है, संघर्षपूर्ण स्थिति है, उनकी पीड़ा और आकांक्षा का एक संसार है, जिसमें उलाहना, शिकायत, कसक और तड़प है।

इनकी कहानियाँ यकीकन हम पाठकों के लिए एक चुनौती है। हम जो जिम्मेदारियों का दुशाला ओढ़कर व्यवस्था और अनुशासन की रक्षा करने का दंभ पालते हैं, इसमें परिवर्तन लाना होगा, तभी हमारे रिश्तों की मर्यादा बच पाएगी। कहानी बोध विकास के साथ चेतना में यथार्थ विकसित करती है और अनुभव की रेखाओं को सुष्पष्टता प्रदान करती है। कहानी का एक किनारा जो प्राप्त है, वह यथार्थ है, तो दूसरा आदर्श है, जिसतक पहुँचना अभीष्ट है। कहानी में निरंतरता है, सहज–सरल भाषा है। पुस्तक पठनीय, सराहनीय है। सधन्यवाद!

19. त्रिलोक सिंह ठकुरेला (राजस्थान) का 'समय की पगडंडियों पर' गीत–संग्रह सुमधुर कंठ की एक ऐसी काकली है, जो बरबस अपनी ओर खींच लेती है। गीतकार ठकुरेला साहब ने समाज की मनोवृत्तियों और भावनाओं के सुंदर चित्रों का अंकन इन गीतों के माध्यम से किया है। इसमें हृदय का हर्ष, मनोव्यथा, करुणा आदि के सुंदर चित्रों का चित्रण मिलता है। दुःख से दुखी होकर जब किसी की आँखों से आँसू निकल पड़ते हैं, तो कवि के हृदय में प्रस्फुटित होकर इस प्रकार की मार्मिक पंक्तियाँ निकल पड़ती हैं।

आज इन महानगरों में खुलापन है तो घुटन भी है। भीड़ जितनी ज्यादा है, अकेलापन भी उतना ही है। यांत्रिकता मनुष्य को ही यंत्र में तब्दील कर रही है। जिंदगी अपने ढंग से नहीं, घड़े के काँटों से चल रही है। परंपरागत सामाजिक ढाँचा टूट रहा है। मान्यताएँ बदल रही हैं। शिक्षा और स्वातंत्र्य ने हमारी सोच में परिवर्तन ला दिया है। समाज टूट रहा है, तो नये ढंग से निर्मित भी हो रहा है। रिश्ते भी नये ढंग से परिभाषित हो रहे हैं। मानवता और नैतिकता की कसौटी पर भ्रष्टता का आक्रमण हो चुका है। इन सारी परिस्थितियों के संघर्ष में ठकुरेलाजी का संवेदनीय मन शांत नहीं रह सका और उनकी कविदृष्टि 'बदलते मौसम' पर पड़ी, तो उन्होंने अनुभव किया 'जिंदगी अभिशप्त जैसी' है। 'बगिया के रखवाले' 'कितना बदला–बदला लगा है' नहीं देख पाये अपनी 'डरी हुई सीता को'। इस प्रकार की अनेकों कविताएँ बिम्ब प्रतीकों के कवि सहज, सरल भाषा में भाव प्रधान,संगीत प्रधान व सुकोमल हृदय से निःसृत्य संवेदनाओं की अनुभूति को गीतों कविताओं के माध्यम से हम पाठकों को मनुष्यता के उच्च शिखर पर ले जाने का प्रयास किया है।

20. श्रीमती नीलम कुलश्रेष्ठ, अहमदाबाद का कहानीसंग्रह 'चाँद आज बहुत दूर है', सामाजिक जीवन में मानवीय मूल्यों और संस्कृतियों का चैत्य भाव है। सामाजिक जीवन में मानवीय मूल्यों और संस्कृतियों का चैत्य भाव है। इस संग्रह में एक से बढ़कर एक उम्दा ग्यारह कहानियों का संगम है, जिनमें जिंदगी का यथार्थ इतनी सहजता–आत्मीयता और बारीकी से झलकता है कि वह हर पाठक को भीतर तक छू लेता है। इन कहानियों में अनुभव का उत्ताप, कहने की तड़प और अभिव्यक्ति का विकट आवेश है, जो खास तौर पर औरत की निगाह से दुनिया की बदलावों को देखने का दुर्लभ साक्ष्य है। जाहिर है यहाँ उहापोह, कशमकश, शंका–संदेह, भय–आशंका, स्वप्न–दुःस्वप्न और हर्ष–विषाद में संघर्षरत महिलाओं की सबसे त्रासदी है कि उसे उनके अस्तित्व को कुचलने वाली स्थितियाँ,

अलग–अलग स्तरों पर किस प्रकार शोषण करती हैं, का आईना उनकी कहानियाँ की जीवन्तता को बयाँ करता है।प्रखरता ऐसी है कि इसकी धार सही जगह पर धँसती, चुभती और चोट करती है। सहजता ऐसी है कि पाठक आसानी से एकमेक हो जाते हैं।

अपनी परिधि के बाहर एक बड़ा समाज है, जिसके कई स्तर हैं, उसमें चकित करनेवाला वैविध्य है और रोंगटे खड़े करनेवाला हाहाकार है, विषमताएँ हैं, ऐसी स्थितियों–घटनाओं का कहानियों के द्वारा सतत विश्लेषण करती है। उनमें सादगी, सहजता तथा सरलता के बावजूद एक आक्रामक तेवर भी है, जो समझना और जानना तो चाहता है, पर समझौता करना नहीं जानता। नीलम कुलश्रेष्ठ जी 'चाँद आज भी बहुत दूर है', पुस्तक में आपने मेरी, भागलपुर की और सुसंभाव्य की चर्चा की है। आपकी इस पुस्तक की कहानियाँ सरल, प्रवाहपूर्ण, ओजस्विनी, सजीव संवाद, रोचक होने के साथ इसमें स्थितियों को संयोग, वैचारिक द्वंद्वमानसिक भावों का चित्रण,संवेदना, भाषा–शैली आदि मध्य और अंत तक निर्वहन, कल्पना, भावुकता, दार्शनिकता तथा घटनाओं का अच्छा समावेश का सम्मिश्रण है।सधन्यवाद!

21. प्रो. मीना रानी (भागलपुर, बिहार) का 'जीवन के गीत' कविता–संग्रह सृष्टि, देश, समाज, परिवार, प्रकृति, अनुभूति और अभिव्यक्ति का कलात्मक आकलन है। इनकी पंक्तियों के बीच का मौन कविता भावनाओं की त्वरित अधिप्रवाह में सर्जन की अदम्य लालसा और आत्मा की अभिव्यक्ति है।इनकी कविताएँ जीवन्तता और विविधता के अद्‌भुत दस्तावेज है। कविता की रचना में अर्थ विस्तार के लिए कवयित्री मीना रानी प्रतीकात्मक भाषा और बिम्ब का इस्तेमाल की है, फलस्वरूप कविताओं में नवीनता का समावेश दिखता है। यह एक सहज आवेग प्रधान है, कथन को नए रूपों में भरने का आग्रह है। अत्यन्त ही सहज, सरल और सारगर्भित संदेश को समेटे काव्य संसार में इस कविता संग्रह का उल्लेखनीय स्थान है। काव्य–साहित्य में सामाजिक सौंदर्य, जन चेतना, यथार्थ एवं बौद्धिक चेतना को प्रतिपाद्य विषय बनाया गया है। कविताओं को संवेदनशील परंपरा से जोड़ती हुई आगे बढ़ती है। हृदय की अनुभूति से नये–नये विचारों को दूसरों के हृदय में पहुँचाने का प्रयास किया है। मनुष्य जीवन के मर्मस्पर्शी स्थलों को पहचानकर सहृदयता तथा भावुकता के बिम्ब की प्रधानता है। कविताओं में वैविध्य है, अर्थ महत्ता है, किन्तु कसाव, शब्दयोजन और वैयाकरणिक दृष्टि का झुकाव कम है, फिर भी संस्कृति, भाषा, सभ्यता और बौद्धिकता से रूपायित कर सम्प्रेषणीयता के आधार पर रखने का प्रयास अलौकिक है।प्रो.मीना रानी जी को सादर धन्यवाद!

22. 'कोयले की चिंगारी' कविता संग्रह, रमणिका गुप्ता, नई दिल्ली। रमणिका गुप्ता संवेदनशील कवयित्री ही नहीं, इंसानियत की प्रतिमूर्ति भी हुई हैं।स्त्री विमर्श, अशिक्षा, निर्धनता, साधनहीनता, दलित, आदिवासी एवं कोयले के खादान में काम करनेवाला मजदूर आदि के तत्कालीन स्वरूप और उनके दुष्परिणाम रमणिका जी के कविता–संग्रह 'कोयले की चिंगारी' में रचे बसे हैं। इनका जीवन कर्मठता और आशावाद से ओतप्रोत है। इनकी वेदना के भीतर भी स्वाभिमान की चिंगारी और शूरता की आग चमकती है।

भाषा और भाव, जब दोनों एक दूसरे से मिलने के बेकरार होते हैं, तभी कविता के माध्यम से अनमोल पंक्तियाँ लिखी जाती हैं। इनका जीवन जिस अविश्लिष्ट लय की लपेट में चल रहा है, कविता उसी लय की श्रव्य स्वर–लहरी है, वही जीवन के भीतर प्रच्छन्न संगीत का बाहरी नाद है।यह नाद जीवन के अंतराल से प्रस्फुटित होकर सत्य का गुंजार बन जाता है।

इसके वाक्य–विन्यास, शब्द–चयन आदि सब कुछ उस संवेदनात्मक उद्देश्य से परिचालित होते हैं, जो रचना–प्रक्रिया का केन्द्र हो जाता है। कवयित्री की चेतना यहाँ समकालीन आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों पर निर्धारित है। ये न तो स्त्रियों के प्रश्न को दरकिनार कीं, न आदिवासी के प्रश्नों को, न दलित के, न पिछड़ेवर्ग के प्रश्नों को न तो कोयले के खादान में काम करनेवाले मजदूरों के प्रश्न को। कविता में शोषित और उत्पीड़तों की दुर्दशा का यथार्थ तीव्रतम रूप में चित्रित मिलता है एवं ऐसी गहरी दृष्टि भी देती है, जिससे हम उन अमानवीय वास्तविकताओं के कारणों को अपने अतीत और वर्तमान की विकृत मनोवृत्तियों को पहचान सकें।

इन्होंने अपनी बातों को कविता के माध्यम से उन तक पहुँचाने की सबसे सीधी और छोटी राह समझीं और चुनी।क्योंकि यह मस्तिष्क नहीं, हृदय की राह है।इससे इनकी दृष्टिगत सूक्ष्मता, समाज सम्पृक्तता का आभास होता है। मानवीय मूल्यों के पक्षधर रमणिका जी काव्य को सरसता तथा सौंदर्य का अलंकरण भी पहनायी है। प्रगति की धर्मिता ने शिल्पगत चेतना की अनेकमुखी व्यंजना भी लायी है। जन जीवन की पीड़ाओं को अपने काव्य में अभिव्यक्ति देकर उनके जीवन को सार्थक बनाने के प्रयास से समष्टि के कल्याण का लक्ष्य प्रतीत होता है। पठनीय और संग्रहनीय पुस्तक देने के लिए मैं रमणिकाजी का आभार प्रकट करता हूँ।सादर धन्यवाद!

23. 'अवादत के मौसम में' ग़ज़ल–संग्रह, ग़ज़लकार सदाशिव कौतुक, सुदामानगर इंदौर (मध्यप्रदेश) इनकी ग़ज़लों में दार्शनिकता की सोच, जिंदगी के प्रति उम्मीदें, मानवीय संवेदनाएँ, इंसानी अनुभूति, विडम्बना का बोध और वैश्विकता की गूँज दूर–दूर तक सुनाई देती है। ग़ज़ल इतना मधुर है कि पाठकों के दिलों के तार को छेड़ देती है। यह समकालीन ग़ज़ल का वह शख्सियत है, जिनका जादू पाठकों के सिर चढ़कर बोलता है।

ग़ज़ल कितनी सरस विधा है, उतनी ही गूढ़ भी है। आज हिन्दी ग़ज़ल का मूल्यांकन एक साथ होने तो लगा है, पर इसके रचनाकार केवल अपनी रचना के लिए जीते–मरते हैं, किन्तु इसके क्षरण पर बेपरवाह रहते हैं, तालियाँ ही मात्र ग़ज़ल का मूल्यांकन समझते हैं, यह चिंता का विषय भी बनता जा रहा है। लेकिन सदाशिव कौतुक की ग़ज़लों में सलीका है, लिखने का अंदाज है, वस्तु और विचार के उद्‌भव पर सोच है, विस्तृत चिंतन है, बहुआयामी संस्कृति की बहुलता है, संबंधी–रिश्ते–नातों को समझने का दर्शन है तथा संवेदनशील हृदयस्पर्शी अहसास है।

इन्होंने अपनी ग़ज़ल के माध्यम से समाज को जो आईना दिखाया है, उसमें आनेवाली हर तस्वीर साफ है। चुन–चुनकर शब्द सजाए है। यथार्थता–संप्रेषण के साथ–साथ कल्पना और सौंदर्य को प्रमुखता से विवेचन किया गया है। ग़ज़ल की परंपरा में यह संग्रह एक और उपलब्धि है। राजनीतिक–सामाजिक विमर्श के बीच मन की कोमल भावनाओं को शिद्दत से जगह दी है, वैचारिकता और मन बहलाव से बीच एक ग़ज़ब का संतुलन है। इनके छोटे या बड़े सभी बहरों में रदीफ, काफिया, मिसरा आदि की कसावट हैं पुस्तक पठनीय एवं सग्रहनीय है।धन्यवाद!

24. सुरेन्द्र प्रसाद यादव, पुनसिया (बाँका) का कहानी संग्रह 'खडखडी' में इन्होंने ग्रामीण विविध पक्षों का अत्यन्त सहज, सजीव व कवित्वपूर्ण चित्रण के साथ अंचल की पूरी जीवन्तता तथा समग्रता को अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है। इसमें मानवीय अनुभूतियों, सामाजिक परिस्थितियों का सम्यक् आकलन, मानवीय व्यवहार, मनोविज्ञान का सार्वभौमिक रूप सहज ही दृष्टिगत

होता है।

कहानीकार अपनी कहानियों में टूटे हुए गाँव, टूटे हुए लोगों की जिंदगी, जीवन में व्याप्त सहजता, मानवीय संवेदना, पारिवारिक संबंधों की छाँव, राग–द्वेष, खीझ–झुंझलाहट और उमंग का मनोवैज्ञानिक चित्रण अभिव्यंजित कर पाने में समर्थ तो हुए हैं, पर कहानी का कोई निश्चित उद्देश्य व प्राणशीलता का निर्धारण कर पाने में कलात्मकता से दूर हैं

नाद, घ्राण व दृश्य सारे बिम्ब की पूर्णता आँखों के सामने मूर्तरूप कर जाते हैं। पढ़ते समय यह प्रतीत भी होता है कि दृश्य हम देख रहे हैं। अंचल विशेष की बोली, उसके शब्द, मुहावरे, ध्वनि को व्यक्त करने के लिए लेखक में कोई फूहड़पन व क्लिष्टता नहीं है। घटनाएँ एवं मानवीय अनुभूतियाँ एक दूसरे की संवाहक बनकर कथा में प्रस्तुत हुई है। पुस्तक उपलब्ध कराने के लिए सुरेन्द्रजी का साधुवाद!

25. 'मैं पृथा ही क्यों न रही' के उपन्यासकार डॉ. सुजाता जो भागलपुर, बिहार की है। इस उपन्यास में यथार्थ की दृष्टि, प्रामाणिकता और साहित्यिक ईमानदारी को आधार बनाकर एक ऐसे आदर्श की स्थापना की गयी है, जो लोक कल्याण का सापेक्ष है। जबकि आज पूरे विश्व में मूल्यबोध ही बदल गया है, ऐसे में डॉ. सुजाता के इस उपन्यास में बड़ी सूक्ष्मतापूर्ण एक युगबोध दिखाई दे रहा है। इनकी नायिका कुंती अत्याचारों से हार नहीं मानती और संघर्ष करती यह स्पष्ट कर दी कि पुरुषों की चेतना अभी भी स्थूल इन्द्रियबोध के स्तर तक ही ठिठकी हुई है। नारियों में प्रतिकार और प्रतिरोध की संस्कृति दी। आज से हजारों साल पहले भी सशक्त संघर्ष की उपज कुंती बहसीपन, शोषण, नफरत और कितने संबंधों के तूफान को सीने में दफन कर रखी हैं, बिल्कुल आज की स्त्री जैसी अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए किस कदर संघर्ष करती हुई दिखाई देती है। अपने इर्द–गिर्द की अन्य स्त्रियों की संवेदना को भी वह उतनी ही सिद्दत से महसूस करती है, तभी तो वह बिना किसी से कुछ कहे हर व्यथा सहती रही। क्या गलती की थी, पृथा अगर दुर्वासा के आशीर्वाद पर सूर्य को देव समझकर आवाहन ही किया तो?स्त्री के आकर्षित होने का अर्थ यह तो नहीं उस पुरुष से समागम करना ही होगा। लेकिन सूर्य अपनी भीरुता और उपहास से बचने के लिए अपने पुरुषत्व का प्रदर्शन कर बैठे और पृथा की चंचलता ही छीन लिये। दग्ध हृदय की वेदना से विवश कुंती को शादी के बाद ही अक्षम पति द्वारा दूसरे पुरुष की पास भेजा जाना...एक बार नहीं, तीन–तीन बार, जिससे पूरी जिंदगी शर्मशार रही।

ये सारी स्थितियाँ यह सिद्ध करती हैं कि एक उपन्यासकार स्त्रियों पर होनेवाली बर्बरता को कितनी गहराई से देख रही है, आखिर कबतक पीती रहेगी वो कड़वी घूँट, पति, परिवार और समाज की क्रूर निगाहों की। उपन्यास में युधिष्ठिर कुंती और कृष्ण के साथ युद्धशांति के बाद जब पुण्यसलिला गंगा के घाट पर जलांजलि देने पहुँचे, उस समय पश्चाताप की आग में जल रहा युधिष्ठिर की निगाहें लड़खड़ाती माता कुंती पर पड़ीं, जो निर्बल और निस्तेज हो पूछ रही थी, तुम्हारा तर्पण का काम हो चुका, कर्ण को तर्पण दिया?अवाक् युधिष्ठिर ने कहा–नहीं माँ! मैंने दुर्योधन से भी बड़ा पापी उस राधा पुत्र को तर्पण नहीं दिया। उसने भरी सभा में तुम्हारे सामने पांचाली को निर्वस्त्र करने को उत्साहित किया था। तब अनायास कुंती के मुँह से निकल पड़ा, वह राधापुत्र नहीं, कुंतीपुत्र है, तो कुंती को पुत्र युधिष्ठिर से भी अपमानित और शापित होना पड़ा था। उतना ही नहीं पचास वर्षों तक राजमहल में गांधारी आदि का व्यंग्यवाण सहती, पुत्र, पौत्र की शोक में जलती रही। जब कृष्ण की विदाई का वक्त आ गया, तो कुंती कृष्ण से कही–हे कृष्ण! अब मुझे इस जीवन से मुक्त करो और पुनः मैं पृथा बनकर तुम्हारे करीब आना चाहती हूँ और सोचती हूँ कि 'मैं पृथा ही क्यों न रही।'

यह उपन्यास बहुआयामी विषयों को समेटे अभिनव शैली से अभिभूत, गहन विवेचन, गंभीर विचारधाराएँ एवं अपरगम्य मंथन की पृष्ठभूमि में भाषा की विरल संयोग उपन्यास जगत् को नवदृष्टि से संवर्धित करता है। पठनीय पुस्तक देने के लिए सुजाताजी को आभार।

26. डॉ. सुजाता भागलपुर (बिहार) 'चालू लड़की' कहानी संग्रह। डॉ. सुजाता के साहित्य की नारी महज नारी नहीं, बल्कि वह इस भौतिक जगत से कहीं ऊपर उठकर एक दैवी रूप धारण कर लेती है, जिसके समावर्णन को पढ़ने से लगता है कि नारी के कारण ही इस धरती पर इंसानियत जीवित है और उसकी ही वजह से एक संतुलन कायम है। आज घर के बाहर और परिवार के अंदर भी महिला–पुरुष की मानसिकता का शिकार है, जहाँ उसे अपनी पसंद, अपनी इच्छाओं, जिजीविषाओं का गला हर क्षण घोंटना पड़ता है। आज के वक्त में जब जनता दामिनी, गुड़िया और प्रीति पर हुए अन्याय का बदला लेने के लिए सड़क पर है, इस दोर में लेखिका सुजाता का नारी के प्रति दृष्टिकोण सर्वाधिक प्रासंगिक है।

कहानी संग्रह की शृंखला में 'चालू लड़की' एक ऐसी कड़ी है, जो आज के ऐसे मानव की दृष्टि है, जो नारी के समर्पण, त्याग और विश्वास को अन्याय शोषण तथा दमन की दृष्टि से देखता है। इस कहानी संग्रह में 15 कहानियाँ हैं। हर एक कहानी में नारी के अलग–अलग भावनाओं को दर्शाया गया है। जहाँ नारी क्षमा, त्याग, करुणा, ममता, दया, परोपकार आदि सद्भावनाओं से परिपूर्ण है, वहीं पुरुष इसी श्रेष्ठताओं को गुमनामी में धकेल कर अपना अस्तित्व स्थापित करना चाहते हैं। लेकिन जब अपना चिंतना, विचार और भाव विस्तृत करती है, तो दूसरी कहानी 'वेलेंनटाइन डे' सच को परिभाषित करती है। क्या सबके सब ऐसे ही खोखले प्रेमी हैं?क्या सभी जोड़ों की कहानी झूठी है?

यह एक विडम्बना ही है कि भारतीय समाज में नारी की स्थिति अत्यन्त विरोधाभासी रही है। एक तरफ तो उसे शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है, तो दूसरी ओर उसे 'बेचारी महिला' भी कहा जाता है। आज भी नारी त्याग और साधना के बलबूते पर समाज के प्रत्येक पहलू से जुड़ी है। उसे संघर्षरत होना है। सोच में व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है। भाषा, शिल्प–विधान, रचना–गठन एवं लेखिका का संवेदनात्मक उद्देश्य अति उत्तम हैं। पठनीय पुस्तक देने के लिए धन्यवाद।

27. डॉ. अवधेश कुमार सिन्हा, भागलपुर (बिहार) की रचना 'उद्बोधन' काव्य संग्रह यत्र–तत्र बिखरे मानवीय मूल्यों के सौंदर्य को संकलित कर एक नई आनंदमयी सृष्टि की रचना की है। कविता में सत्य, शिव और सौंदर्य की एक ऐसी अलौकिक रस धार प्रवाहित होती है, जो सबको एक समान आनंदित करती है।

कविता का सीधा संबंध हृदय से होता है। कविता के द्वारा कही गयी बात का असर तेज और स्थायी होता है। कवि की कल्पना शब्दों के सार्थक और उचित प्रयोग द्वारा ही सार्थक होती है। ओज, माधुर्य और प्रसाद काव्य के प्रमुख गुण हैं। ओज चित्त को उत्तेजित करता है, माधुर्य में चित्त को प्रसन्न करने का गुण है और प्रसाद हृदय पर प्रभाव डालता है। रस काव्य का प्राणतत्व है, जो मनुष्य के हृदय में रहनेवाला भाव है।

यहाँ कवि के हृदय की कोमल अनुभूतियों को साकार रूप ही उद्देश्य के रूप में प्रतिपादित होता है, जिसमें लौकिक जीवन के सुख–दुःख, प्रेम–घृणा,

करुणा–क्रोध के भाव स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगते हैं। पढ़ने से साफ दिखता है कि यह काव्य संग्रह कवि के हृदय की तीव्रतम अनुभूतियों की सहज अभिव्यक्ति है। दर्शन, प्रकृति और सूक्ष्म संवेदनाएँ कविता के माध्यम से बड़ी सरलतापूर्वक समझाई गयी है। कवि के हृदय की निर्मलता, कोमलता और पवित्रता ही कविता को मर्मस्पर्शी बना दी है।

लोक जीवन के बिम्बों, प्रतीकों, शब्दों और उपमानों को चुन–चुनकर कविता संवेदनात्मक और सजीव बना दी गयी है। कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से कविता इनकी महत्वपूर्ण उपलब्धि है। यह पठनीय पुस्तक हमें उपलब्ध करने के लिए कवि अवधेशजी को धन्यवाद!

28. अनिरुद्ध सिन्हा का ग़ज़ल–संग्रह 'तो गलत क्या है' जब मुझे प्राप्त हुआ, तो मैं उसकी गहरायी में डूबता ही चला गया। इनकी ग़ज़लों में सादगी और सूफियाना गांभीर्य की एकान्विति परिलक्षित होती है। भीतर की तीव्र छटपटाहट, तड़प तथा जीवन–जगत् की विडम्बनाओं का उजागर उद्भाषित करनेवाला सौंदर्य अभिव्यक्त है। कोमलता, चपलता, नाजुकता, माधुर्य, लोच, कल्पनाओं एवं संवेदनाओं को शेरों में बाँधने की क्षमता अद्भुत है। एक ओर जहा ग़ज़ल के परंपरागत विषयों अर्थात् प्रेम, मिलन एवं विरह, संताप पर हृदयस्पर्शी रचनाएँ शामिल हैं, वहीं दूसरी ओर सामाजिक एवं राष्ट्रीय महत्व के समसामयिक विचारों को उजागर कर ग़ज़लें प्रमुखता से प्रस्तुत की गयी हैं। सहजानुभूति से सम्पन्न सांस्कृतिक उष्मा और लालित्य भी है। ग़ज़ल चेतना में ठंढी हवा का झोंका है, जिसमें हमारी मांटी की भीनी–भीनी गंध है। इन्होंने अपने उदात्त मानवीय जीवन मूल्यों को आधार बनाकर प्रकृति और मनुष्य की पारस्परिकता में समरसता की खोजकर ग़ज़ल को एक नई दिशा देने का काम किया है। संस्कृति की पीड़ा का इजहार बिल्कुल ही सहज और स्वाभाविक है। व्यंजना की सही प्रस्तुति, कथ्य सम्प्रेषण की कला, बहरों का प्रयोग, काफिया की सजावट, मिसरा और रदीफ की कसावट तथा मुनफरीद मिजाज ग़ज़ल में अभिव्यक्ति का एक सशक्त एवं विशिष्ट माध्यम है। पुस्तक उत्तम और पठनीय है। धन्यवाद!

29. 'श्रीचैतन्यदेव' डॉ. सुजाता, भागलपुर (बिहार) की इस पुस्तक में चैतन्य महाप्रभु के जीवन–दर्शन तथा तत्कालीन सामाजिक यथार्थ का समावेश है। विभिन्न घटनाओं की बड़ी कुशलता से संयोजित कर लेखिका ने श्रीचैतन्य के भक्तिमार्ग को एक अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किया है, जिसमें एकमात्र प्रेम को सर्वोपरि लक्षित किया गया है।

श्रीचैतन्य का आविर्भाव पूर्व बंग के अपूर्व धाम नव द्वीप में हुआ। चौबीस वर्ष की अवस्था में लोक कल्याण की भावना से संन्यास धारण किया, जब भारतवर्ष में चारों ओर विदेशी शासकों तथा हुसैनशाह के आतंक के भय पीड़ित जनता स्वधर्म का परित्याग कर रही थी, तब चैतन्य महाप्रभु ने प्रेमस्वरूपा भक्ति में बहुत बड़ी क्रांति ला दी।

श्रीचैतन्य सगुण भक्ति को महत्व देते थे। ये अपने जीवन का शेष भाग प्रेम और भक्ति का प्रचार करने में लगाये। उनके पंथ का द्वार सभी के लिए खुला था। हिन्दू और मुसलमान सभी ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। उन्होंने अचिन्त्य भेदाभेदवाद का परिवर्तन किया। भक्ति को आधार बनाकर परंपरा में भाव विह्वलता का जितना पुट चैतन्य ने भरा, उतना किसी अन्य ने नहीं। ये जगत् को न तो शाश्वत मानते हैं और न ही मिथ्या। भक्ति का ही इन्होंने मुक्ति का मार्ग बताया तथा इसके संदर्भ में कहा कि कोई तार्किक विश्लेषण नहीं किया जा सकता है। जीव उनकी दृष्टि में परमात्मा का शाश्वत अंश होते हुए भी परमात्मा का सेवक है। अहिंसात्मक विद्रोह करने का यह सामूहिक उपाय तबतक इतिहास में शायद पहली बार ही प्रयोग में लाया गया था।

लेखिका कथानक में सजीवता एवं प्रभावपूर्ण प्रसंगों की सुनियोजित सरसता से ऐतिहासिक और सामाजिक परिवर्तनों को चित्रित किया है, जो सराहनीय और पठनीय है। धन्यवाद!

30. 'जैसा मैंने देखा' शिव डोयले, राजगढ़ (मध्यप्रदेश) की रचना क्षणिकाए इनका गहन चिंतन–मनन, अनुभूत क्षण की सार्थकता और सार्वजनीनता सिद्ध करती है। बिम्ब और प्रतीकों का स्वाभाविक समावेश, भाषा का सहज और संतुलित प्रयोग भी देखा जाता है।

कवि के लिए कोई विषय या क्षण छोटा या बड़ा नहीं है, बड़ा है वह भाव बिम्ब, जो आत्मीयता के रस से संपृक्त है। क्षणिका किसी लंबी कविता का सारांश नहीं है और न मन बहलाने के लिए गढ़ा गया कोई चुटकुला है, बल्कि इससे प्रगाढ़ता, व्यंजना और घनत्व को समझा जा सकता है। रचना का महत्व बड़ी या छोटी होने से नहीं, वरन् उसके कथ्य से है, कथ्य की प्रस्तुति से है, उसमें निहित भाव–संवेदना से है, जो शिव डोयले की क्षणिका में परिलक्षित है।

क्षणिका जितनी मर्मस्पर्शी होगी, उतनी वह पाठक के मन पर अपना प्रभाव छोड़ेगी। यह मन में उपजे गहन विचार को थोड़े–से शब्दों में इस प्रकार बाँधी जाती है कि कलम से निकले हुए शब्द सीधे पाठक के हृदय में उतर जाए। इन्होंने भी इसकी बारीकियों पर गंभीरता से सारगर्भित शब्दों को संतुलित ढंग से इस प्रकार सजाया है, जैसे माली उपवन के एक–एक फूल पर अपना प्यार लुटाया हो।

आज बड़ी कायावाले काव्यग्रंथों को पढ़ने का लोगों के पास न तो समय है, न धैर्य। अतः रचनाकार समय के दबाव में छोटी–छोटी विधाओं को अपनाता गया है, जिसके चलते सूक्ष्म से सूक्ष्म संवेदनाओं को काव्य में प्रस्तुत करना संभव हो सका है।

इनकी इस क्षणिकाओं में चमक और भावों का उत्तेजित करने की वह तासीर है, जो हमारी चेतना को एक नई चमक से आलोकित करती है। रचनाकाल में सजग और सतर्क रहकर सामाजिक विद्रूपों और विषमताओं पर भी काफी पैनी नजरों से कटाक्ष और व्यंग्य के स्वर भी भरे हैं। अतुकांत होते हुए भी सम्प्रेषक और प्रशंसनीय है। पुस्तक पठनीय है। धन्यवाद!

31. 'समय कठिन है' रामचरण 'राग', अलवर (राजस्थान) का है। समकालीन गीत–संग्रह 'समय कठिन है' गीतकार रामचरण 'राग' का उद्देश्य ही संवेदनात्मक, मधुर और साहित्यिक गीतों की रचना है। इनके हर गीत की पंक्ति से ही स्पष्ट हो जाता है कि अनुभव की कितनी गहराई तथा कोमलता से रचना कितनी अनुभूत है।

गीत साहित्य की एक लोकप्रिय विधा हैं पहले इसमें एक मुखड़ा तथा कुछ अंतरे हुआ करते थे। प्रत्येक अंतरे में बाद मुखड़े को दोहराया जाता था। स्वर और ताल में बँधे प्रबंध के अनन्तर ध्रुव पद को गीतों में प्रोत्साहन दिया जाता था। उसमें नैतिक और रहस्य की निष्ठा का स्रोत था, प्रणय शृंगार था, सौंदर्य एवं मार्मिकता के प्रदत्त प्रतिमान थे।

आज नवगीतों में जीवन दर्शन है, व्यावहारिक आत्मनिष्ठा है, व्यक्तिबोध है।, जीवन अनुभवों से अविभाज्य प्रीतित्व है, प्रेरणा की विविध विषय–वस्तुओं के परिसंचय का सिलसिला है। नया कथन, नई प्रस्तुति, प्रगतिवाद सोच, नये उपमान, नये, प्रतीक, नये बिम्ब, समकालीन समस्याएँ

और परिस्थितियाँ तथा मानवीय संवेदना है।

इनके गीतों में सामाजिक यथार्थ का चित्रण, सौंदर्यानुभूति, नूतन आयामों का अन्वेषण, जीवन की आशा–आकांक्षा, सुख– दु:ख, समता–विषमता, सहजता–जटिलता, भय–प्रेम, तनाव– संघर्ष एवं क्षीण होती जा रही मानवीय मूल्यों से रू–ब–रू किया गया है। समय की बेचैनियों की परख है। वर्तमान और भविष्य की सांस्कृतिकता पर चिंतन प्रतिपाद्य विषय है। परिवर्तन का बोध है। भाषा, शैली एवं छंद का समंजन उपयुक्त है। पुस्तक पठनीय है।

32. 'एक पल अपल' राजदेव सिन्हा, मुजफ्फरपुर (बिहार) कविता केवल रसात्मक या कर्णप्रिय अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि कविता वह है, जो हृदय को आंदोलित करे, जिस भाव की कविता हो, उस भाव को जागृत करने में सक्षम हो, जिसकी प्रेरणा से मनोवेगों का प्रवाह जोर से बहने लगते हों तथा मनुष्य के हृदय को अलौकिक पदार्थों से परिचय कराते हों।

यह कविता संग्रह हिन्दी साहित्य की चुनौतीपूर्ण उपलब्धि इनकी कविता यात्रा की पाँचवीं है, जिसे बारीक दृष्टि से देखें, तो साफ पता चल जाएगा कि इसमें कई पड़ाव हैं, कई रंग हैं और कई रूप भी। इनके भीतर न जाने कितने अपल हैं, जो यहाँ सर्जनात्मकता का मूल उत्स बना है। इनकी कविताओं में ऐसी पंक्तियाँ हैं, जो कम शब्दों में बड़े लक्ष्यों को साधने में सफल हो जाती हैं। मन की नाना भाव दशाएँ, दु:ख, सुख, संघर्ष आदि को ईमानदार एवं प्रामाणिक अभिव्यक्ति कविता का प्रतिपाद्य विषय बनाये हैं। कविता की एक विशेषता यह भी है कि यह बिम्बों का संसार रचती है, जो कविता के भाव पर भारी नहीं होने के बावजूद भी बिम्ब अपने पूरे वजूद के साथ कविता में मौजूद है। इनके शब्द मौन और कोलाहल दोनों के भेद खोलने को तत्पर रहते हैं। यह सकारात्मक कदम है। कविता पाठ में आत्मचिंतन में संवेदनाओं का झरोखा अपने आप खुल जाता है। पठनीय पुस्तक के लिए आभार। धन्यवाद!

33. 'गिरती दीवारें' नरेन्द्र किशोर सिन्हा, समस्तीपुर (बिहार) से प्राप्त कहानी–संग्रह में कथाकार अपने निजी अनुभवों और सौंदर्यानुभूति से संदर्भित सामाजिक यथार्थ का चित्रण साहित्यिक अभिव्यक्ति में नूतन आयामों के अन्वेषण से किया है। जीवन की आशा–आकांक्षा, सुख–दु:ख, समता–विषमता, सहजता– जटिलता, भय–प्रेम, तनाव–संघर्ष एवं क्षीण होती जा रही मानवीय मूल्यों को व्याख्यायित किया है तथा समाज और साहित्य के अंतर्संबंध को विलक्षणतापूर्वक रेखांकित किया है।

आज कथाकार की कल्पना के पंख भले ही बिल्कुल कतरे न गये हों, पर उनकी उड़ान की क्षमता बहुत कुछ सीमित और नियंत्रित हो गयी है। वह यथार्थ की चौखट के बाहर मनचाही उड़ान भरकर लिखने के माध्यम से मानवीय मूल्यों, सांस्कृतिक एवं सामाजिक स्थितियों, संबंधों की विषमताओं, कुरीतियों की जंजीरों को झनझनाया है।

कहानी के मुख्यत: छ: तत्व होते हैं–कथावस्तु, पात्र एवं चरित्र–चित्रण, भाषा और शैली, पूरक घटनाएँ, वार्ता और परिस्थितियाँ, जिसका प्रयोग इन्होंने इस ढंग से किया है कि पाठकों का विश्वास प्राप्त कर सके। इनकी हर कहानी एक संदेश लेकर खड़ी है, जो आधुनिक परिवेश में विसंगतियों, विकृतियों, विडम्बनाओं एवं दरकते रिश्तों से जूझने के लिए जीवन का एक सच्चा खाका है।

क्षेत्रविशेष की प्राकृतिक पृष्ठभूमि का अंकन, वातावरण और चित्रण, लोक संस्कृति, आधुनिक चेतना का भी स्वाभाविक स्पर्श है। पठनीय व उम्दा पुस्तक के लिए धन्यवाद!

34. 'सहरा के फूल' ए.एफ.'नजर', पिपलाई (राजस्थान)। ग़ज़लकारों पर नजरें दौड़ायी जाए, तो ए. एफ. 'नजर' ऐसे ग़ज़लकार हैं, जिन्होंने अपने 'नजर' उपमान को सार्थक किया है। इन्होंने ग़ज़ल को एक नई दिशा देने का काम किया है। इनकी नजरें ग़ज़ल की व्याकरण और काफिया–रदीफ पर इतनी टिकी हैं कि वह औरों से अलग दिखता है। इनकी ग़ज़ल का रह शेर पीड़ा, घुटन, एहसास को रूपायित करते हुए हर दौर को किसी न किसी रूप में प्रासंगिक किया है। यही किसी भी रचनाकार को नई ऊँचाई और पाठक की डायरी को समृद्ध करता है। इनकी अधिकांश ग़ज़लों में पढ़ने सुनने का आनंद वर्षा की शीतल फुहार में भींगने जैसा है। ग़ज़ल–संग्रह में हर स्वाद की ग़ज़लों को समाने की कोशिश की गयी है। पढ़कर ऐसा लगता है, मानो तब और अब के दौर को आईने में समेटकर उसे रू–ब–रू देख रहे हों। पुस्तक पठनीय, उम्दा है। धन्यवाद!

35. 'सुबह होने वाली है' शिवकुमार दुबे (जबलपुर, मध्यप्रदेश) की रचना कविता संग्रह में मानव सभ्यता के विकास एवं जीवन मूल्यों की रक्षा के लिए अमानवीय प्रवृत्ति, वर्चस्व, स्वार्थ, कलुषित मनोवृत्ति एवं ईर्ष्या–द्वेष जैसे अवगुणों के लिए लिखी गयी कविता के जनमानस को आलोक स्तम्भ के समान दिशा और प्रकाश देकर संपूर्ण हृदय चेतना को विश्वदृष्टि के विकास में, व्यापक जीवन जगत् की व्याख्या में और अंतर्जगत् के महत्वपूर्ण आंदोलन में संवेदना, अनुभव और पीड़ा की ओर ध्यान आकृष्ट कर संदेश भी देने का प्रयास किया है कि सुबह होनेवाली है, यह अँधेरा दूर होगा।

इन्होंने कविता के माध्यम से हृदय के सौंदर्य और मस्तिष्क की प्रतिभा को समझने पर बल दिया है। मस्तिष्क रोटियाँ पैदा कर सकता है, किन्तु स्वाद उनके हृदय से आता है। मस्तिष्क का आविष्कार और अनुसंधान है, वह चाहे तो तलवारें गढ़ लें। मगर हृदय का बस चले ता वह लोहे की शक्तियों का उपयोग मनुष्य के सार्वजनिक कल्याण के निमित्त कर सकता है, तभी सूरज निकलेगा और सुबह होगी।

सरल, सुबोध भाषा–शैली तथा नये कलेवर में सजाई सँवारी गयी सुविचारक कवि शिवकुमार दुबे की यह अनुपम कृति पठनीय और प्रेरक है। धन्यवाद!

36. 'सुरंग में लड़की' राजेन्द्र नागदेव (भोपाल, मध्यप्रदेश) साहित्य और लेखन अगर किसी को कुछ दे या न दे, पर जीने और शोषण के खिलाफ संघर्ष करने का साहस जरूर देता है।

राजेन्द्र नागदेव मानवीय संवेदना के रचनाकार हैं। 'सुरंग में लड़की' कविता संग्रह समय के साथ बदलते समाज के बहुआयामी यथार्थ का सशक्त चित्रण है। विषय की विविधताओं से भरे–पूरे, विस्तृत गहराई को समेटे इस काव्य संग्रह में सामाजिक स्थितियों पर उनकी पैनी नजर टिकी है। कविताओं में मनुष्य के सापेक्ष सामाजिक चेतना प्रस्फुटित हुई है।

मानवीय संबंधों के विस्तार में नागदेव आत्मीयता पर बल देते हैं। क्योंकि दूसरे की स्वतंत्रता को भी अगर स्वतंत्रता समझा जा सके, तो संबंधों का अर्थ विस्तृत हो जाता है,सृष्टि और मानवता की रक्षा होने लगती है। तब फिर कोई लड़की सुरंग में नहीं जायेगी। एक ओर अकेली लड़की है, तो दूसरी ओर परिवार और समाज का संयुक्त आक्रमण। आखिर क्यों?हो सकता है यह प्रश्न सामाजिक न हो, पर स्वाभाविक और मानवीय तो है; क्योंकि कहीं न कहीं वह आहत हुई है।

'सुरंग में लड़की' राजेन्द्र नागदेव की कविताएँ हिन्दी साहित्य की ऐसी नवीनतम विधा है, जिसे एक बार पढ़ने के बाद सौ बार सोचने को मजबूर होना पड़ता है।पुस्तक उम्दा है। धन्यवाद!

37. 'गीत मेरे देश के' एवं 'गूंज' साथी सुरेश 'सूर्य' की रचित दो पुस्तकें गीत संग्रह मिलीं, जिसमें सांस्कृतिक, शैक्षणिक, राजनैतिक और भौगोलिक चेतना का अंकुर फूटता है और उसकी पीड़ा इनके गीतों में झलकती है। इसके द्वारा खासकर मर्यादित राष्ट्रीयता को इन्होंने अपने उदात्त मानवीय मूल्यों को आधार बनाकर देश के हर भाग में फैलाने का आंदोलन चलाया है। भाषा अभिव्यक्ति की सबसे बड़ी निधि है। इन्होंने भाषा की सरलता पर ध्यान रखते हुए आम आदमी की अनुभूति की संस्कृति के गीतों को जोड़कर जीवंत कर दिया है।

इनकी दूसरी रचना 'गुंज', जो प्रकृति और मनुष्य की पारस्परिकता में समरसता की खोज है। इसमें गीतकार अपने अस्तित्व और व्यक्तित्व की भीतरी रचना को संवेदना की तहों को क्रमशः खोलते हुए कौतूहल, विस्मय, आकर्षण का स्रोत, अभिलाषाओं का चित्र, मिलन–विरह की आँखमिचौनी, धैर्य की गहराई, चिंतन एवं अन्तः संघर्ष की गूँज उदात्त रूप में प्रस्तुत है। दोनों पुस्तकें पठनीय एवं संग्रहनीय हैं। धन्यवाद!

38. मानव समाज के सांस्कृतिक विकास के पहरेदार, जन–मन की गहराई से जुड़ी वटवृक्ष की छाया, जीवन की संवेदनाओं को शांति, शीतलता और आनंद की प्राप्ति देनेवाली यह काव्य विधा 'गुनगुनाएँ गीत फिर से...' राहुल शिवाय का संपादन परंपरा अवगाहन करती सहजानुभूति से सम्पन्न, समाज, समुदाय और राष्ट्र की धरोहर है। इसके संकलन मे एक अद्‌भुत सांस्कृतिक ऊष्मा और लालित्य है, साथ ही अभिव्यक्ति की एक खास ललक भी दृष्टिगत होती है। इसमें मन की उन्मुक्त उड़ान के साथ जीवन की गहरी समझ भी है। कुंठाओं और तनावों के दमघोंटू वातावरण में यह संग्रह–चेतना ठंढी हवा का झोंका है, जिसमें हमारी मांटी की भीनी–भीनी गंध है। इसमें विविध पक्षों से जुड़े दुःख–सुख, विरह–शृंगार, दर्शन का गांभीर्य, इतिहास की ललकार समाहित है। राहुल शिवाय द्वारा संपादित 'गुनगुनाएँ गीत फिर से...' पठनीय एवं सराहनीय है। धन्यवाद!

39.'तो सलाम मेरे दोस्तो' रंजन, भागलपुर के कथाकार एवं उपन्यासकार लब्धप्रतिष्ठित रंजन कुमार अपने मित्र की साहित्यिक पत्रिका 'किस्सा' लेकर मुझे देने 'सुसंभाव्य' कार्यालय आये, किन्तु मुझे यह पत्रिका पूर्व में ही मिल चुकी थी। उस पत्रिका में रंजन जी की एक कहानी 'तो सलाम मेरे दोस्तो'–छपी है, जिसका पाठ करने मैं उनसे आग्रह किया। कार्यालय में ही पूर्व से बैठे भागलपुर के श्रेष्ठ साहित्यकार डॉ. अमरेन्द्रजी ने भी पाठ करने की स्वीकृति जताई तो रंजन जी ने इस इक्कीस पृष्ठों की कहानी का पाठ जिस तन्मयता से किये, उसी तल्लीनता से मैं भी सुनता रहा और न जाने क्यों मुझे लगा कि उनकी यह कहानी एक दिन इनके नाम को हिन्दी साहित्य के इतिहास में सुरक्षित करवा देगी। 'किस्सा' के संपादक डॉ. योगेन्द्र जी को भी मैं धन्यवाद देना चाहूँगा कि वे रंजनजी की अद्‌भुत और चमत्कृत कर देनेवाली इस कहानी की प्रासंगिकता को समझे।

इस कहानी में ऐसे वातावरण का चित्र चित्रित किया गया है, जिससे पाठक के समक्ष एक चित्रात्मक शैली में सुंदर–सा बिम्ब स्थापित हो जाता है तथा भावात्मक या भावपूर्ण अभिव्यक्ति के द्वारा कथाकार के विचारों की प्रस्तुति अभिलक्षित होने लगती है। कहानी के सारे पात्र साहित्यकार मित्रों को बनाया गया है, जिसमें कथाकार शिवकुमार शिव, पी.एन. जायसवाल, प्रतिष्ठित साहित्यकार डॉ. अमरेन्द्र, ग़ज़लकार दिनेश तपन, चित्रकार नागेश मिश्र, साहित्यकार सुरेन्द्र कुमार जैन 'राही' एवं स्वयं रंजन कुमार है। ये सभी भागलपुर के चित्रशाला में बैठकर साहित्यिक चर्चा करते हुए अन्य नये कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार कर रहे हैं, जिसमें संवादात्मक शैली का प्रमुख महत्व है। इस शैली के माध्यम से कहानी में एक विशेष सौंदर्य पात्रों की यथार्थता, विश्वसनीयता को दर्शाते हुए कलापक्ष को प्रभावशाली बनाया गया है। कहानी की बनावट, उसकी कसावट, भाषा की बलिष्ठता से मानवीय भावों और विचारों को मित्रों या पात्रों के द्वारा अगला निर्धारित कार्यक्रम में प्रकट किया गया है। कहानी के दूसरे मोड़ पर समयानुसार सारे मित्र एकत्रित होते हैं, खुशियों भरी बातों का दौ चलता है। माहौल को सामाजिकता के मनोगत भावों से जोड़ते हुए ऐसे प्रतीकों की व्यवस्था की गई है, जिसके द्वारा समाज के लोग अपने भावों तथा विचारों का आदान–प्रदान कर सके। मित्र चित्रकार 'राही' द्वारा निर्मित सआदत हसन मंटो के चित्र से अनचाहे आत्मा की उपस्थिति से भयाक्रांत मित्रों की स्थिति, आत्मा के आने का दृश्य, बिजली का चला जाना, मोमबत्ती की रोशनी में आत्मा का शिवकुमार शिव के शराब की घूंट में शामिल करने को कहना, पुनः आत्मा से डॉ. अमरेन्द्र की साहित्यिक वार्ता होना, आत्मा का जाना, बिजली के आने की खुशी का बोध, वातावरण में सामान्य स्थिति का लाना, कहानी की प्रवाहमयता को पात्रों के माध्यम से बनाए रखना, उसकी सजीवता, स्वाभाविकता, भाषा की सरसता, चित्रमयता कहानी की सफलता व प्रभावशाली आकर्षण में चित्रात्मक शैली उभरती है।

कहानी के कहानी के विभिन्न आयामों, परिस्थितियों, पात्रों के स्वाभावगत स्वरूप में ढालना तथा उनके साहित्यिक चरित्र को बनाए रखना, पात्रों के कथन को साहित्य में पिरोना, किसी गहरे तथ्य या उसके यथार्थ को संवाद के रूप में प्रस्तुत करना सूक्तिपरक शैली का बड़ा ही सुंदर प्रयोग कहानी में मिलता है। कहानी को नवीन सिद्धांत और नई दिशा से ऊर्जस्वित किया गया है। रचना प्रक्रिया, मूलचेतना संदर्भ तथा लेखकीय अभिप्रेत, कालक्रमानुसार उत्कृष्ट विश्लेषण, नूतन तथ्यों का उद्‌घाटन एवं इसका दृश्यात्मक प्रभाव (मानो सब कुछ आँखों के सामने घट रहा है) प्रशंसनीय है। कहानीकार ने कहानी की संरचना से भागलपुर के साहित्यकारों को एक दस्तावेजी उपलब्धि प्रस्तुत की है।कहानीकार को सादर धन्यवाद!

Screenshot_2018-12-27-14-42-32-24_40...

खुशी का पैगाम

सालका नया दिन है आया
ढ़ेर सारी खुशियाँ लाया

भूल के सारी मरेशानियाँ
आओ मनायें खुशियाँ

मेल–मिलाप की करें तैयारियाँ
दूर भेजे सबको बधाईयाँ

दूधो नहाओ पूतो फलो
देकर दुआएँ, ले लो बलाईयाँ

खुशियों के पल ले आई
नई घडी की नई सुईयाँ

खिले मुस्कान की कलियाँ
मुख पे खिले, हंसी की फूलझाडियाँ

हर लब पर हो
नये साल की बधाईयाँ

हर सुबह लाती है खुशी का पैगाम
बिना जाने कल का अंजाम

डॉ. रश्मि नायर
मुम्बई (महाराष्ट्र)
9833013526

लोकवाणी

1. आदरणीय संपादक महोदय,

त्रैमासिक पत्रिका 'सुसंभाव्य' का अप्रैल–जून अंक प्राप्त हुआ, धन्यवाद!

आकर्षक आवरण पृष्ठ, सुस्पष्ट, सुंदर छपाई, विद्वत्तापूर्ण आलेख, समसामयिक, कहानियाँ तथा ग़ज़लें आदि पढ़कर अतिशय आनंद प्राप्त हुआ। 'गृह से विलुप्त होती गृहलक्ष्मी' से लेकर 'होली रे होली तेरे रंग कितने' तक सभी आलेख विद्वत्तापूर्ण, सारगर्भित तथा विषयों का सही ढंग से विवेचन करने में सक्षम है।

कलम के जादूगर रामवृक्ष बेनीपुरी की बहुप्रशंसित कहानी 'गेहूँ और गुलाब' को पुनः प्रकाशित कर आपने प्रशंसनीय कार्य किया है। बेनीपुरीजी स्वतंत्रता सेनानी भी थे। उन्होंने स्वाधीन भारत का अत्यन्त सुखद तथा मनोहर सपना देखा था। उन्होंने लिखा–'वह दुनिया आनेवाली है, जिसे हम गुलाब की दुनिया कहेंगे।' यदि वे आज जीवित होते, तो उन्हें बहुत निराशा होती। अन्य कहानियाँ 'शेरू', 'जीते जी मरा जाना', 'मल्लिका' तथा 'बेटी तो बेटी ही है' अलग–अलग संदर्भों की अच्छी रचनाएँ हैं।

'मंदिर व मस्जिद', 'लोग', 'उन्मुक्त', 'सम्मान के दो शब्द' आदि कविताएँ बहुत भावपूर्ण एवं प्रभावपूर्ण हैं। अशोक अंजुम की ग़ज़लें लाजवाब हैं। लघुकथाएँ एवं अन्य कविताएँ भी पठनीय एवं सराहनीय हैं। अनेक पुस्तकों की समीक्षाएँ सुस्पष्ट एवं बेवाक हैं। यदि आप लेखक या प्रकाशक का पता भी साथ में दें तो इच्छुक व्यक्ति पुस्तक मँगा भी सकेंगे।

दीपावली, छठ, कार्तिक पूर्णिमा की शुभकामनाएँ।

हरिनारायण गुप्त (कवि–कथाकार)
जयप्रकाशनगर, चन्दवारा, मुजफ्फरपुर,
मो0–9470703385

2. आदरणीय संपादक महोदय,

आपके द्वारा प्रेषित सुसंभाव्य जुलाई से सितम्बर अंक आज मुझे मिल गया। आपका संपादकीय मैं सबसे पहले पढ़ती हूँ। इसमें आपने बहुत सुन्दर जीवनमूल्यों की विशेषता को बतलाया है। यह निश्चित है कि जीवन के परिदृश्य में लिखी गई सच्चाई के साथ दिशा–निर्देश लेने की प्रवृत्ति से लेखक जो प्रयास करता है वही लेखक की रचना में स्पष्ट परिलक्षित होती है।

सुसंभाव्य में रघुवीर सहाय की पत्रकारिता और 'दिनमान' तथा संपूर्ण नारीत्व की तलाश नारी के लिए मृगतृष्णा, भूमण्डलीयकरण और मीडिया, साहित्य, साहित्यकार और समाज, सामाजिक चेतना और संचार इन श्रेष्ठ रचनाओं के लिए लेखक एवं संपादक महोदय दोनों को मेरी बधाई प्रेषित कीजिए। कविता और कहानियाँ भी जीवन मूल्यों को दर्शाती हुई आज के परिवेश को जीवंत बनाते हुए रचनाकारों की कृतियाँ प्रशंसनीय है। धीरे–धीरे सुसंभाव्य अपनी उत्कृष्ट रचनाओं के कारण और भी आगे की संभावनाएँ निश्चित ही राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं के अनुकूल हो जाएगी। धन्यवाद!

–डॉ. नलिनी श्रीवास्तव
'शिवायन' 3.ठध33ध1
भिलाई 490001 (छ.ग.) मो.–9752606036

3. आदरणीय संपादक महोदय,

सादर नमस्ते,

हम डॉ. रश्मि नायर हैं। तीन साल पहले मैं रक्षामंत्रालय के अंतर्गत कैंटीन भंडार विभाग के प्रधान कार्यालय मुंबई से 36 साल की सेवा के बाद सेवानिवृत्त हो चुके हैं। हम दक्षिण भारतवासी हैं, पर बचपन से मुम्बई में पले और पढ़ाई–लिखाई होने के कारण हिन्दी से विशेष लगाव शुरू से ही रहा है, जिसके प्रभाव में आकर अपना स्थानीय माध्यम मराठी से बदलकर हिन्दी माध्यम में हाई स्कूल की पढ़ाई में सफलता पूर्ण की। उसके बाद सारी जानकारी मेरे परिचय में दी गयी है।

आज सुबह वाटसएप देखते हुए हमारी नजर आपकी पत्रिका 'सुसंभाव्य' पर पड़ी। हमने गुगल में ढूँढ़ा तो आपकी पत्रिका की थोड़ी–बहुत जानकारी मिली। उसी के जरिये आपसे संपर्क कर रहे हैं। पहली बार आपकी पत्रिका देखी। पर अबतक पढ़ने का सौभाग्य नहीं मिला। अगर इसकी एक प्रति उपर्युक्त पते पर भेज दें, तो हम आपकी पसंद जान पायेंगे। जब आपको सही रचनाएँ भेज पायेंगे। न आपका समय बर्बाद होगा और न हमारा। फिलहाल नवम्बर चल रहा है। साल खत्म होने में एक महीना ही बचा है। आपका अगला अंक शायद जनवरी?2019 में प्रकाशित होगा। उसके लिए आपको अग्रिम शुभकामनाएँ। नये साल के स्वागत में हम आपको एक काव्यरचना भेज रहे हैं। इसका शीर्षक 'खुशी का पैगाम' है। उम्मीद करते हैं, आपको पसंद आएगी। नये साल की शुभकामनाओं के साथ!

रश्मि नायर
वगाडनगर (महाराष्ट्र) मो.–9833013526

4. प्रिय महोदय,

यथोचित अभिनंदन,

आशा है आप स्वस्थ एवं सानन्द होंगे। 'सुसंभाव्य' अब अपने एक नये सुसज्जित घर में आ गई है। इस नये घर में यह खूब फूले–फले, नये–नये सदस्यों को जोड़ें तथा घर–घर पहुचे, ऐसी मेरी कामना है।

नये रचनाकारों, लेखकों, कवियों की प्रकाशित पुस्तकों के लिए बाजार उपलब्ध कराने की जो योजना आपने बनाई है, सराहनीय है। इससे रचनाकारों की कृतियों का प्रसार तो बढ़ेगा ही, कुछ हद तक उनकी आर्थिक जड़ों को भी मजबूती मिलेगी। अर्थ के अभाव में कई लेखकों की पांडुलिपियाँ धरी की धरी रह जाती हैं। आपके इस सद्प्रयास का मैं नमन करता हूँ। इस कड़ी में मैं अपना कहानी संकलन 'गिरती दीवारें' की पाँच प्रतियाँ भी भेज रहा हूँ।

'गिरती दीवारें' पुस्तक पर आपकी समीक्षात्मक टिप्पणी फेसबुक पर देखा, सटीक एवं सुन्दर। इसके लिए कोटिशः धन्यवाद। इसे यदि पत्र के रूप में भी मुझे उपलब्ध कराने की कृपा की जाती तो उसे मैं धरोहर के रूप में सुरक्षित रखता। साथ ही इस समीक्षा को किसी अन्य पत्रिका में आपके नाम से ही प्रकाशित कराने की अनुमति भी चाहता हूँ। मिलने का कोई अवसर नहीं मिल रहा, लेकिन ख्वाइश तो मन में है ही।

अपनी एक नई और प्रकाशित कहानी 'मंगलसूत्र' भेज रहा हूँ। इसे अपनी पत्रिका के किसी अंक में स्थान देने की कृपा करेंगे। संभव हो तो स्वीकृति/अस्वीकृति की सूचना फोन/ई–मेल पर देकर मुझे कृतार्थ करें।

–नरेन्द्र कुमार सिन्हा, प्रशाखा पदाधिकारी,
बिहार सचिवालय सेवा, रोड नं. 1 ई, आदर्शनगर,
समस्तीपुर, मो0–08969358434